

आत्म-आलोचना

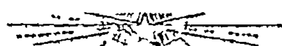
(आलोचना-कुलक और बृहद्-आलोचना)



संपादक—

कविवर्य पं० श्री सूर्यमुनिजी म० के सुशिष्य

स्वर्गीय श्री "माणकमुनिजी" म०



द्रव्यसहायक—

श्रीमान् सेठ दलीचन्द ऊँकारलालजी रांका

सैलाना (मध्य-भारत)

स्व० आचार्य श्री रघुनाथजी म० के शिष्य पं० श्री ज्ञानचन्द्र जी म० के शिष्य पं० श्री [illegible] जी म० की ओर से सादर भेंट



वीर सम्वत २४८०	मूल्य	प्रथमा वृत्ति
विक्रम सं० २०११	सदुपयोग	१०००

परमेष्ठी धुन

पंच परमेष्ठी भज भगवान्, सब मिल गाओ मंगल गान...
अतिशय ज्ञानी श्री अरिहन्त सुरनर-वंदित पूज्य महन्त...
शमत सभी संकट संताप, सिद्ध-सिद्ध सुमरन सद् जाप...
वन्द् श्री आचार्य महन्त, गणनायक-गुणगण-राजन्त...
उपाध्याय आगम-विद्वान, पढ़े पढ़ावे दे सद् ज्ञान...
साधु सकल संजम-शृंगार, जगजीवन के वे हितकार...
गुरु गुण महिमा अगम अपार, ज्ञान 'सूर्य' वत् जग दातार...



गुरु भक्ति विनय

विना नयन पावे नहीं, विना नयन की बात ।
सेवें सतगुरु के चरन, सो पावे साक्षात् ॥१॥
बूझी चाहत प्यास को, यह बूझन की रीति ।
पावे नहिं गुरुगम विना यही अनादी नीति ॥२॥
जे सतगुरु उपदेशथी, पाम्यो केवलज्ञान ।
गुरु रह्या छद्मस्थ पण, विनय करे भगवान् ॥३॥
करुणा वत्सल सुजनता, आतम निन्दा पाठ ।
समकित भक्ति विरागता, धर्मराग गुण आठ ॥४॥



दो शब्द

यह पुस्तक पाठकों के हाथों में पहुँचाते हुए हर्ष हो रहा है। कोई भी कार्य किसी प्रेमी की मदद मिले विना नहीं हो सकता। ऐसे ही प्रेमी पं० श्रीमान रतनलालजीडोशी साहब से मुझे धार्मिक कार्यों मे मदद-मिलती रहती है, जो कि प्रखर विद्वान्, चर्चावादी पण्डित, प्रसिद्ध समाज सेवी और धर्म की तर्क से पुष्टि करने वाले हैं। श्री डोशीजी का मेरे पर पूरा उपकार है। वे सन्त मुनिराजों के दर्शन के लिये और जहां जहां धार्मिक उपदेश हो वहां मुझे साथ ले जाकर मेरी धार्मिक भावना बढाते रहे हैं और इसी तरह इस पुस्तक के छपाने मे भी उनका सङ्केत हुआ।

इस वर्ष यहां पर स्व० पूज्य आचार्य देव श्री नन्दलालजी म० के प्रशिष्य श्रमण संघीय कविवर्य्य पं० श्री सूर्यमुनिजी म० मधुर-भाषी श्री सुरेन्द्रमुनिजी म० विद्याभिलाषी श्री रूपेन्द्र-मुनिजी म० साहित्य रत्न पं० श्री उमेशमुनिजी म० ठाणा ४ बालब्रह्मचारी का चौमासे के लिये विराजना हुआ। तब डोशीजी ने यह किताब देखी और फिर मुझे इशारा किया कि—"यह बहुत अच्छी है और स्वाध्याय मे अच्छी रहेगी।" तब मैंने इसे छपाना स्वीकार कर लिया, क्योंकि अच्छी ढंगसर आलोचना छपवाने की हमारी धार्मिक मण्डली की कई दिनों से इच्छा थी। उनसे इस प्रेमभाव के लिये मैं आभारी हूँ और आगे भी धार्मिक कार्यों में ऐसा ही प्रेम भाव बनाए रखने की आशा रखता हूं।

आशा है, धार्मिक व्यक्ति इस किताब को प्रेम से अपनाएंगे।

सैलाना (मध्य-भारत)
कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी
सम्वत् २०११

आपका
प्यारा राँका

प्रकाशक का संक्षिप्त परिचय

प्रिय पाठकगण !

श्रीमान प्यारचन्दजी साहब राँका, जो कि इस पुस्तक के प्रकाशक हैं, सैलाना के प्रसिद्ध सेठ श्री ऊँकारलालजी राँका के दत्तक पुत्र है । आपने अपने माता-पिता की पूर्ण सेवा की और सामाजिक तथा धार्मिक कार्य आप पूर्ण भावनाओं से करते रहते हैं। आपका जीवन सादगी से भरा हुआ है तथा आदर्श भी है-प्राप्त द्रव्य को आप सदुपयोग मे व्यय करने के लिये हमेशा तत्पर रहते हैं-सैलाना के श्रमणोपासक जैन पुस्तकालय के जन्मदाता, सरक्षक एव पोषक आप ही हैं । अतः पुस्तकों का बृहत संग्रह हो, इसमे कुछ आश्चर्य नहीं । पुस्तकालय की आवश्यकतानुसार पुस्तके आती ही रहती हैं। यह पुस्तकालय आपके पिताजी के नाम पर दिये हुए मकान मे स्थापित है । आपने कई धर्म संस्थाओं को बड़ी उदारता पूर्वक सहायता दी है तथा दे रहे है । पाठकगण ! प्रकाशक के जीवन का अवलोकन कर अपनी धर्म भावना को बढावे ।

श्रीमान् सेठ प्यारचन्दजी साहब सपरिवार चिरायु हों तथा अपने धार्मिक कार्यों में सदैव वृद्धि करते रहें यही मेरी सत्कामना है ।

भवदीय,
लालसिंह सुराना
प्रोप्राइटर—श्री दिलीप प्रिंटिंग प्रेस, सैलाना

प्रस्तावना



'आलोयणाए णं माया नियाण मिच्छादंसण सल्लाणं मोक्ख-मग्ग-विग्घाणं अणन्त-संसार बंधणाणं उद्धरणं करेइ, उज्जुभावं च जणयइ ।'

आलोचना से मोक्ष मार्ग के विघ्न और अनन्त संसार के बन्धन रूप छल कपट, भौतिक लालसा या तप संयम को बेचने की वृत्ति और विपरीत प्रतीति रूप साधक जीवनके कंटक निकल जाते हैं और सरल भाव=पूर्णत्त्व की योग्यता प्राप्त होती है ।

उत्तराध्ययन० अ० २९

उपर्युक्त उद्धरण से, जैन धर्म मे आलोचना का क्या महत्त्व है—यह समझ मे आ जाता है। आलोचना साधक जीवन का एक अनिवार्य अङ्ग है। यदि साधना आत्म-सम्पत्ति की प्राप्ति के लिये व्यवसाय है तो आलोचना उसका हिसाब-किताब है। संस्था की प्रामाणिकता उसके स्पष्ट हिसाब-खाते पर ही आधारित रहती है। इसी प्रकार साधक जीवन की प्रामाणिकता का आधार आलोचना-प्रतिक्रमण है। सर्वज्ञदेव श्रीमन्महावीर प्रभु ने आलोचना-प्रतिक्रमण के अभाव मे साधक

को आराधक नहीं--विराधक माना है ।

आलोचना का उद्गम-स्थल संभवतः आवश्यक सूत्र का चतुर्थ आवश्यक है। आवश्यक सूत्र प्रत्येक तीर्थंकर के शासन-काल में अपने-अपने देश-काल के अनुरूप विद्यमान् रहता है अतः निर्विवाद यह कहा जा सकता है कि जितना आवश्यक या मोक्ष मार्ग का इतिहास पुरातन है, उतना ही पुरातन आलोचना का इतिहास है। शेष तो इस स्पष्ट सत्य की उपेक्षा करके, बुद्धि की तृप्ति के लिये ऐतिहासिक तथ्य के नाम पर थोथी कल्पना के आकर्षक, परन्तु अनावश्यक जाल बुनने का ही चातुर्य है। साधन की ऐतिहासिकता का विचार करने के बनिस्बत उनकी क्षमता, योग्यता और उचित उपयोग का विचार करना कहीं अधिक उपयोगी हो सकता है।

"आलोचना" शब्द का अर्थ है—सूक्ष्म दृष्टि से देखना अर्थात् जीवनमें होने वाले दोषों को चिन्तन के द्वारा खोजकर, अपने मे उनके अस्तित्त्व के लिये पश्चाताप करना। जो व्यक्ति अपने दोषों-अपनी भूलों को तटस्थ वृत्ति से देख सकता है और उन्हें स्वीकार करता है, वही उन्हें छोड़ने के प्रयत्न मे प्रवृत्त हो सकता है और सफल हो सकता है। सचमुच में अपनी भूलों को सचाई से जानना, सम्पूर्णता की ओर कदम धरना है।

आलोचना के विभिन्न अपेक्षाओं से कई भेद हो

सकते हैं। काल की अपेक्षा से इसके दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक चातुर्मासिक, सांवत्सरिक और अन्तिम कालिक–ये भेद प्रसिद्ध हैं। उक्त अवसरों पर साधक अस्त-व्यस्त बने हुए जीवन के नन्दन--कानन को आलोचना के साधन से सौन्दर्य प्रदान करता है। यही कारण है कि जैन-धर्ममें चतुर्विंशति स्तव, अनुप्रेक्षा आदि विषयों की तरह आलोचना भी एक आकर्षक विषय रहा है। इसके जरिये से साधक मात्र अपने आन्तरिक जीवनकी—अरे संकेतों से आत्म-कहानी की निष्कपट भावसे झांकी कराने के लिये तत्पर रहे हैं। इसीलिए इस विषय पर काफी लिखा और संग्रह किया गया है। आये दिन भी वैसे प्रयत्न होते रहते हैं। ऐसे ही प्रयत्न का फल प्रस्तुत पुस्तिका है।

यह पुस्तिका संग्रहित है। इसके संग्राहक हैं मेरे गुरुभ्राता स्वर्गीय श्री माणकमुनिजी महाराज। आज से लगभग बारह-तेरह वर्ष पूर्व इस संग्रह की सामग्री एकत्रित हुई थी। परन्तु उनकी रुग्णावस्था के कारण, उनके जीवनकालमें इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जा सका था। स्व. श्री माणकमुनिजी म. मध्य भारत के एक छोटे से कस्बे पटलावद के निवासी थे। आप अल्पवयमे गुरुदेव पं. श्री सूर्यमुनिजी म. के पास दीक्षित हो गये थे। अपनी सामर्थ्य के अनुसार थोड़े समय में ठीक योग्यता प्राप्त कर ली थी। परन्तु वे छोटी उम्रमे ही रोगसे आक्रान्त हो जाने के कारण अधिक विकास नहीं कर पाए।

यों तो वे रुग्ण थे ही, परन्तु संवत २००२ में पक्षाघातके शिकार हो गये । अब चलना-फिरना भी कठिन हो गया। फिर भी एक चातुर्मास लीमडी, दो थान्दला, पाच इन्दौर और एक वर्ष पुनः थान्दला में बिताया और इस वर्ष संवत् २०११ में आषाढ कृष्णा चतुर्थी को थान्दला में उनका स्वर्गवास होगया ; इसके पश्चात सैलाना-संघ की आग्रह भरी विनन्तीसे वर्षावास के लिये यहां आना पड़ा । श्री रतनलालजी डोशी ने प्रसंगवशात् यह सग्रहित सामग्री देखी और प्रकाशनकी इच्छा प्रकट की । इस प्रकार उनके स्वर्गवास के बाद इसके प्रकाशन का अवसर उपस्थित हुआ । इस पुस्तिका मे आलोचना-कुलक और बृहत-आलोचना-ये दो ग्रन्थ संग्रहित हैं ।

आलोचना-कुलक अपभ्रंश भाषाके उत्थानकाल मे रचा गया प्राकृत भाषाका ग्रन्थ प्रतीत होता है । इसके रचयिता का पता नहीं चल सका और न इसकी मूल प्रति या दूसरी प्रति ही मिल सकी, इसलिये इस विषय मे कुछ निश्चित बात नहीं कही जा सकती । यह ग्रन्थ मुख्यतः अन्तिमकालिक आलोचना के उद्देश्य से रचा गया है ।

बृहत्-आलोचनामे मिश्रित भाषा के सग्रहित दोहे हैं । वर्त्तमान मे स्थानकवासी-समाज मे श्री रणजीतसिंहजी द्वारा सग्रहित 'बृहदालोयण' पाक्षिक, सावत्सरिक आदि अवसरो पर पढने की परिपाटी है अतः उसका भी बहुताश संग्रहित कर

लिया गया है । समय की अल्पता के कारण इसको चाहिए वैसा पूर्ण रूप नहीं दे सके हैं। फिर भी दो परिशिष्ट देकर अधिक उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया गया है।

यद्यपि प्रस्तावना लिखने का काम श्री डोशीजी का था। परन्तु उनकी अस्वस्थता के कारण यह काम मुझे करना पड़ा।

इस पुस्तिका के प्रकाशन सहायक हैं यहीं के निवासी "दलीचन्दजी ऊँकारलालजी" फर्म के मालिक श्री प्यारचन्दजी रॉका। स्थानीय 'श्रमणोपासक पुस्तकालय' श्री डोशीजी की प्रेरणा और इनकी सहायता का ही फल है। इस पुस्तकालय के डोशीजी मस्तिष्क है तो रॉकाजी भुजा हैं। वस्तुतः इन व्यक्तियों की धर्म भावना स्तुत्य है।

यही भावना है कि पुस्तिका का सदुपयोग हो।

वर्षावास, २०११
कार्तिक कृष्णा ९
सैलाना (मध्य-भारत)

—'अणु' मुनि

असञ्जम-मन्नाणं, मिच्छत्तं सव्वओ वि य ममत्तं।
जीवेसु अजीवेसु य, तं निन्दे तं च गरिहामि ॥

—आलोचना-कुलक

जिम रज लागे देह पे, स्नान कियॉ हो शुद्ध ।
यों आलोचना के कियाँ, होवे आत्म विशुद्ध ॥

—बृहद्-आलोचना



याचना

बना दो बुद्धि विमल भगवान् !

तर्क जाल सारा ही हरलो, हरो कुमति अभिमान ।
हरो मोह-मद-माया ममता, मत्सर मिथ्या मान ॥

कलुष काममति हरो शोक-भय, हे प्रभु ! हरो अभिमान ।
दम्भ दोष दुर्नीति हरण कर, करो सरलता दान ॥

भोग-योग अपवर्ग-स्वर्ग की, हरो स्पृहा बलवान ।
चाकर करो चारु चरणों का, नित ही निज जन जान ॥

भरदो हृदय भक्ति श्रद्धा से, करो प्रेम का दान ।
कभी न करो दूर निज पद से, मेटो भव का भान ॥

नमोऽत्थुणं आइगराणं चक्खुदयाणं

* आलोचना-कुलक *



जो कोवि मए जीवो, चउगइ-भव-चक्क-मज्झारम्मि ।
दूहविओ मोहेणं, तमहं खामेमि तिविहेणं ॥ १ ॥

चार गति रूप भव चक्र में फंसकर, मैंने मोहवश किसी भी जीव को दुःखित किया हो, उन्हें मैं मन, वचन और काया से खमाता हूं ।

नरएसु उववन्नो, सत्तसु पुढवीसु नारगो होऊं ।
जो कोवि तत्थ जीवो, दूहविओ तं पि खामेमि । २॥

नर्क में सात भूमियों में, नारक, रूप में उत्पन्न होकर, मैंने वहां किसी जीव को दुःखित किया हो तो उन्हे त्रियोग से खमाता हूं ।

निद्दय-परमाहम्मिय-रूवेणं, जं कयाइं दुक्खाइं ।
हा ! हा ! मह जीवेणं, मूढेणं तं पि खामेमि ॥३॥

हाय ! परमाधार्मिक रूप में मैंने—मोही जीव ने, जिनको कितने ही दुःख दिये हैं, उनको भी मैं त्रियोग से खमाता हूं ।

हा ! हा ! तइया मूढो, न याणिमो जं करस्स दुक्खाइं ।
करवत्तय-छेयण-भेअणाइं, केलीइ विहिआइं ॥४॥

असञ्जम-मन्नाणं, मिच्छत्तं सव्वओ वि य ममत्तं।
जीवेसु अजीवेसु य, तं निन्दे तं च गरिहामि ॥
—आलोचना-कुलक

जिम रज लागे देह पे, स्नान कियाँ हो शुद्ध।
यों आलोचना के कियाँ, होवे आत्म विशुद्ध ॥
—बृहद्-आलोचना



याचना

बना दो बुद्धि विमल भगवान्!

तर्क जाल सारा ही हरलो, हरो कुमति अभिमान।
हरो मोह-मद-माया-ममता, मत्सर मिथ्या मान ॥

कलुष काममति हरो शोक-भय, हे प्रभु! हरो अभिमान।
दम्भ दोष दुर्नीति हरण कर, करो सरलता दान ॥

भोग-योग अपवर्ग-स्वर्ग की, हरो स्पृहा बलवान।
चाकर करो चारु चरणों का, नित ही निज जन जान ॥

भरदो हृदय भक्ति श्रद्धा से, करो प्रेम का दान।
कभी न करो दूर निज पद से, मेटो भव का भान ॥

नमोऽत्थुणं आइगराणं चक्खुदयाणं

* आ लो च ना-कु ल क *



जो कोवि मए जीवो, चउगइ-भव-चक्क-मज्झारम्मि ।
दूहविओ मोहेणं, तमहं खामेमि तिविहेणं ॥ १ ॥

चार गति रूप भव चक्र-मे फंसकर, मैंने मोहवश किसी भी जीव को दुःखित किया हो, उन्हे मैं मन, वचन और काया से खमाता हूं ।

नरएसु उववन्नो, सत्तसु पुढवीसु नारगो होउं ।
जो कोवि तत्थ जीवो, दूहविओ तं पि खामेमि ।२॥

नर्क में सात भूमियों में, नारक, रूप में उत्पन्न होकर, मैंने वहा किसी जीव को दुःखित किया हो तो उन्हें त्रियोग से खमाता हूं ।

निद्दय-परमाहम्मिय-रूवेणं, जं कयाइं दुक्खाइं ।
हा ! हा ! मह जीवेणं, मूढेणं तं पि खामेमि ॥३॥

हाय ! परमाधार्मिक रूप में मैंने—मोही जीव ने, जिनको कितने ही दुःख दिये हैं, उनको भी मैं त्रियोग से खमाता हूं ।

हा ! हा ! तइया मूढो, न याणिमो जं करस्स दुक्खाइं ।
करवत्तय-छेयण-भेअणाइं केलीइ विहिआइं ॥४॥

जं किंचि मए तइया, कलकली-भाव-मुवगएण कयं ।
दुक्खं नेरइयाणं, तं पि अ तिविहेण खामेमि ॥५॥

हाय! मैंने वहां मोहान्ध होकर, अपनी क्रीड़ा से, करवत आदि से उनको-नर्क के जीवों को छेदन-भेदन करने से उन्हें होने वाले दुःखों को नहीं देखा।

वहां मैंने तीव्र क्रोध भाव से युक्त होकर, नैरयिकों को जो भी दुःख दिये उनके लिये उन्हें त्रियोग से खमाता हूं।

तिरियाणं चिय मज्झे, पुढवी-माईसु खार-भेएसु ।
अवरुप्प-रसत्थेणं, विणासिआ ते वि खामेमि ॥६॥

तिर्यंच गति मे, क्षार आदि अनेक प्रकार की पृथ्वी आदि मे उत्पन्न होकर, विकृत अहितकारी रस मे रहकर, जिन जीवों का विनाश किया, उनसे भी मैं क्षमा माँगता हूं।

बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय-माइ-णेग-जाइसु ।
जे भक्खिअ-दुक्खविआ, ते वि अ तिविहेण खामेमि ।७।

द्विइन्द्रिय, त्रिइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय आदि अनेक जाति में उत्पन्न होकर, मैंने जिन जीवों को भक्षण करके दुःख पहुंचाया हो तो उन्हें भी मन, वचन और काया से खमाता हूं।

जलयर-मज्झ-गएणं, अणेग-मच्छाइ-रूव-धारेणं ।
आहारट्ठा जीवा, विणासिआ ते वि खामेमि ॥८॥

जलचर जीवों मे मच्छ आदि रूप में उत्पन्न होकर, आहार के लिये, मैंने जीवों का विनाश किया। उन सभी जीवों से भी मैं क्षमा याचना करता हूं।

छिन्ना-भिन्नाय मए, बहुसो दट्ठूण बहु विहा जीवा ।
जलयर-मज्झ-गएणं, ते वि अ तिविहेण खामेमि ॥९॥

जलचर योनि मे जाकर, मैंने अनेक प्रकार के जीवों को देखकर, वहुत से जीवों को छिन्न--भिन्न किए, उन सव को भी त्रियोग से खमाता हूं ।

सप्प-सरीसव-मज्झे, वन्नरो-मज्जार-सुणह-भेएसु ।
जे मे जीवे लविआ, दुक्खत्ता ते वि खामेमि ॥१०॥

सर्प, सरिसृप आदि (उरग) जीवों में, वानर आदि (भुजपुर) जीवों में और विल्ली-कुत्ता आदि (स्थलचर) अनेक प्रकार के जीवों में पैदा होकर मैंने जिन जीवों को मारा या दुःखी किया हो, उन्हे भी त्रियोग से खमाता हूं ।

सद्दूल-सीह-गंडय-जाईसुं जीव-घाइ-जणिआसुं ।
जे उववन्नेण मए, विणासिआ ते वि खामेमि ॥११॥

शार्दूल, सिंह, गेंडा आदि जीवों की हिंसा करने वाली जीव जाति मे उत्पन्न होकर, मैंने जिन जीवों का विनाश किया हो, उनको त्रियोग से खमाता हूं ।

होलाह-गिद्धि-कुकड-हंस-बगाईसु सउणि-माईसु ।
जं खुह-वसेण खद्धा, किमि-माई ते वि खामेमि ॥१२॥

होला, गिद्ध, कुकडा; हंस, वगुले आदि पक्षियों की जाति मे उत्पन्न होकर, मैंने भूख के मारे जिन कीडे आदि जीव को खाया हो, उनको भी मन, वचन और काया से खमाता हूं ।

मणुएसु वि जे जीवा, जिब्भिदिय-मोहिण-मूढेणं ।
पारद्धि-रमंतेणं, विणासिआ ते वि खामेमि ॥१३॥

मनुष्य-योनि में उत्पन्न होकर, मैंने रसनेन्द्रिय के कारण मुग्ध और मूर्ख बनकर तथा आखेट-क्रीड़ा के द्वारा जिन जीवों का विनाश किया हो, उनको भी खमाता हूं।

फास-गिद्धेण जं चिय, पर-दाराइ-गच्छ माणेण ।
जे दूमिअ-दूहविआ, ते वि अ तिविहेण खामेमि ॥१४॥

मैंने स्पर्श-इन्द्रिय के विषय में आसक्त होकर, परस्त्री-गमन आदि के द्वारा जिन जीवों को दमन-पीड़न से दुःखित किया हो, उन्हे भी खमाता हूं।

चक्खुंदिय-घाणिंदि-यसोइंदिय-वसगएण जे जीवा ।
दुक्खंमि मए ठविआ, ते वि अ तिविहेण खामेमि ॥१५॥

मैंने चक्षु, नाक और कान के वशीभूत होकर, जिन जीवों के दुःख में डाला हो, उन्हें भी खमाता हूं।

सामित्तं लहिऊणं, जे बद्धा घाइया य मे जीवा ।
सवराह-निरवराहा, ते वि अ तिविहेण खामेमि ॥१६॥

मैंने स्वामित्व या सत्ता पाकर, जिन अपराधी-निर-पराधी जीवों को बन्दी बनाए और मारे हों, उन्हें भी खमाता हूं।

अक्कमिऊणं आणा, कारविआ जे उ माण-भङ्गेणं ।
तामम--भाव-गएणं, ते वि अ तिविहेण खामेमि ।१७।

मैंने अपनी आज्ञा का उल्लंघन करने के कारण, मान भंग होने से क्रोधित होकर, जिन जीवों के साथ जबरन

या वरजोरी की हो, उन्हे भी खमाता हूं।

अब्भक्खाणं दिन्नं, दुट्ठेण मएण कस्स वि नरस्स।
कोहेण च लोहेण व, तं पि अ तिविहेण खामेमि।१८।

मैंने क्रोध, लोभ, दुष्टता और अभिमान से किसी मनुष्य पर झूठा आरोप लगाया हो तो उन्हें भी खमाता हूं।

पर-आवयाइं हरिहो, पेसुन्नं जं कयं मए इन्हि।
मच्छर-भाव-गएणं, तं पि अ तिविहेण खामेमि।१९।

मैंने ईर्षावश चुगली करके जिनकी आजीविका छीनी हो, उन्हे भी खमाता हूं।

आरिय-खित्ते वि मए, खट्टिय-वागुरिय-डुम्ब-जाइय।
जे वहिया मे जीवा, ते वि अ तिविहेण खामेमि २०।

मैंने आर्य क्षेत्र में भी खटिक, वागरी और डुम आदि नीच जाति मे उत्पन्न होकर, जिन जीवों का वध किया हो, उन्हें भी खमाता हूं।

मिच्छत्त-मोहिएणं, जे जीवा के वि धम्मबुद्धिए।
अहिगरण-कारणेणं, वहाविया ते वि खामेमि॥२१॥

मैंने मिथ्यात्व मोह के उदय (विपरीत मतवाद मे प्रीति होने) से जिन जीवों को धर्म बुद्धि से क्लेश पहुंचा कर मारे हों, उन्हें भी खमाता हूं।

दवदाण-पली-वणयं, काऊणं जे मए जिआ दड्ढा।
सर-दह-तलाय-सोसे, जे वहिआ ते वि खामेमि।२२।

मैंने पल्ली-जंगल आदि में आग लगाकर, जिन जीवों

को जलाया और सरोवर-कुण्ड आदि जलाशय के शोपण से जिन जीवों का वध किया हो उन्हे भी खमाता हूं।

देवत्ते पि हु पत्ते, केलि-पओगेण लोहबुद्धीए ।
जे दूहविया सत्ता. ते वि य तिविहेण खामेमि ॥२३॥

देवता में उत्पन्न होकर मैंने खेल--खेल में और लोभ बुद्धि से जिन प्राणियों को दुःखित किया हो, उन्हे भी त्रियोग से खमता हूं।

भवणवई-मज्झेसु, आसुर-भावेण वट्टमाणेणं ।
निद्दय-हणमाणेणं, दूहविया ते वि खामेमि ॥२४॥

भवनपति देव में उत्पन्न होकर, आसुरी भावों में स्थित होकर, निर्दयता से हनन करने से जिन जीवों को दुःखी किया हो उन्हे भी खमाता हू।

विंतरभावंमि मए, केलीकिल-भावओ य जं दुक्खं ।
जीवाणं संजणियं, तं पि य तिविहेण खामेमि ॥२५॥

मैंने व्यन्तर देव होकर, खेल -क्रीडा के भाव से. जिन जीवों को उद्वेग पहुंचाया हो, उन्हें भी त्रियोग से खमाता हूं।

जोइसिएसु गएणं, विसयाविस--मोहिएण-मूढेणं ।
जो कोवि कओ दूहिओ, पाणी मे तं पि खामेमि ।२६।

मैंने ज्योतिपी देव मे पैदा होकर, विपयों में निर्विपना--अमृत की भ्रान्ति से मूर्ख वनकर, जिस किसी भी प्राणी को दुःखित किया हो, उसे भी खमाता हूं।

पर-रिद्धि--मच्छरेण वि, लोहनिबुड्डेण मोहवसगएणं ।
अभिऊगेण व दुक्खं, जाण कयं ताण खामेमि ॥२७॥

मैंने दूसरे की ऋद्धि-समृद्धि से जलकर, लोभ में डूबकर और लोभ का बन्दी बनकर, आवेश से जिनको दुःख दिया हो, उन्हें भी मैं खमाता हूं ।

इअ चउगइमावन्ना, जे केवि य पाणिणो मए दुहिया ।
दुक्खे वा संठविया, ते वि य तिविहेण खामेमि ॥२८॥

इस प्रकार मैंने चारों गति मे परिभ्रमण करते हुए, जिन किन्हीं जीवों को दुःखित किये हों—दु.ख-सागर में डाले हों, उन सभी जीवों को मन, वचन और काया से खमाता हूं ।

सव्वं खमंतु मज्झं, अहंपि तेसिं खमामि सव्वेसिं ।
जं जं कयमवराहे, वेरं चइऊणं मज्झत्थो ॥ २९ ॥

सभी जीव मुझे क्षमा करें । मैं भी उन सभी को क्षमा करता हूं । जो भी आपसी अपराध और वैर-विरोध है, उन्हें भूलकर माध्यस्थ भाव में स्थिर होता हूं ।

न य कोवि मज्झ वेरो, सयले वा इत्थ जीवलोगंमि ।
दंसण—नाण- सहावो इक्कोहं निम्ममो निच्चो ॥३०॥

इस सारे जीव लोक मे मेरा कोई भी वैरी नहीं है (क्योंकि वैर मेरा स्वभाव नहीं है ।) मैं ज्ञान-दर्शन स्वभाव वाला अकेला हूं— मेरा कोई भी नहीं है । मैं नित्य हूं ।

जिण-सिद्धा-सरणं मे, साहूधम्मो य मंगलं परमं।
जिण-नवकारो सरणं, कम्मक्खय-कारणं होउ ॥३१॥

अरिहन्त, सिद्ध, साधु और सर्वज्ञ कथित दया धर्म सर्व श्रेष्ठ मङ्गल हैं और ये मेरे लिये शरण्य हैं। राग-द्वेष से रहित आत्मा को नमस्कार करना (नमस्कार मन्त्र) भी शरण है क्योंकि वह कर्म-क्षय का कारण होता है।

आयरिय--उवज्झाये, सीसे साहम्मिए कुलगणे य।
जे मे केइ कसाया, सव्वे तिविहेण खामेमि ॥३२॥

आचार्य, उपाध्याय, शिष्य, गुरुकुल और गण के प्रति मैंने जो भी कषाय किये हों, उन सब के लिये मैं मन, वचन और काया से क्षमा-याचना करता हू।

सव्वे अवराह-पहे, खामेमि अहं खमेउ से भयवं।
अहमपि खामेमि सुद्धो,गुण- संघायस्स संघस्स ॥३३॥

हे भगवान्! अपराध-पथ मे पड़ा हुआ मैं क्षमा चाहता हू। अतः मुझे क्षमा करें और मैं शुद्ध हृदय से गुणों के समूह संघ से क्षमा मांगता हू।

सव्व दुक्ख--पहीणाणं, सिद्धाणं अरहओ नमो।
सद्दहे जिण-पण्णत्तं, पच्चक्खामि य पावगं ॥३४॥

सभी दुःख से रहित सिद्ध और अरिहन्त प्रभु को नमस्कार करता हू और वीतराग--कथित तत्त्वों पर श्रद्धा करके पाप को छोड़ता हूं।

जं किंचि उच्चरियं, तमहं निंदामि सव्व-भावेणं।
सामाइयं च तिविहं, करेमि सव्वं निरागारं ॥३५॥

जो कुछ भी मुझसे बुरा आचरण हुआ हो उसकी मैं सम्पूर्ण भाव से निन्दा करता हूं और आगार से रहित सम्पूर्ण सामायिक को मन, वचन और काया से ग्रहण करता हूं।

बाहिरब्भितरं उवहिं, सरीराइ सभोयणं।
मणसा काय वक्केणं, सव्वं तिविहेण वोसिरे ॥३६॥

धन-धान्य, स्त्री-पुरुष आदि बाह्य उपधि, क्रोध, लोभ आदि अभ्यन्तर उपधि, भोजन सहित शरीर आदि (पर से ममत्त्व भाव) को मन, वचन और काया से और सम्पूर्ण तीनों करणों से छोड़ता हूं।

इक्को उपज्जए जीवो, इक्को चेव विवज्जई।
इक्कस्स होइ मरणं, इक्को सिज्झइ नीरओ ॥३७॥

जीव अकेला ही उत्पन्न होता है, अकेला ही दुःखी होता है, अकेले का ही मरण होता है और अकेला ही सिद्ध व कर्म-रहित होता है।

इक्को करेइ कम्मं, फलमवि तस्सिक्कओ समणुहवइ।
इक्को जायइ मरइ, परलोयं इक्कओ जाइ ॥ ३८ ॥

जीव अकेला कर्म करता है, उनका फल भी अकेला भोगता है, अकेला जन्मता-मरता है और अकेला ही परिभ्रमण करता है।

इक्को मे सासओ अप्पा, नाण-दंसण लक्खणो।
सेसा मे बहिरा भावा, सव्वे संजोग-लक्खणा ॥ ३९ ॥

ज्ञान-दर्शन लक्षणवाला मेरा अकेला (अर्थात् भौतिक भावों से रहित) आत्मा शाश्वत् है और वाकी संयोग लक्षण-वाले सभी भाव मुझसे बाह्य=भिन्न हैं।

संजोग मूल जीवेण, पत्ता दुक्ख परंपरा ।
तम्हा संजोग संबंधं, सव्वं तिविहेण वोसिरे ॥४०॥

जीव संयोग के कारण दुःख-परम्परा को प्राप्त करता है। इसलिये सभी संयोग सम्बन्धों को, मन, वचन और काया से छोड़ता हूँ।

असंजम-मन्नाणं, मिच्छत्तं सव्वओ वि य ममत्तं।
जीवेसु अजीवेसु य, तं निंदे तं च गरिहामि ॥ ४१ ॥

जीव और अजीव में असंयम, झूठी श्रद्धा और सभी प्रकार के अपनेपन की निन्दा और गर्हा करता हूँ।

सव्वं पाणारंभं, पच्चक्खामि अलीय-वयणं च ।
सव्वं अदत्तादाणं, अबंभ-परिग्गहं चेव ॥ ४२ ॥

सभी जीवों की हिंसा, सभी झूठ वचन, सभी तरह की चोरी, पूर्णतः अब्रह्मचर्य और सभी प्रकार के परिग्रह को छोड़ता हूँ।

सव्वं च असणं पाणं, चउव्विहं जो य बाहिरो उवहि (?)।
अब्भितरं च उवहिं, सव्वं तिविहेण वोसिरे ॥ ४३ ॥

सभी अशन-पान आदि चार प्रकार का आहार, बाह्य

और अभ्यन्तर उपधि को त्रियोग से छोड़ता हूं।

समणोमित्ति य पढमं, बीयं सव्वत्थ-संजओमित्ति।
सव्वं च वोसिरामि य, जिणेहिं जं जं च पडिकुट्ठं ॥४४॥

पहले तो श्रमण=समताशील तपस्वी हूं और दूसरे सर्वार्थ=सम्पूर्ण संयमी वन चुका हूं। अतः जिन जिनका जिनेन्द्र ने निषेध किया है उन सभी को छोड़ता हूं।

मम मंगलमरिहंता, सिद्धा साहू सुयं च धम्मो य।
तेसिं सरणोवगओ, सावज्जं वोसिरामि त्ति ॥ ४५ ॥

अरिहंत, सिद्ध, साधु, श्रुत-शास्त्र और धर्म मेरे लिये मङ्गलकारी हैं। इनके शरण में जाकर, सभी सावद्य कर्मों को छोड़ता हूँ।

हंतूण मोहजालं, छित्तूण य अट्ठकम्म-संकलियं।
जम्मए मरण-हट्टं, भित्तूण भवाउ मुच्चिहिसि ॥ ४६ ॥

मोह रूपी जाल का नाश करके, कर्म रूपी साङ्कल को तोड़कर और जन्म-मरण रूपी हाट को छिन्न-भिन्न करके भव (कारागार) से मुक्त हो जाऊँ।

अरहंता मंगलं मज्झ, अरिहंता मम देवया।
अरिहंते कित्तइत्ताणं, वोसिरामि त्ति पावगं ॥४७॥

अरिहन्त मेरे लिये मङ्गलकारी हैं और अरिहन्त मेरे देवता हैं; इसलिये अरिन्हत का कीर्तन=गुणगान करके, पापों को छोड़ता हूं।

सिद्धा य मंगलं मज्झ, सिद्धा य मम देवया ।
सिद्धे य कित्तइत्ताणं, वोसिरामि त्ति पावगं ॥४८॥

सिद्ध प्रभु मेरे लिये मंगलकारी हैं; सिद्ध प्रभु मेरे देवता हैं। इसलिये उनका गुणगान करके, पापों को छोड़ता हूं।

आयरिया मंगलं मज्झ, आयरिया मम देवया ।
आयरिए कित्तइत्ताणं, वोसिरामि त्ति पावगं ॥४९॥

आचार्य मेरे लिये मंगलकारी हैं। आचार्य मेरे देवता हैं। अतः मैं आचार्य के गुणगान करके, पाप को छोड़ता हूं।

उवज्झाया मंगलं मज्झ, उवज्झाया मम देवया।
उवज्झाए कित्तइत्ताणं, वोसिरामि त्ति पावगं ॥५०॥

उपाध्याय मेरे लिये मंगलकारी हैं। उपाध्याय मेरे देवता हैं। इसलिये उनके गुणगान करके, पाप को छोड़ता हूं।

सव्व साहु मंगलं मज्झ, सव्व साहु मम देवया।
सव्व साहु कित्तइत्ताणं, वोसिरामि त्ति पावगं ॥५१॥

सभी साधु मेरे लिये मंगलकारी हैं—मेरे देवता हैं। उनके गुणगान करके, पाप को छोड़ता हूं या उनसे अलग होता हूं।

खामेमि सव्वे जीवे, खमामि अहं सव्वजीवाणं ।
सम्मं ते सव्वभूएसु, वेरं मज्झ न केणइ ॥ ५२ ॥

मैं सभी जीवों से क्षमा चाहता हूं और सभी जीवों

को क्षमा करता हूं। सभी प्राणियों में समभाव को धारण करता हूं।

उपसंहार

एयं पच्चक्खाणं, अणुपालेऊण सुविहीओ सम्मं।
वेमाणिएसु देवो, हविज्ज अहवावि सिज्झिज्जा॥ ५३॥

सुविहित=सर्वज्ञोक्त धर्म में स्थिर उत्तम व्यक्ति इस प्रत्याख्यान का अच्छी तरह से पालन करके वैमानिक देव होता है या सिद्ध होता है।



卐 बृहत्-आलोचना 卐



❀ स्तुति ❀

सिद्धश्री परमातमा, अरि गंजन अरिहन्त ।
इष्ट देव वंदूं सदा, भय भञ्जन भगवन्त ॥१॥
अर्हत् सिद्ध समरूं सदा, आचारज उवझाय ।
साधु सकल के चरन को, वंदूं शीस नमाय ॥२॥
शासन नायक समरिये, भगवन वीर जिनन्द ।
अलिय विघन दूरे हरे, आपे परमानन्द ॥३॥
अंगुष्ठे अमृत वसे, लब्धि तणा भण्डार ।
श्रीगुरु गौतम समरिये, वाञ्छित फल दातार ॥४॥
श्रीगुरुदेव प्रसाद से, होय मनोरथ सिद्ध ।
ज्यों घन वरषत वेलि तरु, फूल फलन की वृद्ध ॥५॥
पञ्च परमेष्टि देव को, भजन पूर पंचान ।
कर्मशत्रु भाजे सभी, होय परम कल्याण ॥ ६ ॥
श्रीजिन युग पद कमल में, मुज मन भँवर वसाय ।
कब उगे वह दिनकरु, श्रीमुख दर्शन पाय ॥७॥
करुणा निधि ! किरपा करी, कठिन कर्म मुज छेद ।
मिथ्या ज्ञान रु मोहको, करजो ग्रन्थी भेद ।८॥

शासनेश श्रीवीर जिन ! तुम लग मेरी दौड़ ।
जिम समुद्र में पोत बिन, सूझत और न ठोड़ ॥९॥
भव भ्रमण संसार दुख, ताका पार न वार ।
निर्लोभी सद्गुरु बिना, कौन उतारे पार ॥१०॥
इह अपार संसारमें, शरण अन्य नहिं कोय ।
याते तुम पद पोत ही, भक्त सहायी होय ॥११॥
पतित उधारन नाथजी ! अपनो विरुद विचार ।
भूल चूक सब माहरी, खमिये वारम्वार ॥१२॥
सिद्धारथ नृप कुल तिलो, त्रिशला मात मल्हार ।
अवनीतल तुम अवतरे, करवा जग उपकार ॥१३॥
आज मनोरथ मुज फल्या, नाठा दुख दंडोल ।
तूठो जिन चौवीसमों, प्रकट्या पुण्य कलोल ॥१४॥
कामधेनु गो शब्द से, तत्ते तरु समवृक्ष ।
मम्मे मणि चिन्तामणी, गौतम नाम प्रत्यक्ष ॥१५॥
क्रोड नवाणूं धन तज्यो, त्यागी आठों नार ।
उपकारी नित वंदिये, श्री जंबू अनगार ॥१६॥
संतन की सेवा किये, प्रभु रीझत है आप ।
जाका बाल खिलाइये, ताका रीझत बाप ॥१७॥
भव सागर ससार मे, दीपा श्रीजिनराज ।
उद्यम कर पहुँचे तिरे, बैठी धर्म जहाज ॥ १८ ।
कामी कपटी लालची, कठिन लोह को दाम ।
तुम पारस परसग से, सोवन थास्यूं स्वाम ॥ १९ ॥

नहिं विद्या नहिं वचन बल, नहिं धीरज गुन ज्ञान ।
तुलसीदास गरीब की, पत राखो भगवान ? ॥ २० ॥

आलस विषय कषाय वश, आरम्भ परिग्रह काज ।
योनि चौरासी लख भम्यो, अब तारो महाराज ॥२१॥

पात्र कुपात्रज मैं हुओ, अवगुण भर्यो अनंत ।
या हित बुद्धि विचार के, माफ करो भगवन्त ॥ २२ ॥

तीन काल की खबरि तुम, तीन लोक के तात ।
त्रिविधि सुद्ध वन्दन करूं, त्रिविधि ताप मिटि जात ॥२३॥

ऐसे तो कहत न बने, मो उर निवसों आय ।
तातैं मोकूं चरन तट, लीजै आप बसाय ॥ २४ ॥

तुममें मुझमे भेद यों, और भेद कछु नाहिं ।
तुम तन तजि परिब्रह्म भये, हम दुखिया तन मांहि ।२५।

याद हिया मे नाम मुख, करौ निरन्तर वास ।
जौ लौं वसवो जगत में, भरवो तन में सांस ॥२६॥

मन मूरति मगल वसी, मुख मंगल तुम नाम ।
एही मंगल दीजिए, पर्यौ रहूं तुम धाम ॥ २७ ॥

जो हूं कहाउ और तैं, तौ न मिटे उर-भार ।
मेरी तौ मोपै बने, तातैं करूं पुकार ॥ २८ ॥

चिन्तन

विषयारम्भ कषाय वश, भमियो काल अनन्त ।
लख चौरासी जोनि मे, अब तारो भगवन्त ॥१॥

मिथ्या मोह अज्ञान को, भरियो
वैद्यराज गुरु शरन से, औषध ज्ञान
बुरा बुरा सब को कहैं, बुरा न दीसे
जो घट सोधूं आपनो, मुझ सा बुरा न कोय ।
कहवा में आवे नहीं, अवगुण भर्या अनन्त ।
लिखवा में क्योंकर लिखूं, जाणो श्रीभगवन्त ।।४।।
परिग्रह ममता को तजी, पञ्च महाव्रत धार ।
अन्त समय आलोयणा, करूं संथारो सार ।।५।।
तीन मनोरथ यह कहैं, जो ध्यावे नित मन्न ।
शक्ति सार वरते सही, पावे शिव सुख धन्न ।।६।।
अर्हत् देव निर्ग्रन्थ गुरु, संवर निर्जर धर्म ।
आगम श्रीजिनवर कथित, यही जैन मत मर्म ।।७।।
विषयारम्भ कषाय तज, शुध समकित व्रत धार ।
जिन आज्ञा परमान कर, निश्चय खेवो पार ।।८।।
क्षण निकमो रहनो नहीं, करनो आतम काम ।
भणनो गुणनो सीखनो, रमनो ज्ञानाराम ।।९।।
सिद्धा जैसो जीव है, जीव सिद्ध सो होय ।
कर्म मैल का अन्तरा, बूझे विरला कोय ।।१०।।
कर्म हि पुद्गल रूप है, जीव रूप है ज्ञान ।
दो मिल कर बहु रूप है, विछड्या पद निर्वाण ।।११।।
जीव कर्म न्यारो करो, उत्तम नरभव पाय ।
ज्ञानातम वैराग्य से, धीरज ध्यान लगाय ।।१२।।

जीव द्रव्य से एक है, क्षेत्र असंख्य प्रमान।
रहे सर्वदा काल से, भावे दर्शन ज्ञान ॥१३॥
गर्भित पुद्गल पिण्ड में, अलख अमूरति देव।
फिरे सहज भव चक्र में, यह अनादि की टेव ॥१४॥
फूल अतर घी दूध में, तिल में तेल छिपाय।
यों चेतन जड़ कर्म संग, बँध्यो ममत दुख पाय ।१५।
जो जो पुद्गल की दशा, ते निज माने हंस।
या ही भरम विभावते, बढ़े करम को बंस ॥१६॥
रतन बंध्यो गठड़ी विषे, सूर्य छिप्यो घन माय।
दियो सिंह को पींजरे, जोर चले कछु नाय ॥१७॥
ज्यों वन्दर मदिरा पिया, बिंछू डंकित गात।
भूत लगे कौतुक करे, त्यों कर्मों उत्पात ॥१८॥
जीव मूढ़ है कर्म से, पावे नाना रूप।
कर्म रूप मलके टले, चेतन सिद्ध स्वरूप ॥१९॥
चेतन उज्वल द्रव्य पर, रह्यो कर्म मल छाय।
तप संयम से धोवता, ज्ञान ज्योति बढ़ जाय ॥२०॥
ज्ञान थकी जाने सकल, दर्शन श्रद्धा रूप।
चारित से आवत रुके, तप से क्षपन स्वरूप ॥२१॥
कर्म रूप मलके शुधे, चेतन चान्दी रूप।
निर्मल ज्योती प्रकट भे, केवल ज्ञान अनूप ॥ २२ ॥
कर्म रूप बादल मिटे, प्रकटे चेतन चंद।
ज्ञान रूप गुण चांदनी, निर्मल ज्योति अमंद ॥२३॥

राग द्वेष दो वीज से, कर्म बन्ध की व्याध ।
ज्ञानातम वैराग्य से, पावे मुक्ति समाध ॥ २४ ॥
अवसर बीत्यो जात है, अपने बस कछु होत ।
पुण्य छता ही पुण्य हो, दीपक दीपक ज्योत ॥२५॥
कल्प वृक्ष चिंतामणी,' इन भव में सुखकार ।
ज्ञान वृद्धि इन से अधिक, भव दुख भंजनहार ।२६।
राई सम घट वध नहीं, देख्या केवल ज्ञान ।
यह निश्चय कर जानिये, तजिये पहलो ध्यान ।२७।
दूजा भी नहिं चिंतिये, कर्म बन्ध बहु दोष ।
तीजा चौथा ध्याय के, करिये मन सन्तोष ॥२८॥
गई वस्तु सोचे नहीं, आगम वच्छे नांय ।
वर्तमान वरते सदा, सो ज्ञानी जग मांय ॥ २९ ॥
सम्यग दृष्टी जीव यों, करे कुटुम्ब प्रतिपाल ।
अन्तर्गत न्यारो रहे, (ज्यों) धाय खिलावे बाल ।३०।
सुख दुख दोनों वस रहें, ज्ञानी के घट मांय ।
गिरि सर दीखे मुकुर मे, भार भींजवो नाय ॥३१॥
जो जो पुद्गल फरसना, निश्चै फरसे सोय ।
ममता समता भाव से, कर्म बन्ध खय होय ॥३२॥
बांध्या सो ही भोगवे, कर्म शुभाशुभ भाव ।
सफल निर्जरा होत है, यह समाधि चित्त चाव ।३३।
वांध्या विन भुगते नहीं, विन भुगते न छुड़ाय ।
आप हि करता भोगता, आप हि दूर कराय ॥३४॥

पथ्य कुपथ घट वढ़ करी, व्याधी घट वढ़ थाय ।
पुण्य पाप कर जीव यों, सुख दुख जग में पाय ।३५।
सुख दीधां सुख होत है, दुःख दिया दुख होय ।
आप हणे नहिं अन्य को, निज को हणे न कोय ।३६।
ज्ञान गरीबी गुरु वचन, नरम वचन निर्दोष ।
एता कभी न छांडिये, श्रद्धा शील सन्तोष ॥३७॥
सत मत छोड़ो हो नरा ? लक्ष्मी चौगुनी होय ।
सुख दुख रेखा कर्म की, टाली टले न कोय ॥३८॥
गौधन गजधन रत्नधन, कञ्चन खान सुखान ।
जब आवे सन्तोष धन, सब धन धूल समान ॥३९॥
शील रत्न मोटो रतन, सब रतना की खान ।
तीन लोक की सम्पदा, रही शील मे आन ॥४०॥
शीले सर्प न आभडे, शीले शीतल आग ।
शीले अरि करि केसरी, भय जावे सब भाग ॥४१॥
शील रतन के पारखू, मीठा वोले बैन ।
सब जगसे ऊंचा रहैं, नीचा राखे नैन ॥४२॥
तनकर मनकर वचनकर, देत न काहू दुःख ।
कर्म रोग पातक झरे, देखत ताँका मुक्ख ॥४३॥
पान खरंता इम कहै, सुन तरुवर वनराय ।
अबके विछुड़े कब मिले, दूर पड़ेगे जाय ॥४४॥
तब तरुवर उत्तर दियो, सुनो पत्र इक बात ।
इस घर की यह रीत है, इक आवत इक जात ॥४५॥

वरस दिनांकी गाठको, ओत्सव गाय बजाय ।
मूरख नर समझे नहीं, वरस गांठ को जाय ॥४६॥
करज विराना काढ़के, खरच किया बहु नाम ।
जब मुद्दत पूरी हुवे, देना पडसी दाम ॥४७॥
बिना दिया छूटे नहीं, यह निश्चय कर मान ।
हँस-हँस के क्यों खरचिये, दाम विराना जान ॥४८॥
लेत खुशी देते दुखी, यही करज की रीत ।
लेत नहीं सो देत कब, सुख दुख बिना नचीत ।४९।
लेत दुखी देते सुखी, ज्ञानवान की रीत ।
खुद ही कर्म कमाइया, क्यों होजे विपरीत ॥५०॥
जीव वध करता थकां, लगे मिष्ट अज्ञान ।
ज्ञानी इम जाने सही, विष मिलिया पकवान ॥५१॥
काम भोग प्यारा लगे, फल किंपाक समान ।
मीठी खाज खुजालतां, पीछे दुख की खान ॥५२॥
तप जप संयम दोहिलो, औषध कड़वी जान ।
सुख कारण पीछे घनो, निश्चय पद निर्वाण ॥५३॥
डाभ अणी जल विन्दुवो, सुख विषयन को चाव ।
भव सागर दुख जल भर्यो, यह संसार स्वभाव ।५४।
चढ़ जहा से पतन हो, शिखर नहीं वो कूप ।
जो सुख माहीं दुख वसे, सो सुख भी दुख रूप ।५५।
जबलग जिसके पुण्य का, पहुँचा नहीं करार ।
तबलग उसको माफ है, औगुन करो हजार ॥५६॥

पुण्य क्षीण जब होत है, उदय होत है पाप ।
दाजे वन की लाकडी, प्रजले आपो आप ॥५७॥

पाप छिपाया नां छिपे, छिपे तो मोटा भाग ।
दावी दूबी नां रहैं, रुई लपेटी आग ॥५८॥

बहु बीती थोडी रही, अब तो सुरत सँभार ।
परभव निश्चय जावणो, वृथा जन्म मत हार ॥५९॥

चार कोस ग्रामान्तरे, खरची बाधे लार ।
परभव निश्चय जावणो, करिये धर्म विचार ॥६०॥

रज विरज ऊंची गई, नरमाई के पान ।
पत्थर ठोकर खात है, करडाई के तान ॥६१॥

अवगुन उर धरिये नहीं, होय वृक्ष बंबूल ।
गुन लीजे कालू कहैं, नहिं छाया में शूल ॥६२॥

जैसी जिनपै वस्तु है, वैसी दे दिखलाय ।
ताँका बुरा न मानिये, लेन कहां पे जाय ॥६३॥

निज आतम को दमन कर, पर आतम को चीन ।
परमातम को भजन कर, सो ही मत परवीन ॥६४॥

समझू संके पाप से, अणसमझू हरषन्त ।
वह लुक्खा वह चीकणा, इन विध कर्म ववन्त ॥६५॥

समझ सार संसार में, समझू टाले दोष ।
समझ समझ के जीव यों, गया अनन्ता मोक्ष ॥६६॥

उपशम विषय कषायनो, संवर तीनों योग ।
किरिया जतन विवेक से, मिटे कर्म दुख रोग ॥६७॥

रोग मिटे समता बधे, समकित व्रत आराध।
निर्वैरी सब जीव से, पावे मुक्ति समाध ॥६८॥
अपराधी गुरुदेव को, तीन भवन को चोर।
ठगूं बिराना माल मैं, हा हा कर्म कठोर ॥६९॥
कामी कपटी लालची, अपछन्दा अवनीत।
अविवेकी क्रोधी कठिन, महा पापी रणजीत ॥७०॥
सूत्र अर्थ जानूं नहीं, अल्प बुद्धि अनजान।
जिन भाषित सब शास्त्र का, अर्थ पाठ परमान ।७१।
मैं मगसेल्यो हो रह्यो, नहीं ज्ञान रस भींज।
गुरु सेवा नहिं कर सकूं, किम मुज कारज सीज ।७२।
जाने देखे जो सुने, देवे सेवे मोय।
अपराधी उन सबन को, बदला देस्यूं सोय ॥७३॥
शुद्ध धर्म जिन पायके, वरतूं विषय कषाय।
यही अचम्भा हो रहा, जल में लागी लाय ॥७४॥
जितनी जग में वस्तु है, नीच नीच से नीच।
सब से पापी मैं बुरो, फस्यो मोह के बीच ॥७५॥
एक कनक अरु कामनी, मोटी दो तलवार।
उठ्यो थो जिन भजनको, लियो बीच में मार ॥७६॥
त्यागन कर संग्रह करूं, विषय वचन आहार।
तुलसी यों मुज पतितको, वार वार धिक्कार ॥७७॥
राग-द्वेष दो बीज है, कर्म बंध फल देत।
इनकी फॉसी मे बँध्यो, छूटूं नहीं अचेत ॥७८॥

आठ कर्म परबल करी, भमियों जीव अनाद ।
आठ कर्म छेदन करी पावे, मुक्ति समाध ॥७९॥
सब भक्षी जिम अग्नि हूं, तपियो विषय कषाय ।
अपछंदा अवनीत मैं, धर्मी ठग दुख दाय ॥८०॥
कहा भयो घर छांडके, तज्यो न माया संग ।
नाग तजी जिम कांचली, विष नहिं तजियों अंग ॥८१॥
आतम निंदा शुध भणी, गुणिजन वन्दन भाव ।
राग-द्वेष उपशम करी, सबसे खतम खमाव ॥८२॥
जड़ भावे जड़ परिणमे, चेतन चेतन भाव ।
कोइ कोइ पलटे नहीं, छोडी आप स्वभाव ॥८३॥
जड़ चेतन संयोग ये, खाण अनादि अनन्त ।
कोय न कर्त्ता तेहनो, भाखे जिन भगवन्त ॥८४।
केवल निजी स्वभावनो, अखंड वरते ज्ञान ।
कहिये केवलज्ञान ते, देह छतां निर्वाण ॥८५॥
कोटि वर्षनो स्वप्न पण, जाग्रत थतां समाय ।
यों हि विभाव अनादिनो, ज्ञान हुवा विनसाय ॥८६॥
आगल ज्ञानी थइ गया, वर्तमानमां होय ।
थाशे काल भविष्यमां, मार्ग भेद नहिं कोय ॥८७॥
मुख थी ज्ञान कथे सदा, अन्तर तज्यो न मोह ।
ते पामर प्राणी करे, मात्र ज्ञानिनो द्रोह ॥८८॥
मोह भाव क्षय होय ज्यां, अथवा होय प्रशान्त ।
ते कहिये ज्ञानी दशा, बाकी कहिये भ्रान्त ॥८९॥

लख चौरासी योनि में, फिर्यो अनन्ती वार ।
इक इक योनीस्थान में, लियो अमित अवतार ॥१०१॥
चौद राज परमाणु या, सुई अग्रमय ठाम ।
जीव रुल्यो कर्मा वशे, मूरख जड़ हो ताम ॥१०२॥
निगोद सूक्षम बादरे, अनन्त पुद्गल धार ।
काल तिहां एतो रह्यो, करिये हृदय विचार ॥१०३॥
श्वास उश्वास हु एक मे, सार्धे सतरह कीध ।
सूक्ष्म निगोदे में मर्यो, यह जिन वचन प्रसिद्ध ॥१०४॥
नरक विकल तिर्यग् गती, भ्रमण किया वहु हेव ।
भुवन व्यन्तरा जोतषी, अरु वैमाणिक देव ॥१०५॥
भव भव भमता यह मिल्यो, उत्तम नर अवतार ।
भव मिथ्यात्वे निर्गम्यो, काज न सर्यो लिगार ॥१०६॥
जितना जगमे जीव है, सबसे वार अनन्त ।
विध विध से सगपण कियो, आयो नहिं कछु अंत ॥१०७॥
तो कुन अपना पारका, कुन वैरी कुन मित्त ।
राग द्वेष दूरे करी, कर समता इक चित्त ॥१०८॥
पूर्वे कोटि आयू धणी, गुरुवर ज्ञान अपार ।
उत्पत्ती भव आपणी, कहता नावे पार ॥१०९॥
पिता पुत्र हो अवतरे, पुत्र पिता हो जोय ।
माता भगनी नारि हो, नारि माता होय ॥११०॥
रंको सुपना मायने, पायो जगको राज ।
इक जाग्यो तब एकलो, राज न सरियो काज ॥१११॥

सौदा लेवन जन मिले, जहां जुडे सब हाट ।
धन सारो व्यवसाय कर, फिर चाल्यो निज वाट ।११२।
यों भव भमतां सब मिल्या, जगत कुटुम्बी हाट ।
पुण्य पाप व्यवसाय कर, जोहिं उतरिये घाट ।।११३।।
उत्तम कुल नर भव मिल्यो, पाय धर्म जिनराय ।
तज प्रमाद उद्यम करो, खिण लाखीणी जाय ।।११४।।
बड़पन होवे धर्म नां, यौवन विषय विताय ।
गयो खेल में बालपण, फिर पीछे पछताय ।।११५।।
जरा आय जोवन गयो, पलित हुआ सिर केस ।
लोलुपता छोड़ी नहीं, धर्म कियो ना लेस ।।११६।।
छते हाथ नहिं वावर्यो, संवल लियो न साथ ।
आयु गई मन चेतियो, फेर घसे निज हाथ ।।११७।।
धन यौवन नर रूप को, करतो गर्व गिवाॅर ।
कृष्णरायकी द्वारिका, जातां लगी न वार ।।११८।।
एक आंख के फरूखड़े, उथल पुथल हो जाय ।
यों जानी ने जीवड़ा, मत कर ममता माय ।।११९।।
के दिन राणा राजिया, कब ही होता देव ।
कोई दिन हो रांक तूं, करतो परकी सेव ।।१२०।।
कबही पूर कपूर तुज, भाता नहीं लिगार ।
कबही रोटी कारणे, भमतो घर-घर द्वार ।।१२१।।
देव रूप सम दीपतो, लख मोहे नर-नार ।
सो नरकी हो पलक में, वल जल काया छार ।।१२२।।

ज्यां विन घड़िय न चालती, सो वरसां सो जाय।
वह वल्लभ विसरी गयो, अन्य हु से चितलाय ॥१२३॥
देखत ही अन्धो हुवो, मोह् विटाणो बाल।
भण्या-गुण्या मूरख वली, सवही बाल गुपाल ॥१२४॥
पाप घड़ो पूरण भरी, लीनो सिर पे भार।
सो किम छूटे प्राणियां, कियो न धर्म लिगार।१२५।
पर पीठे निन्दा करे, देवे कूड़ा आल।
परका मर्म प्रकाशतो, तिनसे वर चण्डाल ॥१२६॥
षट् मासी तप पारणे, इक सिथ ले आहार।
करतो निन्दा, नहीं टले, तस दुर्गति अवतार।१२७।
छार उपर जिम लीपणो, तिम क्रोधे तप कीध।
तस तप जप संजम मुधा, एको काज न सीध।१२८।
पूर्व कोटि आयुष लगे, पाल्यो संयम भार।
क्रोध किया सब हो वृथा, छिन में संजम छार।१२९।
पर औगुन सरसव समो, करतो मेरु समान।
क्यों निन्दा तूं पारकी, करतो आप अयान ॥१३०॥
पर औगुन जिम देखतो, त्यों पर गुण तूं जोय।
पर गुण लेना जीव ने, अव्यय अमर पद होय ॥१३१॥
जो निन्दा पर की करे, वही जीव जगमाय।
मल पट धोवे पारका, मर वह दुर्गति जाय ॥१३२॥
जो मल धोवे पारका, गुणिजन का निज टीम।
ते दुर्जन दीयो अधिक, जगमां क्रोड वरीस ॥१३३॥

जो रचना दिन उदय में, सो रचना नहिं सांझ ।
यों जानीने जीव तूं, चेतो हिवडा मांझ ॥१३४॥
आशा अम्बर जेवडी, मरनो पगलां हेठ ।
धर्म विना जो दिन गया, समझो सबही नेठ ॥१३५॥
कर्म किए छूटे नहीं, इन्द्र चन्द्र नर देव ।
राजा राणा छत्रपति, अपर मनुज कुन हेव ॥१३६॥
वरष दिवस घर घर भम्या, आदिनाथ-भगवंत ।
कर्म वशे तिन दुख लिया, जे जगमा बलवंत ॥१३७॥
पार्श्वनाथ पडिमा गही, दीनों दुःख सुरिंद ।
टाल्यो वह उपसर्ग को, पद्मावति धरणिंद ॥१३८॥
काने खीला घालिया, चरणे रॉधी खीर ।
श्वान लगाया काटना, दुख सह्या श्रीवीर ॥१३९॥
मल्ली माया तप कियो, पाया तिय अवतार ।
क्रोड देव सेवा करे, देखो कर्म विचार ॥१४०॥
पुरुष विषे चूडामणी, भरत नरेश्वर राय ।
बाहुबली से युद्ध कर, भरत पराजय पाय ॥१४१॥
किया कर्म छूटे नहीं, जेनां विषमय बंध ।
ब्रह्मदत्त नर चक्रपति, हुओ कर्म से अंध ॥१४२॥
चक्रवर्ति संभूम नृप ऋद्धि तणो नहिं पार ।
कर्म विवश परिवार से, डूबा सरित मँझार ॥१४३॥
पाडव पञ्च अतुल बली, हुवा उन्हे वनवास ।
एक वर्ष छाने फिरे, घर घर होय निराश ॥१४४॥

राम लखण जगमें बली, जपें जगत सब नाम ।
सो ही वन वनमें भमें, नीतिवान गुण धाम ॥१४५॥
रावण को लछमण हने, कृष्ण हने जरासंध ।
जराकँवर हरिको हने, देखो कर्म कुबंध ॥१४६॥
निज पुत्री ताते वरी, तस कूंखे सुत देव ।
कर्मवशे जा ऊपनो, त्रिपृष्ट वासूदेव ॥१४७॥
भमताँ भमताँ अवतर्या, देवानंदा कूंख ।
रात बयासी तिहाँ रहे, लहे कर्म से दुःख ॥१४८॥
हाट विकानी चंदना, लहें सुभद्रा आल ।
नल विरह दमयति ले, बड़ा कर्म चंडाल ॥१४९॥
कलावती कर छेदिया, खेंचा द्रौपदि चीर ।
सीतानल सीतल कियो, शील गुणे हो नीर ॥१५०॥
मेरु चले पुनि ध्रुव चले, सागर लोपे कान ।
कर्म किया छूटे नहीं, पश्चिम ऊगे भाण ॥१५१॥
बली अनंता नार नर, शूर सुभट झुंझार ।
कर्म सुभट के सामने, सबने मानी हार ॥१५२॥
कर्म सुभट विषमो विकट, सो वश कियो न जाय ।
जो नर इनको वश करे, मैं वंदू तस पाय ॥१५३॥
षट् सुत माता देवकी, जावे सुलसा द्वार ।
लाड प्यार मोटा हुआ, रूपे देव कँवार ॥१५४॥
बत्तिस बत्तिस पद्मणी, बत्तिस हेम सुकोड ।
नेम पास संयम लियो, ते वन्दू करजोड ॥१५५॥

सहस पुरुष सह तप लियो, श्रीनेमीश्वर हाथ ।
मुनि थावच्चा वंदिये, सूर्योदय परभात ॥१५६॥
गजमुनि सिर सोमल धर्यो, द्वेष वसे अंगार ।
समता धर ममता तजी, पाया भवनो पार ॥१५७॥
मेतारज सिर सोनिए, चाम विट्यो धर खेद ।
निज मन स्थाने राखियो, कियो भ्रमण भव छेद ।१५८।
शिष्य हु खंधक पानसो, घाणी पील्या सोय ।
शिव नगरी शिव पामिया, यह समता फल जोय ।१५९।
चिलायती सिर नारिका, छेदन करके लेय ।
शम संवर सुविवेक से, दुष्कृत दूर करेय ॥१६०॥
करे वद्य नर सातका, अर्जुनमाली नाम ।
क्षमा धरी संयम लियो, पाया शिव सुख ठाम ॥१६१॥
मुनि अषाढी कर्म से, नाटक भरत बनाय ।
अनित्य भावन भावता, केवल ज्ञान उपाय ॥१६२॥
षट् मासी तप पारणे, ढंढण, नाम कंवार ।
मोदक चूरत पामिया, केवल ज्ञान उदार ॥१६३॥
राज छोड छह खंड को, लीनो संयम भार ।
रोग हुए षोडश तिन्हें, सहते सनत्कवार ॥१६४॥
नमे वीर अभिमान से, भूप दशारणभद्द ।
सुरपति पांव लगावियो, राख अखण्डित मद्द ॥१६५॥
प्रसनचन्द्र रहि ध्यान मे, कोपी युद्ध करन्त ।
कोप शमी केवल लहे, उत्तम मुनि गुणवंत ॥१६६॥

अइमंतो सुकुमार मुनि, जास वखाण्यो वीर।
पडिकमता इरियावही, केवल लियो सधीर ॥१६७॥
वीर वचन में थिर रहे, मनसे मेघकंवार।
जाती समरण पाइया, की दो नैना सार ॥१६८॥



क्षमापना स्वरूप

जिम रज लागे देहपे, स्नान किया हो शुद्ध।
यों आलोचन के किए, होवे आत्म विशुद्ध ॥१॥
कपडो पहिरे रज लगे, चिगट वस्तु घृत तेल।
जीव रूप यह वस्त्र पे, लगे पापको मेल ॥२॥
आलोचन अगनी करी, ज्ञान रूप जल स्रोत।
क्षमा रूप साबुन दिया, जीव वस्त्र वर होत ॥३॥
थूंक उतारे मुनि नहीं, प्रथम खमावे जाय।
बृहत्कल्प मे देखलो, ज्ञानी यों फरमाय ॥४॥
नहीं खमावे मास दो, होय साधुपन भ्रष्ट।
चार मास वीते कभी, श्रावक पन हो नष्ट ॥५॥
संवत्सर जावे निकल, समकित होय विनाश।
गरज सरे नहिं नामसे, समझो हृदय विमास ॥६॥
जिन आराधन चाहिरे, फिर्यो अनन्तो काल।
विना खमाये जीवको, मरण लह्यो ते चाल ॥७॥

पाया केवल ज्ञान नहिं, बाहुबली धर मान ।
एक वर्ष ध्याने खडा, नमतां केवल ज्ञान ॥८॥
सर्वे जीव खमावियें, योनि चौरासी लाख ।
मन शुद्धे कर खामणा, किनसे रोष न राख ॥९॥
कोई न जानो शत्रु मन, सब जानो निज मित्र ।
राग द्वेष यों परहरी, कीजे जन्म पवित्र ॥१०॥
स्वामी सघ खमावियें, उपनी जो अप्रीत ।
खमिये और खमावियें, यह जिन शासन रीत ॥११॥



ज्ञान दर्शन चारित्रातिचार

(ज्ञानातिचार)

आलोऊं अतिचार को, धारे व्रत गुरु साख ।
जीव खमाऊं सकलको, योनी चौरासी लाख ॥१॥
त्रिविध त्रिविध त्यागिये, पाप स्थानअठार ।
चार शरण नित अनुसरो, निंदो दुरिताचार ॥२॥
ज्ञान दर्श चारित्र तप, वीर्य हु पंचाचार ।
इहभव परभव के सभी, आलोऊं अतिचार ॥३॥
सूत्र भणो गुरु विनय कर, काल देख वहुमान ।
सूत्र अर्थ तदुभय करी, भणिये धर उपधान ॥'

पर कलंक धसका दिया, गुप्त प्रकट की वात ।
निज नारी के मर्म को, प्रकट किया साक्षात ॥२४॥
असत्य हिंसादेश दे, झूठा लिखिया लेख ।
यों जानी सच वोलिये, जिन आगम को देख ।२५।
असत्य वचन न वोलिये, उठ जावे विश्वाश ।
वसुनृप झूठ उचारता, लयो नरक में वास ॥२६॥
सांच बराबर तप नहीं, साच धर्म को वीज ।
रीझे सुर नर साच पे, सांच जगत में चीज ।२७।
दूजा व्रत के माहिने, लागा यों अतिचार ।
तिहुँविध तिहुँविध वोसरूं, वार वार धिक्कार ।२८।

तृतीय अचौर्य्य अनुव्रत

चोरी की पर वस्तु ली, दिया चोर को साज ।
राज-नीति विपरीत में, कीना काज अकाज ॥२९॥
लेन देन व्यापार मे, कुड तोला कुड माप ।
आछी वस्तु बताय के, दीनी बुरी अमाप ॥३०॥
घेवर घरका खागया, कन्दोई पिटवाय ।
आप वाधिया भोगवे, इह पर-भव दुख पाय ॥३१॥
वस्तू भेल मिलाय के, चोरी करी अपार ।
व्रत तीजो भाग्यो सही, वार वार धिक्कार ॥३२॥
तीजा व्रत के माहिने, लागा यों अतिचार ।
तिहुँविध तिहुँविध वोसरूं, वार वार धिक्कार ।३३।

चतुर्थ ब्रह्मचर्य्य अनुव्रत

निज नारी तज पर रम्यो, जग में अपयश लेय।
द्रव्य गंमायो गाठको, फिट फिट सहु जन केय।३४।

राखी थोड़ा कालकी, तथा अल्प वय नार ।
तिन सेती क्रीडा करी, मोटा ये अतिचार ॥३५॥

नियम विरुद्ध क्रीडा करी, देय व्याहमें साख ।
काम भोग भोगन भणी, करी तिव्र अभिलाष ॥३६॥

चरन थकी नां छूइये, होय काठकी नार ।
गजपति बांधे जात हैं, झांकी लख अनुहार ॥३७॥

देखीने नव यौवना लेश, न विषय निदान ।
गणे काष्टनी पूतली, ते भगवान समान ॥३८॥

आ सघला संसारनी, रमणी नायक रूप ।
ए त्यागी त्यागो बन्धू, केवल शोक स्वरूप ॥३९॥

एक विषय ने जीततां, जीत्यो सब संसार ।
नृपति जीततां जीतिये, दल पुरने अधिकार ॥४०॥

विषय रूप अंकूर थी, टले ज्ञान ने ध्यान ।
किंचित् मदिरा पान थी, छाके जिम अज्ञान ।४१।

वस्तु रहेनां पात्र विन, पात्रे आतमिक ज्ञान ।
पात्र थवा सेवो सदा ब्रह्मचर्य मतिमान ॥४२।

चौथा व्रत के माहिने, लागा यों अतिचार ।
तिहुँविध तिहुँविध वोसरूं, वार वार धिक्कार ।

उलण दंत अभ्यङ्ग विधि, फल उवटन पट स्नान ।
लेप पुष्प भूषण तथा, धूप क्काथ पकवान ॥६३॥
धान्य दाल स्वादिम विगय, साग पान मुखवास ।
जीमन वाहन पाहणी, सयन रु सच्चित वास ॥६४॥
स्वाद भिन्न सब द्रव्य यों, बोल जान छब्बीस ।
खानेकी गिनती करे, मर्यादा निश दीस ॥६५॥
खाय अपक्क दुपक्वको, बैंगन भरिता कीन ।
भुट्टा होरा भूंजिया, गुरु विन समझ न लीन ॥६६॥
जीव सहित वस्तू भखी, बीज सहित फल खाय ।
झूठो पर घर डालियो, करुणा नहिं मन लाय ॥६७॥
तुच्छ खाय डाल्यो घणो, जीव जतन नहिं जान ।
पत्रावलि में खायके, 'की त्रश थावर हान ॥६८॥
दातुन करवा कारणे, हरिया तरुको तोड ।
फल भखिया बहु बीजका, चरियो हो जिम ढोर ।६९।
साग किया बहु भातिका, तलिया तेल बगार ।
घृत मसाला डालके, खाया सरस आहार ॥७०॥
पोदीना धनिया तणी, चटनी विध विध खाय ।
ऊपर डाले नमक फिर, नीम्बू रस छिटकाय ॥७१॥
लोंग सुपारी एलची, नित नित चाबे पान ।
वस्तु नसेली डालके, करता स्वाद महान ॥७२॥
पिए भांग मदमे छक्यो, रहे न कुछ भी शुद्ध ।
द्रव्य गमावे गाठका, अलज्ज हो निर्बुद्ध ॥७३॥

राख मिठाई अधिक दिन, नील फूल भी आय।
खाया यों रस चलित को, समकित किन विध पाय।७४।
विरत सातवां मायने, लागा यों अतिचार।
तिहुंविध तिहुंविध वोसरूं, वार वार धिक्कार।७५।

पन्द्रह कर्मादान

अगनी का आरंभ कर, चूना ईंट पकाय।
किया कोयला बालके, वृक्ष घणा कटवाय ॥७६॥
गाडी रथ भाडे दिया, हाट हवेली द्वार।
ऊंट बैल हय गय दिया, नहिं श्रावक आचार ॥७७॥
पहाड पत्थर फोडिया, कूप आदि खुदवाय।
हीरा पन्ना खना खन, मन्दिर महिल पड़ाय ॥७८॥
दांत लाख चमडा तणा, कीना अति व्यापार।
मद मधु घृत रस तेलका, वाणिज किए अपार ॥७९॥
तिल सर्षप घाणी करी, चरखी गिरनी मील।
नाक कान पशु बींधिया, ताडन तर्जन ढील ॥८०॥
बैल अश्व पुरुषत्व को, किया नपुंसक भेद।
दव दीना वनमें घणा, प्राण जीवका छेद ॥८१॥
सर द्रहको शोषण किया, मच्छ कच्छ ले प्राण।
हिंसक प्राणी पालिया, कर वा परकी हान ॥८२॥
कुत्ता बिल्ली असति जन, पाल किया व्यापार।
पन्द्रह कर्मादान यों, त्रिविध करुं परिहार ॥८३॥

पन्द्रह कर्मादान का, कीना यों व्यापार।
तिहुंविध तिहुंविध वोसरूं, वार वार धिक्कार ।८४।

आठवां अनर्थदण्ड विरमणव्रत

करे अनर्था दण्ड यों, विना प्रयोजन काम।
आरत रौद्र कुध्यानसे, बाधे पाप निकाम ॥८५॥
घृत दधिका परमाद से, रखे उघाडा ठाम।
मद्य विषय निन्दा अपर, सेवे पाप तमाम ॥८६॥
वद्य शस्त्र भेला करे, दिये पाप उपदेश।
सुगुरु देव झूठा कहै, करे निरर्थक क्लेश ॥८७॥
काम विवर्धक शास्त्र को, पढ़े कथा, दे आल।
भण्ड कुचेष्ठा हँसि करे, मुख से अति वाचाल ।८८।
शस्त्रादिक पर को दिये, मिला अधिक संयोग।
अशन वशन में रक्त हो. सेवे निशदिन भोग ।८९।
चौदह स्थानक जीवकी, पाई नहिं पहिचान।
ज्ञानी वचन न मानिया, नहिं आई श्रद्धान ॥९०॥
मनुज समुर्छिन होत है, चौदह स्थानक माय।
मूत्र मैल खंखार मे. नाक मैल में पाय ॥९१॥
वमन पित्त अरु खून में, राध-वीर्य पहिचान।
वीर्य शुष्क गीला हुआ, प्राणी उपजे आन ॥९२॥
नर-नारी संयोग से, जीव असंख्या होय।
सन्नी नव लख ऊपजे, हृदय विचारी जोय ॥९३॥

नगर नाल या गटर में, और अशुचिस्थान।
जीव असन्नी ऊपजे, आगम में फरमान ।।९४।।
मरे मनुज के देह में, घड़ी पौन दो माँय।
जीव समुर्छिम होत है, इन्द्रिय पांचों पाय ।।९५।।
विन देख्या आंधण दिया, अन छाण्या जल डाल।
काठ छाण देखे विना, दिया अगन में जाल ।।९६।।
पाट खाट खटमल तणा, दिया धूप में डाल।
जुँआ लीख मारी घणी, दिल से करुणा टाल ।।९७।।
विरत आठवां मायने, लागा यों अतिचार।
तिहुँविध तिहुँविध वोसरूं, वार-वार धिक्कार ।।९८।।

नवमां सामायिकव्रत

सामायिक व्रत ग्रहण कर, पाप योग परिहार।
तीन करण दो योग से, लियो नियम हितकार।९९।
दोष हरें बत्तीस नहिं, मनसे बुरा विचार।
करी कुचेष्ठा कायसे, मुख से बुरा उच्चार।।१००।
विना लखे इत उत फिरे, भूल समायिक काल।
समय पूर्ण होवे विना, लई समायिक पाल ।।१०१।।
द्रव्य क्रिया कीधी घणी, मनको गयो न रोष।
विना ढके मुख वोलियो, कई लगाया दोष ।।१०२।।
व्रत यों नवमां मायने, लागा यों अतिचार।
तिहुंविध तिहुंविध वोसरूं, वार वार धिक्कार ।१०

दसवां दिशवकाशिकव्रत

दिशावकासिक व्रत लिया, छहुं दिशिकी मर्याद ।
पंचाश्रवको त्यागकर, कियो अधिक परमाद ।१०४।
हद बाहिरकी वस्तु को, लही मंगाकर काम ।
या भिजवाई ओरसे, मन नाहि राख्यो ठाम ।।१०५।।
शब्द रूप या सेन से, अथवा कंकर फेंक ।
हद बाहिर से मनुज को, पास बुलाया देख ।।१०६।।
दशवा व्रतके मायने, लागा यों अतिचार ।
तिहुंविध तिहुंविध वोसरूं, वार वार धिक्कार ।१०७।

ग्यारहवां पौषधव्रत

प्रति पूरण प्रोषध किया, अशन चार का त्याग ।
संवर द्वारा आत्मको, पोसे धर अनुराग ।।१०८।।
मैथुन मणि सोवन तजे, फूल माल परिहार ।
भूषण लेपन सर्वथा, त्याग करे हितकार ।।१०९।।
स्थान वस्त्र पडिलेहणा, करे अयत्ना भूल ।
अथवा तो पूंजे नहीं, पूंजे तो प्रतिकूल ।।११०।।
बडी लघु नीति भूमिका, लखे न पूंजे शुद्ध
प्रोषध सम्यग् भावसे, पाल्यो नहिं अविरुद्ध ।।१११।।
विरत ग्यारवा मायने, लागा यों अतिचार ।
तिहुंविध तिहुविध वोसरूं, वार वार धिक्कार ।११२।

बारहवां अतिथि-संविभागव्रत

व्रत द्वादश में नितकरे, अतिथी का सम भाग।
श्रमण साधुको शुद्ध दे, भोजन चहुँ धर राग।११३।
वस्त्र पात्र कम्बल तथा, गुच्छा पाट मकान।
व्रण औषध भैषज दिये, प्रतिलाभे शुभ दान।११४।
शुद्ध अशनको सचितपे, सचित्तपे शुध भोज।
देने की नहिं भावना, तब यों करता रोज ॥११५॥
टाली भिक्षा कालको, भावे भावन चित्त।
आन्त प्रान्त सड़िया हुआ, दिया साधुको वित्त।११६।
निजी शक्ति होता छतां, दूजा से दिलवाय।
देखे देता औरको, मनमें ईर्षा लाय ॥११७॥
व्रत बारवा मायने, लागा यों अतिचार।
तिहुविध तिहुंविध वोसरूं, वार वार धिक्कार।११८।

१८ पाप-स्थानक

हिंसा करके हरषियो, जीव कई संहार।
तिल घृत जव त्रश कायका, कीना होम अपार ॥१॥
कोडी गूंगा वावला, अन्धा काणा पग।
निर्वल जीव सताविया, हरष हरप मन रंग ॥२॥
लकडी पत्थर शस्त्र से, थप्पड मुक्का लात।
जहर पास कूपादि मे, करी जीव की घात ॥३॥

हिंसा कीनी जीव की, बोल्यो झूठ जबान ।
चोरी परदारा गही, परिग्रह का नहिं मान ॥४॥
बिच्छु डंक ज्यों क्रोध कर, तन में ऊठी लाय ।
नैन लाल उर थर हरे, क्षमा नहीं मन माय ॥५॥
बरतन हाडी फोड दे, भूख त्रषित रह जाय ।
बतलाया बोले नहीं, मूंडो लेय चडाय ॥६॥
क्रोध करी गाली दई, लायो मन अभिमान ।
कपट करी परको ठग्यो, लोभ अधिक मन आन ॥७॥
लोभ अनंतो जीव के, ज्योंहि करमची रंग ।
ममता माया मे फंस्यों, माखी सेडा संग ॥८॥
राग विवश नाता किया, दिया द्वेष से तोड़ ।
निज सुत को मैं पालिया, परसुत कड़िका मोड़ ॥९॥
क्लेश कदाग्रह मैं किया, दीना झूठा आल ।
चाडी चुगली मैं करी, परनिंदा जंजाल ॥१०॥
कुगुरु देव मैं पूजिया, हिंसा धर्म प्रजूंज ।
सेव्या मिथ्या पर्व मैं, वड पीपल को पूज ॥११॥
रति अरति लाई अधिक, मिथ्या माया मोष ।
पाप अठारह सेविया, या विधि मुझमे दोष ॥१२॥
क्रोध लोभ भय हास से, बोल्या वचन असत्य ।
कूड करी धन पारका, लीना जेह अदत्त ॥१३॥
देव मनुज तिर्यंचना, मैथुन सेव्या जेह ।
विषया रस लंपट पणे, अधिक विगाड़ी देह ॥१४॥

रजनी भोजन मैं किया, खाया भक्ष अभक्ष ।
रसना रसकी लालचे, पाप किया परतक्ष ॥१५॥
व्रत हु विराधे लेयकर, भागे प्रत्याख्यान ।
कपट हेतु किरिया करी, करके निजी बखान ॥१६॥
अष्टादश यह पापको, सेव्या, संवर टार ।
तिहुँविध तिहुँविध वोसरूं, बार बार धिक्कार ॥१७॥

२५ मिथ्यात्व

जड़को माना जीव वत, चेतन को निर्जीव ।
अधर्म को माना धरम, धर्म अधर्म सदीव ॥१॥
असाधु साधु वत् कहा, साधु असाधु मान ।
सुमार्ग को उन्मार्ग कथ, उन्मग को सद् जान ॥२॥
संसारी को सिद्ध मैं, सिद्ध कहा संसार ।
निजि ग्रहण मत बात को, लखी सत्य अविचार ॥३॥
जितने मत संसार में, सब को माना साँच ।
जिनमत झूठा समझ के, हठ छोड़ा नहिं जाँच ॥४॥
असमज पड़ने पर कहा, आप्त वचन सब झूठ ।
जीवभेद जाने बिना, सबको समझा कूट ॥५॥
देव झूठ स्थापन किया, किया पर्व विपरीत ।
अर्हत् की ले मानता, वाँछा तप फल चीत ॥६॥
यज्ञ होम पाखंडको, लखा मोक्ष फल हेत ।
सूत्र कथनमे अर्थको, पाठ लुप्त कर देत ॥७॥

निज मत रक्षाके लिए, अधिक अर्थ भाषंत ।
तथा शास्त्र विपरीत कर, कहता निजी घढंत ॥८॥
बिना क्रिया मुक्ति लहैं, निष्फल करणी भेद ।
बिना ज्ञान मुक्ती कहैं, ज्ञानाभ्यास निषेध ॥९॥
अविनय कर जिन वचनका, देय विरागी दोष ।
चतुर्संघ आशातना, करे-सदा मन रोष ॥१०॥
पंचवीस मिथ्यात्व यों, कबहू सेव्या होय ।
तीन करण तिहु योग से, मिथ्या दुष्कृत मोय ॥११॥



चार शरणा

प्रथम (अरिहन्ता सरणं पवज्जामि)

दोष अठारह त्याग के, हो जग नायक स्वाम ।
अमित वीर्य वल प्रकट हो, ताको करूँ प्रणाम ॥१॥
शरणा गति सब जीव के, रक्षावन्त कृपाल ।
शत्रु कर्म दल क्षय किये, तिहुँ जग के गोपाल ॥२॥
कर्म अघातिक निर्जरे, अतिशय वर चोतीस ।
अद्भुत रूप मनोहरू, तन लक्षण बत्तीस ॥३॥
समव-सरण सुरकृत महा, रचना तीन प्रकार ।
तरु अशोक आदिक सहित, अष्ट महा प्रतिहार ॥४॥

सुर-नर तिर्यग् वूझवे, योजन वाणि वखान।
बिना शस्त्र वैरी हने, समय तीन का ज्ञान ॥५॥
समव-सरण सुर पाइये, कमतर एक हि क्रोड।
जिनवर चरण प्रसाद से, किंचित् नावे खोड ॥६॥
जहां-जहां अरिहन्त जिन, विचरे सम्प्रति काल।
शरण सदा होओ मुझे, वन्दन वार हजार ॥७॥



द्वितीय (सिद्धा सरणं पवज्जामि)

चउदह राजू मस्त के, सिद्ध शिला अहिठान।
जन्म मरण तजके हुए, अजरामर निर्वाण ॥१॥
लहिये शरणो सिद्ध को, होवे भय को अन्त।
जोति रूप निकलंक मय, अव्यावाध अनन्त ॥२॥
सुख अनन्त में लीन है, दर्शन ज्ञान अनन्त।
अष्ट कर्म सव क्षय किया, अक्षय अटल महन्त ॥३॥
त्रश नाड़ी के बीच मे, मध्य चन्द्र आकार।
तण्या छत्र के ऊपरे, सिद्ध अनन्ता धार
निर्मल हीरा हार ज्यों, अष्ट कर्म घन दाह।
हुए अजोगी आतमा, वन्दत कोटी ल
तीन काल वन्दन करूं, अविचल पद निर्वाण
सिद्ध शरण [illegible] ने, सदा कोटि क[illegible]

तृतीय (साहू सरणं पवज्जामि)

मधुकर वृत्ती एपणा, टाले दोष बयाल ।
पंच महाव्रत पालता, सात महा भय टाल ॥१॥
निशि भोजन सब परिहरे, वसु मद चार कषाय ।
पंच इन्द्रि वश में करे, दस विधि संयम पाय ॥२॥
शील अठारह सेस धर, परिषह है बावीस ।
अशातना तेतीस तज, पूरण गुण छत्तीस ॥३॥
पंच समिति समता सदा, गुपती तीन निदान ।
रत्नत्रय आराधना, धरता सत् श्रद्धान ॥४॥
मन-बच-काया गोपवे, सतरह आश्रव द्वार ।
इरिया समिती सोधता, कर नवकल्प विहार ॥५॥
अमात्सर्य जिय इन्दिया, शत्रु मित्र सम भाव ।
सद् पालन नववाडका, भेद न रंक रु राव ॥६॥
शुष्क भूख निर्मंसिया, श्रोणित रहित शरीर ।
श्याम कलेवर सुन्दरु, मेरु सम वर धीर ॥७॥
समीर सम प्रतिबन्ध नां, आत्मा अमर विलोय ।
अप्रमत्त भारण्ड सम, निरालम्ब जो होय ॥८॥
तेज यथा सूरज परे, सोमचन्द्र ज्यों कान्त ।
गहरे निधि निर्मल हिया, संख धवल एकान्त ॥९॥
पत्र नलिनि लेपित नहीं, ज्यों जल आश्रव पास ।
आगम ज्ञानादिक दिए, पूरे जग जन आश ॥१०॥

विषयारम्भादिक तजे, लब्धि रूप भण्डार।
ज्ञान सु पञ्च उपार्जवे, विपुल मति-श्रुत धार॥११॥
महा तपी जिनकल्पि मुनि, सेवे वन समसान।
जग पीहर जग बन्धुवत्, समाचरे शुभ ध्यान।१२।
ग्रीष्म में आतापना, वर्षा प्रति—संलीन।
बिना वस्त्र हिम समय में, कहैं न मुख से दीन।१३।
शुद्ध परूपक शास्त्र के, पाले पंचाचार।
साधु शरण लेऊं सदा, वन्दन बार हजार॥१४॥



चतुर्थ—
(केवली पण्णत्तो धम्मो सरणं पडिवज्जामि)

पायो जिनवर, बोध से, आगम धर्म विचार।
जिन अनुसारे चालता, लहिये भवनो पार॥१॥
चेतनं मन मे चेत तूं, शरण लहो जिन धर्म।
विकथावाद निवारिये, कहिये नहिं पर मर्म
जिनवाणी को श्रवण कर, गणधर रचनासार।
दसपूर्वी प्रत्येक बुद्ध, श्रुत केवलि अवधार
जिनवर जो जो भाखिया, सो कहिये सिद्धान्त।
अन्य ग्रन्थ जानो सही, सभी वाद एकान्त

परिशिष्ट नं० १

—: आलोयणा :—

जे मए अणन्तेणं भव-भमणेणं पुढवी-काइया आउ-काइया तेउ-काइया वाउ-काइया वणस्सइ-काइया एगिन्दिया, बेइन्दिया, तेइन्दिया, चउरिन्दिया, पंचिन्दिया-देवा वा मणुआ वा नेरइया वा तिरिक्ख-जोणिआ वा जलयरा वा थलयरा वा खयरा वा, सन्निआ वा असन्निआ वा, सुहुमा वा बायरा वा, पज्जत्ता वा अपज्जत्ता वा, कोहेण वा माणेण वा मायाए वा लोहेण वा पंचिन्दि-अट्टेण वा रागेण वा दोसेण वा, घाइआ वा पीडिआ वा, माणेणं वायाए काएणं तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ॥ १ ॥

मैंने अनन्त भव-भ्रमण करते हुए पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति रूप एकेन्द्रिय जीव, द्वीन्द्रिय जीव, त्रीन्द्रिय जीव, चतुरिन्द्रिय जीव, पञ्चेन्द्रिय जीव--देव, मनुष्य, नर्क और तिर्यंच योनि के जीव—जलचर, थलचर खेचर आदि में संज्ञी असंज्ञी, सूक्ष्म—बादर और अपर्याप्त-पर्याप्त जीवों को, क्रोध, मान, माया, लोभ, पाँचों इन्द्रियों की आतुरता-राग या द्वेष से मारे या पीड़ित किये हों तो मनसा, वाचा, कर्मणा से निष्फल हो।

जं मए अणंतेणं भव-भमणेणं अलिअं भणियं कोहेण वा माणेण वा मायाए वा लोहेण वा पंचिन्दि--अट्टेण वा रागेण वा दोसेर्ण वा, मणेणं वायाए काएणं, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ॥ २ ॥

मैंने अनन्त भव, भ्रमण करते हुए क्रोधादि से झूठ बोला हो तो उसका फल निष्फल हो।

जं मए अणंतेणं भव-भमणेणं अदिन्नं गहिअं कोहेण वा माणेण वा मायाए वा लोहेण वा पंचिन्दि--अट्टेण वा रागेण वा दोसेण वा, मणेणं वायाए काएणं तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ॥ ३ ॥

मैंने भव-परिभ्रमण में क्रोधादि से अदत्त ग्रहण-किया हो तो उसका फल निष्फल हो।

जं मए अणंतेणं भव--भमणेणं दिव्वं माणुस्सं तिरिच्छं मेहुणं सेविअं कोहेण वा माणेण वा मायाए वा लोहेण वा पंचिन्दि-अट्टेण वा रागेण वा दोसेण वा मणेणं वायाए काएणं तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ॥ ४ ॥

जो मैंने भव-भ्रमण मे क्रोधादि से दिव्य, मानुषीय और तिर्यञ्च सम्बन्धी मैथुन सेवन किया हो तो उसका बुरा फल निष्फल हो।

जं मए अणंतणं भव-भमणेणं अट्ठारस्स पाव-ठाणाइं कयाइं कोहेण वा माणेण वा मायाए वा लोभेणं वा पंचिन्दि--

अट्टेण वा रागेण वा दोसेण वा माणेणं [illegible]
मिच्छा मि दुक्कडं ॥ ५ ॥

मैंने भव-भ्रमण मे क्रोधादि से [illegible]
का सेवन किया हो तो मेरे उस दुष्कृत का फल निष्फल हो ।

जं मे पुढवि-कायगयस्स सिला-लेट्टु-मट्टिया-मन्दा
वालुआ गेरिअ-सुवन्नाइ महाधाउ-रूवं सरीरं पाणि-वहे पाणि
संघट्टणे पाणि-पीडणे, पाव-वट्टणे, मिच्छत्त-पोसणे ठाणे
संलग्गं तं निन्दामि गरहामि वोसिरामि ॥ ६ ॥

जो मैं पृथ्वीकाय में शिला-पत्थर आदि, गेरू-सोना
आदि महाधातु रूप शरीर धारण करके, प्राणि-वध-संघर्ष-पीड़ा
पाप-व्यवहार, मिथ्यात्त्व-पोषक स्थानमें सलग्न हुआ होऊं तो
उसकी निन्दा गर्हा करता हूं, उससे अलग होता हूं ।

जं मे आउ-कायगयस्स जल-करग-महिआ ओस्सा
हिमहरतणरूवं सरीरं पाणिवहे पाणि-संघट्टणे पाणि-पीडणे
पाव-वड्ढणे मिच्छत्त-पोसणे ठाणे संलग्गं तं निन्दामि
गरहामि वोसिरामि ॥ ७ ॥

जो मैं जलकाय में जाकर जल-करा-हिम आदि रूप
मे प्राणि-वध, प्राणि संघात, मिथ्यात्त्व-पोषक आदि स्थान में
संलग्न रहा होऊं तो उस पापकी निन्दा-गर्हा करता हूं-उससे
अलग होता हूं ।

जं मे तेउ-कायगयस्स [illegible] ल-मुम्मुर-

जाला-अलाय-विज्जु-उक्का-तेअ-रूवं सरीरं पाणि-वहे पाणि-संघट्टणे पाणि-पीडणे पाव-वड्ढणे मिच्छत्त-पोसणे ठाणे संलग्गं तं निन्दामि गरहामि वोसिरामि ॥ ८ ॥

जो अग्नि काया में अग्नि-अंगार-विद्युत ज्वाला आदि तेज रूप मेरा शरीर मिथ्यात्त्व-पोषक आदि स्थानों में स्थित हुआ हो तो उसकी निन्दा-गर्हा करता हूं-उस पापसे अलग होता हूं।

जं मे वाउकायगयस्स वाउ-उंझा-सास-रूवं सरीरं पाणिवहे पाणि-संघट्टणे पाणि-पीडणे पाव-वड्ढणे मिच्छत्त-पोसणे ठाणे संलग्गं तं निन्दामि गरहामि वोसिरामि ॥९॥

जो वायु काया में शुद्ध-अशुद्ध वायु, सांस रूप मेरा शरीर मिथ्यात्त्व-पोषक आदि स्थानों में लगा हो तो उसकी निन्दा-गर्हा करता हूं।

जं मे वणस्सइ-कायगयस्स मूल-कट्ठ-छल्लि-पत्त-पुप्फ-फल-बीय-रस-निज्झास-रूवं शरीरं पाणिवहे पाणि-संघट्टणे पाणि-पीडणे पाव-वड्ढणे मिच्छत्त-पोसणे ठाणे संलग्गं तं निन्दामि गरहामि वोसिरामि ॥ १० ॥

जो वनस्पति कायामें मूल, काष्ठ, छाल, पत्ता आदि रूप मेरा शरीर पाप-वर्धक, मिथ्यात्त्व-पोषक स्थान में लगा हो तो उसकी निन्दा-गर्हा करता हूं-उससे अलग होता हूं।

जं मे तसकायगयस्स रस-रत्त-मंस-मेअ-अट्ठि-

मज्जा- सुक्क--चम्म-रोम--नह-नसा-रूवं सरीरं पाणि-वहे पाणि-संघट्टणे पाणि-पीडणे पाव-वड्ढणे मिच्छत्त-पोसणे ठाणे संलग्गं तं निन्दामि गरहामि वोसिरामि ॥ ११ ॥

त्रसकाय में रस, रक्त, मास, चर्वी, हड्डी, मज्जा, शुक्र, चमड़ी, रोम, नख, नसा रूप मेरा शरीर प्राणि-वध, प्राणि-संघात, प्राणि-पीड़ा, पाप-वृद्धि, और मिथ्यात्त्व रक्षा के स्थान में लगा हो तो उसकी निन्दा-गर्हा करता हूं-उससे अलग होता हूं।

जं मए इहभवे मणेणं वायाए काएणं दुट्ठु--कयं तं निन्दामि गरहामि वोसिरामि ॥ १२ ॥

जो मैंने इस भवमे मन, वचन और काया से बुरा चिन्तन बुरा भाषण और बुरा कार्य किया हो तो उसकी निन्दा गर्हा करता हूं उससे अलग होता हूं।

आयरिय--उवज्झाए, सीसे साहम्मिए कुल- गणे अ।
जे मे, कया कसाया, सव्वे तिविहेण खामेमि ॥१३॥

आचार्य, उपाध्याय, शिष्य, स्वधर्मी, कुल और गण के प्रति मैंने जो भी कषाय किये हो, उन सब के लिये क्षमा चाहता हू।

सव्वस्स समण--संघस्स, भगवओ अंजलिं करिय--सीसे।
सव्वं खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहयं पि ॥१४॥

संपूर्ण श्रमण संघ भगवान को हाथ जोड़कर और सिर झुकाकर और उनसे व सब से क्षमा याचना करके, सबको क्षमा करता हू।

सव्व-जीव-रासिस्स, भावओ धम्म-निहिय-निय-चित्तो।
सव्वं खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहयं पि ॥ १५ ॥

भावसे धर्ममें हमेंशा चित्त लगाकर और सभी जीवों को खमाकर, मैं भी सबको क्षमा करता हूं।

भयवं ! जं मए-चउ-गइ-गएणं देवा तिरिआ मणुस्सा नेरइया, चउ--कसाओ--वगएणं, पंचिन्दि--वसट्टेणं इह--म्मि भवे अन्नेसु वा भवग्गहणेसु वा मणेणं वायाए काएणं दूमिआ संताविआ अभिताविआ, तस्स मिच्छामि दुक्कडं। जेहिं अहं अभिदूमिओ संताविओ अभिहओ तमहं पि खमामि ॥ १६ ॥

भगवन् ! मैंने देव, तिर्यञ्च, मनुष्य और नर्क गतिमें घूमते हुवे परभवमे या इस भव में चार कषाय और इन्द्रिय-वश आर्तता से जिस किसीका दमन, पीडन आदि किया हो तो वह क्रिया निष्फल हो और जिनसे मै दमित, पीड़ित, दुखित हुआ और मारा गया उन्हे भी क्षमा करता हूं।

जे मे जाणंतु जिणा, अवराहा जेसु जेसु ठाणेसु।
तेऽहं आलोएमि, उवट्ठिओमि सव्व-कालंमि (वि) ॥१७॥

जिनदेव मेरे अपराधों के जिन जिन स्थानों को देखते हैं उन सबकी आलोचना करता हूं और सभी काल में या सदा के लिये जागृत बनता हूं।

छउमत्थो मूढमणो, कित्तियंमि तं पि संभरइ जीवो।
जं च न सुमरामि अहं, मिच्छा मि दुक्कडं तस्स ॥१८॥

क्योंकि मैं छद्मस्त और मोहित मनवाला जीव हूं। अतः जो मुझे याद आए हैं वे अपने दूषण कहे हैं और जो याद नहीं हैं उनके फल भी निष्फल हों।

जं जं मणेण बद्धं, जं जं वायाइ भासियं किंचि।
जं जं काएण कयं, मिच्छा मि दुक्कडं तस्स ॥१९॥

मैंने जिन कर्मों को मन से बांधे हों, वाणी से बुरे कथन कहे हों और काया से बुरे कर्म किये हों तो वे दुष्कृत मिथ्या हों।

सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि. सव्वं मुसावायं पच्चक्खामि, सव्वं अदिन्नादाणं पच्चक्खामि, सव्वं मेहुणं पच्चक्खामि, सव्वं परिग्गहं पच्चक्खामि, सव्वं राइ-भोअणं प० सव्वं कोहं प०, सव्वं माणं प०, सव्वं मायं प०, सव्वं लोहं प०, सव्वं पिज्जं प०, सव्वं दोसं, कलहं, अब्भाक्खाणं, अरइ-रइं, पेसुन्नं, परपरिवायं, मायामोसं, मिच्छादंसण-सल्लं इच्चेइयाइं अट्ठारस्स पावठाणाइं दुविहेणं तिविहेणं वोसिरामि। अपच्छिमंमि उसासे तिविहं तिविहेणं वोसिरामि ॥ २० ॥

सम्पूर्ण हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, झूठा आरोप, हर्ष-विषाद, चुगली, निन्दा, विश्वासघात और मिथ्या विश्वास रूपी कांटे को दो करण तीन योग से और अन्तिम उच्छ्वास मे तीन करण, तीन योग से छोडता हूं।

परिशिष्ट नं० २

आयुष्य बन्ध

आयुष्य का बन्ध आयुष्य के अन्तिम समय तक भी होता है। आयुष्य के तीसरे भाग में जन्मान्तर का आयुष्य बन्ध माना है। जैसे ८१ वर्ष का आयुष्य हो तो ५४ वें वर्ष ५४ वर्ष का हो तो ३६ वें वर्ष, और ३६ वर्ष का हो तो २४ वें वर्ष, ऐसे अन्तिम घड़ी तक का तीसरा हिस्सा आयुष्य बन्ध का माना है, एक भव में एक ही वार आयुष्य का बन्ध पड़ता है। नारकी और देव के भव में अनपवर्तनीय निरुपक्रमी (किसी भी प्रयोग से आयुष्य क्षय नहीं हो) आयुष्य होने से वहां छः मास शेष आयु रहने पर परभव का आयुष्य बांधते हैं, अन्य समय नहीं। असंख्य वर्ष के आयुष्य वाले अनपवर्तीय मनुष्य, तिर्यन्च तथा शलाका पुरुष आदि का भी यही नियम है। शेष मनुष्य और तिर्यन्च का आयुष्य अपवर्तनीय है (विष शस्त्रादिक के प्रयोग से आयुष्य का अपवर्तन (नाश) हो या वहुत दिनों के भोगने का कुछ दिनों में भोग लेता है) सोपक्रमी आयुष्य वाला जीव के अन्त काल मे भी जन्मान्तर के आयुष्य वाधने का समय आता है। अन्तिम समय वहुमूल्य वाला समझ के अनशन संथारा करके अपने जीवन को सफल वनना—मुक्ष व्क्तियों का कर्त्तव्य है।

अन्तिम समय जानने के कुछ उपाय

जो जन्मता है वह अवश्य ही मरता है। आयुष्य कर्म की समाप्ति तो होगी ही और प्राप्त शरीर को छोड़कर अन्यत्र जाना ही पड़ेगा। अपने सुख दुःख का कर्त्ता जीव स्वयं है। जैसी करणी करता है, वैसा फल पाता है। सचेत और सावधान रहने वाले सम्यग्दृष्टि जीव अपना जीवन भी सुधार लेते हैं और मृत्यु भी सुधार लेते हैं। जीवन और मरण सुधारने वाले का भविष्य भी सुखमय होता है। गफलत में रहने वाले का न तो जीवन सुधरता है और न मृत्यु ही सुधर सकती है। वह अपनी दुःख परम्परा बढ़ाता रहता है। ऐसे गाफिल असावधान जीव का मरण—"बालमरण" कहा जाता है और जो आत्मार्थी सावधान रहकर व्रत प्रत्याख्यान करते हैं, संथारा संलेषणा से अपना अन्तिम समय सुधार लेते हैं उनके मरण को "पंडित मरण" अथवा "सकाम मरण" कहा गया है। ऐसे पंडित मरण वाले उत्तम जीव मृत्यु से घबराते नहीं किन्तु मृत्यु को महोत्सव रूप मानते हुवे उसके सन्मुख होकर स्वागत करते हैं।

निर्ग्रन्थ श्रमण तो मृत्यु से जूझने को तत्पर रहते ही हैं किन्तु निग्रन्थोपासक गृहस्थ श्रावक भी सदैव यह मनोरथ करता है कि "मेरा पंडित मरण हो।" श्रमणोपासक का तीसरा मनोरथ यही होता है। इस मनोरथ की सफलता के लिए

यह आवश्यक है कि "मृत्यु समय की जानकारी हो।" जो समझ लेता है कि मेरा या अमुक का अन्त समय निकट ही है।" वही सावधान होकर अन्तिम साधना कर अथवा करा सकता है। अतएव अन्तिम समय की जानकारी होना आवश्यक है। अन्त समय जानने के कुछ संकेतों का संग्रह सुज्ञ जिज्ञासुओं को अवगत कराने के लिये दिये जा रहे हैं। आशा है इसका सदुपयोग होगा।

१. अपनी आंख की भौंह (भाषण) नाशाग्र और जिव्हाग्र दिखाई नहीं दे तो ९ दिन बाद आयु पूर्ण होने का संकेत समझना चाहिये।

२. कानो की कूपर पतली हो जाय तो सात दिन क
आयु शेष रहती है।

३. नाक की डण्डी टेढी (बांकी) हो ज
तीन दिन का शेष रहता है।

४. रोगी के नाम के अक्षरों को
उनमें पृच्छक के नाम के अक्षर की संख्या
में सात का भाग देना। यदि शेष एकी (
जीवन और बेकी (२-४-६) बचे तो मृ

५. उज्ज्वल और निर्मल कांस्य
का 'मूत्र' लेना। मूत्र प्रारम्भ
ही लेना—अन्तिम बून्दें भी

(सरसों) के तेल की बूंदे डालना । यदि तेल बिंदु फैल जाय तो रोग साध्य है, बिंदु बिखर कर कन-कन हो जाय तो कष्ट साध्य और तेल के नीचे बैठ जाय तो असाध्य मृत्यु योग्य समझना ।

६. जिसे अपने कान में उंगली डालने से अनाहत (नाद कान बन्द करने पर भीतर से जो ध्वनि आती है, वह) सुनाई नहीं दे, बादल की गर्जना सुनाई न दे और चन्द्रोदय होने पर चन्द्रिका दिखाई नहीं दे तो उसकी उम्र भी अल्प ही समझना चाहिये ।

७. जिसके स्नान करने पर सारा शरीर भीना हो और मुंह पहले ही सूख गया हो तो वह पन्द्रह दिन के भीतर मृत्यु प्राप्त हो जायगा ।

८. मध्याह्न—दिन के १२ बजे, अचित्त निर्मल जल का थाल भर कर धूप मे रखे। जल स्थिर हो जाने पर उसमे रोगी को सूर्य-दर्शन कराना । यदि सूर्य पूर्ण रूप से दिखाई दे तो आयु लम्बी है । दक्षिण दिशा मे सूर्य खण्डित दिखाई दे तो आयु छः मास ही शेष रही जानना । पश्चिम की ओर ख[illegible] दिखाई दे तो दो मास, उत्तर दिशा मे खण्डित दिखे तो [illegible] मास और पूर्व दिशा मे सूर्य खण्डित न[illegible] की आयु समझनी चाहिये । अनेक सूर्य [illegible] दिखाई दे तो दस दिन की ही आयु[illegible]

सूर्य अनुक्रम से धूम्र से व्याप्त दिखाई देवे तो उसी दिन मृत्यु हो जाती है। यदि सूर्य बिंब, चन्द्रमा जैसा लगे तो १५ दिन की आयु शेष होती है।

९. ताम्र पात्र में निर्मल तेल भरकर उसमें सूर्य को देखे। सूर्य पूर्ण नजर आवे तो दीर्घायु, पूर्व में खण्डित लगे तो शेष आयु १२ मास, पश्चिम में खण्डित लगे तो १२ दिन, दक्षिण मे खण्डित दिखाई दे तो ९ दिन, उत्तर में खण्डित दिखे तो तीन मास में मृत्यु होने का संकेत है और मध्य में खण्डित लगे तो १ मास एक दिन या एक घड़ी में मृत्यु हो सकती है।

१०. जिसकी आयु केवल तीन दिन ही शेष रह जाती है, उसके निम्न लिखित चिन्ह दिखाई देते हैं,—

आंख सफेद हो, कपाल काला पड़ जाय, नासिका लाल हो जाय, मूंछ के बाल खिरने लगे, होठ सफेद हो, जीभ कठिन—कठोर रुक्ष हो जाय, दांत काले पड़ जाय, भोजन और पानी स्वाद हीन लगे, नाक श्लेष्म की गंध दूध जैसी हो। छाती के दाहिनी ओर धड़कन चढे, हस्ततल और पगतले रक्त हो नाखून काले, शरीर की गंध मृतक शव जैसी हो। नाडी सुस्त हो। मूर्च्छा हो, क्रोध बढ़ जाय विभ्रमता आजाय। छाती पीली, जंघा श्वेत, गला नीला, कटि लाल दिखाई दे।

८ पेट। हस्तरेखाएं मन्द हो जाय।

११. एक या दोनों आंखों की पुतलियां फिर जाय और दिखाई नहीं दे तो मृत्यु को निकट ही समझे।

१२. हाथ पांव की उंगलियों के सभी नख काले पड़ जाय, हाथ पांव ठण्डे और मस्तक गरम रहे तो मृत्यु समय निकट होता है।

१३. उच्चारण शुद्ध नहीं हो— (जीभ कतराने लगे) आंखों में रोशनी नहीं हो। हाथ की मध्यमा उंगली को मोड़कर हथेली पृथ्वी पर जमादे और शेष उंगलियां जमीन पर जमाने के बाद अनामिका (अंगुठे से चौथी) उंगली को ऊपर उठावे यदि वह नहीं उठे तो आयु लम्बी है और उठ जाय तो मृत्यु निकट है।

१४. टट्टी, पेशाव, छींक और वीर्यपात एक साथ हो तो एक वर्ष मे मृत्यु हो।

१५. स्वप्न मे अपने को ऊंट या गधे पर बैठकर दक्षिण दिशा में जाता देखे तो २३ पक्ष में मृत्यु होती है।

१६. आधा शरीर ठंडा और आधा गरम लगे तो ७ दिन मे । अपने नाक का अग्र भाग नहीं दिखे तो तीन दिन मे मृत्यु होगी।

१७. शरीर के स्वाभाविक अंगो का वर्ण बदलना जैसे तालु, जीभ आदि लाल हैं—ये काले, पीले या श्वेत हो जाय। मांस, रक्त आदि नरम अंग कड़े हो जाय और अचल

सूर्य अनुक्रम से धूम्र से व्याप्त दिखाई देवे तो उसी दिन मृत्यु हो जाती है। यदि सूर्य बिंब, चन्द्रमा जैसा लगे तो १५ दिन की आयु शेष होती है।

९. ताम्र पात्र में निर्मल तेल भरकर उसमें सूर्य को देखे। सूर्य पूर्ण नजर आवे तो दीर्घायु, पूर्व में खण्डित लगे तो शेष आयु १२ मास, पश्चिम में खण्डित लगे तो १२ दिन, दक्षिण में खण्डित दिखाई दे तो ९ दिन, उत्तर में खण्डित दिखे तो तीन मास में मृत्यु होने का संकेत है और मध्य में खण्डित लगे तो १ मास एक दिन या एक घड़ी में मृत्यु हो सकती है।

१०. जिसकी आयु केवल तीन दिन ही शेष रह जाती है, उसके निम्न लिखित चिन्ह दिखाई देते हैं,—

आख सफेद हो, कपाल काला पड़ जाय, नासिका लाल हो जाय, मूंछ के बाल खिरने लगे, होठ सफेद हो, जीभ कठिन — कठोर रूक्ष हो जाय, दांत काले पड़ जाय, भोजन और पानी स्वाद हीन लगे, नाक श्लेष्म की गंध दूध जैसी हो। छाती के दाहिनी ओर धड़कन बढ़े, हस्ततल और पगतले रक्त हो नाखून काले, शरीर की गंध मृतक शव जैसी हो। नाड़ी सुस्त हो। मूर्च्छा हो, क्रोध बढ़ जाय विभ्रमना आजाय। छाती पीली, जंघा श्वेत, गला नीला, कटि लाल दिखाई दे। नाक के मन्द पड़े। हस्तरेखाएं मन्द हो जाय।

११. एक या दोनों आंखों की पुतलियां फिर जाय और दिखाई नहीं दे तो मृत्यु को निकट ही समझें।

१२. हाथ पांव की उंगलियों के सभी नख काले पड़ जाय, हाथ पांव ठण्डे और मस्तक गरम रहे तो मृत्यु समय निकट होता है।

१३. उच्चारण शुद्ध नहीं हो— (जीभ कतराने लगे) आंखों में रोशनी नहीं हो। हाथ की मध्यमा उंगली को मोड़कर हथेली पृथ्वी पर जमादे और शेष उंगलिया जमीन पर जमाने के बाद अनामिका (अंगुठे से चौथी) उंगली को ऊपर उठावे यदि वह नहीं उठे तो आयु लम्बी है और उठ जाय तो मृत्यु निकट है।

१४. टट्टी, पेशाब, छींक और वीर्यपात एक साथ हो तो एक वर्ष में मृत्यु हो।

१५. स्वप्न में अपने को ऊंट या गधे पर बैठकर दक्षिण दिशा में जाता देखे तो २३ पक्ष में मृत्यु होती है।

१६. आधा शरीर ठंडा और आधा गरम लगे तो ७ दिन में। अपने नाक का अग्र भाग नहीं दिखे तो तीन दिन मे मृत्यु होगी।

१७. शरीर के स्वाभाविक अंगो का वर्ण बदलना जैसे तालु, जीभ आदि लाल हैं—ये काले, पीले या स्वेत हो जाए। मांस, रक्त आदि नरम अंग कड़े हो जाय और अचल

अंग चल तथा चल अचल हो जाय तो मृत्यु चिन्ह हैं। आंखों का घूमना, मस्तक लटकजाना, जोड़ ढीले हो जाना, आंख या जीभ भीतर घुस जाना ये सब मौत की निशानियां हैं।

१८. जिस रोगी के मुंह में बड़ी तीन अंगुलियां . करने पर भी नहीं घुस सके तो वह एक सप्ताह महमान है।

१९. जिसका कफ पानी में नीचे बैठ आसन्न मृत्यु है।

२०. जो विना ही रोग के कम खाने लगे भस्मक रोग के अधिक खाने लगे, जिसका स्वभाव कुकर्मी-सदाचारी और सदाचारी दुराचारी व ज आयु भी थोड़ी ही है।

२१. आंखे बन्द करने पर मयूर के के समान जो तिलमिले दिखाई देते हैं, यदि दें तो वह ने वाला है।

आर्द्रा, गनमि

होता है।

"नित्य-संथारा"

जैनदर्शन में बार बार मरण सुधारनेकी-समाधि-मरणकी बात आई है। परन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि जैनधर्म जीवन-संस्कारकी उपेक्षा करता है। पर यह बात सही है कि जिस कार्यकी समाप्ति सफल होती है, वह सम्पूर्ण कार्य ही सफल समझा जाता है। अतः यह तथ्य निःसंदेह सही है कि कुछ अपवादों को छोड़कर, बिना पूरे जीवनकी साधना के, समाधि-मरण असंभव है। क्योंकि गंदगीसे भरे हुवे घूरे के समान असंस्कृत जीवनसे त्यागकी सुवासना नहीं उठ सकती। संस्कारों से संस्कारित जीवनमें ही त्याग की-उत्कृष्ट समाधि भावना की सुगंध महकती है। इसीलिये अनशनके दो भेद कर दिये गये हैं---सागारी और निरागारी।

सागारी अनशन नित्य और यावज्जीवन का भी हो सकता है। पर निरागारी अनशन तो आजीवन ही हो सकता है।

नित्य रात्रि में सोने से पहले नमस्कारमंत्रसूत्र, ईर्य्यापथिकीसूत्र, कायोत्सर्ग-आगारसूत्र का अर्थको ध्यानमें रखते हुए उच्चारण, कायोत्सर्गमे चार चतुर्विंशति-स्तव या 'एगोऽहं' 'एगोमे' आदि गाथाओं के आशयका चिन्तन, नमस्कारसूत्र का ध्यानमें और प्रगट व एक चतुर्विंशति स्तव का उच्चारण करके अठारह पापस्थान आदिके त्यागकी भावना की जाती है। वह भावना निम्न है—

'आहार शरीर उपधी, त्यागूँ पाप अठार
मरण होय तो वोसरूं, जीवूँ तो आगार'

फिर शक्रस्तव का पाठ कहा जाता है। बाद में शयन।

किसी मरणान्तक संकटमें भी उपर्युक्त दोहे के आशयके प्रत्याख्यान किये जाते हैं। जिसे कि सागारी अनशन भी कहा जाता हैं।

निरागारी अनशन के पादपोपगमन आदि भेद हैं। इसके भी विशिष्ट विधि-विधान तत्सम्बन्धी ग्रन्थोंमें है।

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं।
क्लीष्टेषु जीवेषु कृपा-परत्त्वं॥
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ।
सदा ममात्मा विदधातु देव!

—श्री अमितगति सूरि

* समाप्त *



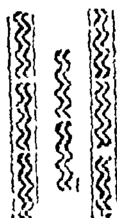
卐 हरिगीत 卐



बहु पुण्यकेरा पुंजथी शुभ देह मानवनो मल्यो.
तोये अरे ! भवचक्रनो आंटो नहीं अेके टल्यो ।
सुख प्राप्त करतां सुख टले छे लेश ए लक्षे लहो.
क्षण क्षण भयंकर भावमरणे कां अहो राची रहो ! ॥
लक्ष्मी अने अधिकार वधतां शुं वध्युं ते तो कहो. !
शुं कुटुम्ब के परिवार थी वधवापणुं ए नय ग्रहो ।
वधवापणुं संसारनुं नर देहने हारी जवो,
एनो विचार नहीं अहोहो ! एक पल तमने हवो ! ॥
निर्दोष सुख निर्दोष आनंद ल्यो गमे त्यांथी भले,
ए दिव्य शक्तिमान जेथी जंजीरे थी नीकले ।
परवस्तुमां नहि मूंझवो एनी दया मुजने रही,
ए त्यागवा सिद्धान्त के पश्चात् दुख ते सुख नहीं ॥
हुं कोण छु ! क्यांथी थयो ? शुं स्वरूप छे मारुं खरुं !
कोना सम्बन्धे वलगणा छे ? राखु के ए परिहरुं ।
एना विचार विवेक पूर्वक शान्त भावे जो कर्या,
तो सर्व आत्मिक ज्ञानना सिद्धान्त तत्त्वो अनुभव्यां ॥



पुस्तकालय के प्रकाशन



१—उत्तराध्ययन सूत्र सार्थ । रु० १

२—मंगल-प्रभातिका । अमूल्य

३—सूयगडांग सूत्र सार्थ (छप रहा है।)



प्राप्ति स्थान—

श्रमणोपासक जैन पुस्तकालय सैलाना

सैलाना (मध्य-भारत)

श्री दिलीप प्रिंटिंग प्रेस, सैलाना (मध्य-भारत)

[illegible] ग्रन्थ प्रकाश

सम्यक्त्व-कौमुदी

लेखक—
प्रातः स्मरणीय श्रीमान् आचार्य गुरु
देव १००८ पूज्य श्री रघुनाथ जी महाराज
तच्छिष्य पं० मार्गाश्रीज्ञानचन्द जी महाराज
के शिष्य मुनि श्री मुन्नालाल चन्द जी जैन

जयचन्द जैन मार्त

ॐ ह्रीं अर्हं नमः

* श्री पूज्य मङ्गलसैन गुरवे नमः *

सम्यक्त्व-रत्न प्रकाश

अर्थात्

सम्यक्त्व-कौमुदी

मङ्गला चरणम्

श्लोक-ॐकार बिन्दु संयुक्तं, नित्यं ध्यायंतियोगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव, ॐकाराय नमो नमः ॥ ॥१॥

गाथा-चवगय जर मरण भय, सिद्धे अभिवंदिऊण तिविहेणं ।
वन्दामि जिण वरिन्दं, तेलोक गुरुं महावीरं ॥२॥

श्लोक-मोक्ष मार्गस्य नेतारं, भेतारं कर्म भू भृताम् ।
ज्ञातारं विश्व तत्वाना, वन्दे वीरं ज्ञात प्रभुं ॥३॥

सर्वारिष्ट प्रणाशाय, सर्वाभिष्टार्थ दायिने ।
सर्व लब्धो निधानाय, गौतम स्वामीने नमः ॥ ४ ॥

भव बीजांकुर जनना, रागाद्या क्षय मुपागता यस्य ।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वाहरोवा, जिनोवा नमस्तस्मै ॥५॥
सुबालानांच वृद्धानां, विदुषां परि तुष्टये ।
मुनि कुशल चन्द्रोऽहं, कुर्वे सम्यक्त्व रत्नप्रकाशकम् ॥६॥
पुस्तकेऽस्मिन् त्रुटिकाःचेत्, करुणा वरुणा लयैः ।
सर्व सर्वं न जानाति, इति मत्वा क्षमिष्यते ॥७॥

❀ राजगृही में भगवान का पधारना ❀

प्यारे बन्धुओ ! इसही जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र मे- मगध नामक देश है, इस देश में ही देव पुरी के तुल्य 'राजगृही' नाम की बड़ी विशाल नगरी थी, यह नगरी रिद्धि सिद्धि समृद्धि मे भरपूर थी और व्यापार के लिये भारतवर्ष में अति विख्यात थी । इस नगरी में एक से एक उच्च कोटी के धनाढ्य धरमात्मा एवं जैन धर्म के पालक श्रावक रहते थे । इस नगरी के स्वामी महाराजा 'श्रेणिक' (बिम्बसार) थे, वह अपनी प्यारी प्रजा को निज संतान से भी अधिक चाहते थे और प्रजा का हित चिन्ता मे रात दिन तत्पर रहा करते थे । राजा की तरफ से प्रजा को किसी प्रकार का भय नही था । जो राजा दुराचारी कुव्य सनियों को दमन करने वाला हो और आप सदाचारी हो तो भला फिर उसकी प्रजा कैसे दुःख पासकती है । राजा

श्रेणिक की न्याय प्रियता और प्रजा हित की चरचा एक मगध देश में ही नही किन्तु समस्त भारतवर्ष में फैल रही थी, इसकी सेवा मे छोटे बड़े सैंकड़ो राजा हाथ जोड़ कर खड़े रहते थे, यह राजा बड़ा ही धर्मात्मा एवं समदृष्टी श्रावक था, भगवान श्री "महावीर" का भक्त एवं पक्का जिन धर्मानुयायि था, इनकी पट्टरानी का नाम "चेलना" देवी था

चौपाई—चेलना देवी पाटवी नार, रुप अनुपम सची अनुहार।

श्रमण उपासिका शील विख्यात पति रजन भजन मिथ्यात ॥१॥

रानी चेलनादेवी विशाला नगरी के महाराजा 'चेडा' की पुत्री और भगवान श्री "महावीर" स्वामी की सच्ची उपासिका एवं जैनधर्मके मानने वाली श्राविका थी। इसकी कृपा से ही राजा श्रेणिक को सम्यक्त्व रत्न की प्राप्ति हुई थी। महाराजा श्रेणिक के बड़े मंत्री का नाम "अभयकुँवार था यह मंत्री निरहंकारी, विनयी एवं धर्मनिष्ठ था, यह राजा का ज्येष्ठ पुत्र था।

प्यारे पाठको! राजगृही के निकट ही एक विभार गिरि नाम का पहाड़ था, उसके चारो तरफ वन था, उस वन में हर रितु में फल फूल देने वाले नाना प्रकार के वृक्ष थे। इधर वन पालक वन में इधर उधर घूम रहा था कि दूर से क्या देखता है कि परस्पर विरोधी जो जीव थे उन्हों ने

आपस में लड़ना छोड़ गया है और बड़े प्रेम के साथ एक जगह खड़े हैं। हिरनी सिंहनी के बच्चे को अपना बालक समझकर और गौ माता भेड़िया के बच्चे को अपना बच्छड़ा समझकर बड़ा प्रेम कर रही है और बड़े आनन्द के साथ उसको चाट रही है, बिल्ली हंस के बच्चे से और नागनी गरुड़ से प्रेम कर रही है, यही ही नहीं किन्तु और भी परस्पर विरोधी जीवोंने अपना स्वाभाविक वैर छोड़ दिया है। बन पालक यह देखकर बड़ा आश्चर्य में पड़ गया और सोचने लगा कि क्या ? इन परस्पर विरोधी जीवों का इस तरह आपस में प्रेम से खड़ा होना शुभ है या अशुभ।

प्यारे पाठको ! बन पालक कुछ आगे चल कर क्या देखता है कि चोबीसवें तीर्थंकर भगवान श्री महावीर स्वामी जी अपनी शिष्य मंडली सहित समव सरण में विराजमान हैं। देवता व इंद्र आदि जय २ शब्दों द्वारा आकाश को गुंजा रहे हैं, बन पालक भी भगवान के समव सरण में गया और बन्दना नमस्कार कर कहने लगा हे देवाधि देव वीतराग प्रभु मेरे लिये आज का दिन बहुत ही अच्छा था जो मेरे को आपके शुभ दर्शन का लाभ हुआ।

प्यारे पाठको ! अब बन पालक ने विचार किया कि भगवान के यहाँ पधारने के शुभ समाचार महाराजा श्रेणिक

के कानों तक भी अवश्य पहुंचाने चाहियें। यह सोचकर वन में से सब रितुओं के फल फूल लेकर राजा के पास गया। नीति मे लिखा है कि राजा के गुरु के और ज्योतिषी के पास खाली (रीते) हाथ न जावे। वन पालक उन फल फूलों को राजा के सामने रखकर बोला—हे राजेश्वर स्वदेश मे आपकी जय हो परदेश में विजय प्राप्त हो, हे स्वामिन् जिन महा पुरुषों के दर्शनों की आपको हर समय उत्कंठा लगी रहती थी वही त्रिलोकीनाथ भगवान श्री महावीरदेव आज आपके पुण्योदय से ग्राम नगरों में धर्म की जय दुन्दुभी बजाते हुये अपनी शिष्य मँडली के साथ विभारगिरी के पास वाले वन में आकर विराजमान हैं। मैं पूर्ण आशा करता हूं कि आप इस शुभ समाचार को सुनकर अवश्य ही प्रसन्न होंगे। इस शुभ समाचार से आपका कल्याण हो (वन पालक महाराय को आय वधाई दीध। श्रेणिक जिन आगम सुणी, जाने अमृत पीध)

वन पालक के मुख से भगवान के आगमन के समाचार सुनकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसी समय गद्दी से नीचे उतर कर जिस दिशा में भगवान का समवसरण था उधर को मुख करके भावों द्वारा भगवान को वन्दना नमस्कार करी पश्चात् वन पालक को बड़े प्रेम के साथ अपने पास बैठाकर बधाई में खूब ही वस्त्राभूषण दिये जिससे उसका

सब दरिद्र दूर हो गया और प्रसन्न होता हुआ अपने स्थान को चला गया। राजा श्रेणिक स्नान मंजन कर नूतन वस्त्राभूषण पहन अधिकारी गणों को आज्ञा दी कि शीघ्र ही मेरे लिये सवारी सजाकर लाओ, आज्ञा होते ही सवारी सजाकर लाई गई, अब राजा महलों में रानी चेलनादेवी के पास पहुंचा और कहने लगा कि—हे देवता की प्यारी श्रमण भगवन्त श्री महावीरदेव विभार गिरि के पास वाले उद्यान में विराज रहे हैं उन भगवान ने अपने तपोबल के द्वारा केवल ज्ञान प्राप्त कर रखा है इसलिए उनके मात्र नाम और गोत्र के श्रवण से ही महापुन्य एवं महाफल की प्राप्ति होती है तो उनके दर्शन करने तथा व्याख्यान श्रवण करने के फल का तो कहना ही क्या! इसलिए अपने को चाहिये कि भगवान के पवित्र दर्शन करें और उनके मुखारविन्द से निकली हुई वाणी को श्रवण करें। रानी चेलनादेवी राजा के ऐसे शुभ वचन सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुई और उसी समय स्नान मंजनकर समवसरण योग्य वस्त्रा भूषण पहन दर्शनार्थ तैयार हो गई। अब राजा चेलनादेवी अभयकुंवार की माता "नन्दादेवी,, और अन्य रानियों तथा मंत्री अभय कुंवार आदि को साथ ले भगवान के समवसरण मे जाकर भगवान को तथा अन्य मुनिमहाराजों को वन्दना नमस्कार कर भगवान के सन्मुख बैठ गया। इधर सारी नगरी में

सब दरिद्र दूर हो गया और प्रसन्न होता हुआ अपने स्थान को चला गया। राजा श्रेणिक स्नान मंजन कर नूतन वस्त्राभूषण पहन अधिकारी गणों को आज्ञा दी कि शीघ्र ही मेरे लिये सवारी सजाकर लाओ, आज्ञा होते ही सवारी सजाकर लाई गई, अब राजा महलों में रानी चेलनादेवी के पास पहुंचा और कहने लगा कि—हे देवता को प्यारी श्रमण भगवन्त श्री महावीरदेव विभार गिरि के पास वाले उद्यान में विराज रहे हैं उन भगवान ने अपने तपोबल के द्वारा केवल ज्ञान प्राप्त कर रखा है इसलिए उनके मात्र नाम और गोत्र के श्रवण से ही महापुन्य एवँ महाफल की प्राप्ति होती है तो उनके दर्शन करने तथा व्याख्यान श्रवण करने के फल का तो कहना ही क्या! इसलिए अपने को चाहिये कि भगवान के पवित्र दर्शन करें और उनके मुखारविन्द से निकली हुई वाणी को श्रवण करें। रानी चेलनादेवी राजा के ऐसे शुभ वचन सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुई और उसी समय स्नान मंजनकर समवसरण योग्य वस्त्राभूषण पहन दर्शनार्थ तैयार हो गई। अब राजा चेलनादेवी अभयकुवॉर की माता "नन्दादेवी,, और अन्य रानियों तथा मंत्री अभय कुंवार आदि को साथ ले भगवान के समव शरण मे जाकर भगवान को तथा अन्य मुनिमहाराजों को वन्दना नमस्कार कर भगवान के सन्मुख बैठ गया। इधर सारी नगरी में

इस धर्मके आराधक ही मोक्षके अधिकार ही हो सकते हैं।

गाथा–धम्मो मंगल मुक्किट्टं, अहिंसा सँजमो तवो। देवावि तं नमँ सन्ति, जस्स धम्मेसयामणो ॥६॥ द०अ०१गा०१

भा०–अहिसा सँयम तपरुप ही धर्म सर्वोत्कृष्ट धर्म है, इस मंगल मय धर्माराधक कोमनुष्य वासुदेव चक्रवर्ती तो क्या वड़ेर देव दानवइन्द्रा दिक भी मस्तक झुकाते है और उसके गुण गाते हैं, सॅयम पालक वीतरागी साधुही सुखी है

गाथा–नाहि सुही देवता देव लोए, नाहि पुढवो पइराया। नहि सुही सेठ सेणावइये, एगन्त सुही साहु वीयरागो।६।

भा०–स्वर्ग के देवताओं को देव लोक में वह सुख नही पृथ्वी पति (राजा महाराजों) को राज्य में सुख नही सेठ सेना पतिको सुख नही जितना कि निग्रन्थ वीत रागी साधु को सम्यग् ज्ञान दर्शन चरित्र में सुख है।

काव्य–सदेव गन्धव मणुस्स पूइयं, चइत्तु देहँ मल पँक पूब्वयँ। सिद्धेवा हवइ सासए, देवेवा अप्परए महिड्ढिए।८। उ० अ० १ गा० ४८

निग्रन्थ–धर्मात्मा पुरुष देव दानव गन्धर्वों द्वारा पूजित होता हुआ पूर्व सँचित कर्म मलको धोकर अविचल मोक्ष-पद को प्राप्त करलेता है, यदि कर्म शेष रहजावे और पुन्य अधिक वढजावे तो वह उस पुन्यको भोगने के लिये देव-लोकमें जाकर महऋधिक देवता हो जाता है।

इस धर्मके आराधक ही मोक्षके अधिकार ही हो सकते हैं।

गाथा—धम्मो मंगल मुक्किट्ठं, अहिंसा सँजमो तवो। देवावि तं नमँ सन्ति, जस्स धम्मेसयामणो ॥६॥ द०अ०१गा०१

भा०—अहिसा सँयम तपरुप ही धर्म सर्वोत्कृष्ट धर्म है, इस मंगल मय धर्माराधक कोमनुष्य वासुदेव चक्रवती तो क्या बड़े२ देव दानवइन्द्रा दिक भी मस्तक झुकाते है और उसके गुण गाते हैं, सॅयम पालक वीतरागी साधुही सुखो है

गाथा—नहि सुही देवता देव लोए, नाहे पुढवो पइराया। नहि सुही सेठ सेणावइये, एगन्त सुही साहु वीयरागी ।६।

भा०—स्वर्ग के देवताओं को देव लोक में वह सुख नही पृथ्वी पति (राजा महाराजों) को राज्य में सुख नही सेठ सेना पतिको सुख नही जितना कि निग्रन्थ बीत रागी साधु को सम्यग् ज्ञान दर्शन चरित्र में सुख है।

काव्य—सदेव गन्धव्व मणुस्स पूइये, चइत्तु देहँ मल पॅक पूव्वयँ। सिद्धेवा हवइ सासए, देवेवा अप्परए महिड्ढिए ।८।

उ० अ० १ गा० ४८

निग्र न्थ—धर्मात्मा पुरुष देव दानव गन्धर्वों द्वारा पूजित होता हुआ पूर्व सँचित कर्म मलको धोकर अविचल मोक्ष—पद को प्राप्त करलेता है, यदि कर्म शेष रहजावे और पुन्य अधिक बढजावे तो वह उस पुन्यको भोगने के लिये देव—लोकमें जाकर महऋधिक देवता हो जाता है।

गाथा—दीहा उया इड्ढिमंता, समीद्धा काम रूविणो।
अहुणोव वन्ना संकासा, भुज्जोअच्चमालीप्पभा ॥९॥
उ० अ ५ गाथा २७

भावार्थ—वह देवता वहा स्वर्ग लोकमें रहकर लब्धी के धारक नाना प्रकार के सुख भोगते हैं। और ऐसे मालूम होते है कि जाने अब ही आके उत्पन्न हुए हो, उनके शरीर का प्रकाश सूर्य से भी कही अधिक होता है। वह देवता देवायु को भोगकर मनुष्य होजा है।

गाथा—भोच्चा माणुस्सए भोए, अप्पाडे रुवे अहा उयं पुव्वि विसुद्ध सद्धमे, केवलं वोहि वुज्झिया ॥१०॥ उ अ ३ गा १९

भावार्थ—मनुष्य के वह सर्वोत्कृष्ट सुखों को भोग कर केवली भाषित धर्म श्रवणकर जिन दीक्षा ले छकाया का रक्षक बन जाता है और फिर

गाथा—खवित्ता पुव्व कम्माइं, संजमेण तवेणय। सिद्धि मग्ग मणुपत्ता, तायिणो परिनिवुडे ॥११॥ द० अ० ३ गा० १५

भावार्थ—जपतप संयम से वह उन पूर्वले (पहले) कर्मोको क्षय कर इसनासमान शरीर को छोड़कर मोक्ष में जा पहुंचता है। भगवान के मुखारविन्द से निकली हुई अमृत मय वाणी को श्रवणकर राजा श्रेणिक कहने लगे। हे भगवन्

आपके पवित्र चरण कमलों के दर्शन से आज मेरे दोनों नेत्र और पीयूष मय वाणी से मेरे दोनों कान पवित्र हो गये, यह संसार सागर मेरे को चुलु भर पानी के समान मालूम होता है ।

❀राजा श्रेणिक का गुरु गौतम स्वामी सम्यक्त्व और मिथ्यात्व के विषय के प्रश्न पूछना ❀

प्यारे पाठको ! राजा श्रेणिक भगवान श्रीमहावीर देव को वन्दना नमस्कार कर गणधर गुरुदेव श्री गौतम स्वामी जी के पास गया और हाथ जोड़कर कहने लगा कि हे गुरु देव आप मेरे को सम्यक्त्व और मिथ्यात्व का स्वरूप सुनाओ। राजा के इस प्रश्न को सुनकर श्री गौतम स्वामी जी कहने लगे कि हे राजन् ! सम्यक्त्व का घर बहुत दूर है । (दोहा) सम्यक्त्व सम्यक्त्व सब कहें, मर्म न जाने कोय । जा घट सम्यक्त्व पाइये, वह घट विरला होय ॥१॥ सर सर कमल न निपजे, वन वन अगर न होय । घर घर सम्पत नहीं, सुखियान सब जन कोय ॥२॥ गिरवर गिरवर गज नहीं, पोल पोल प्रसाद । जन जनते पंडित नहीं, इम सम्यक्त्व का स्वाद ॥३॥ सकल पुरुप सुरा नहीं, चन्दन नहीं सब वन मांय । रत्न राशि जहां तहां नहीं, तिम सम्यक्त्व नहीं सब घट मांय ॥४॥ तीर्थंकर चक्रवर्त्यादि॰

पद्वी मोटो जान। सगलाजीव पावे नहीं, ज्युं सम्यक्त्व रत्न प्रधान ॥५॥ जा घट सम्यक्त्व ऊपजे, साधु श्रावक का पाले धर्म। शिव रमणी वेगा वरे, तोड़े आठों कर्म ॥६॥ सम्यक्त्व रत्न के विना, कितना ही पाले आचार। स्वर्ग इक्कीस तक ऊपजे, गरज न सरे लगार ॥७॥ सम्यक्त्व रत्न के विना, ज्ञान शुद्ध नही होय। सम्यक्त्व में जो दृढ रहे, मुक्ति विराजे सोय ॥८॥

संसार में एक रत्न नहीं किन्तु अनेक रत्न हैं*

सब रत्नों मे सम्यक्त्व ही प्रधान रत्न है, इस रत्न के आराधिक मोक्ष में जाते हैं अथवा विमानिक देवों में जाके

---

*पूर्वाचार्योंनेरत्नसारादि ग्रन्थों म वतलाया हैकि माणिक रत्न जोकि लाल रङ्ग का होता है उसके धारण करने से सूर्य ग्रहकी शान्ति होती है। हीरा सफेद और गुलाबी रङ्गका होता है इसमे शुक्र ग्रहकी शान्ति होती है पन्ना सब्ज और गुलाबी रङ्ग का होता है, इस से बुध ग्रह की शान्ति होती है। नीलम—यह नीले रङ्ग का होता है, इस मे शनि ग्रह की शान्ति होती है। लसनिया—यह विल्ली की आख जैसा होता है, इस मे केतु ग्रह की शान्ति होती है। मोती—यह सफेद रङ्ग का होता है और कहीं कहीं पर काला तथा गुलाबी रङ्ग का भी मिलता है इस मे चन्द्र ग्रह की शान्ति होती है मूङ्गा—इस का रङ्ग लाल होता है इस मे मङ्गल ग्रह की शान्ति होती है पुखराज—यह पीले, सफेद और नीले रङ्ग के भी होती हैं, इस से देव गुरु (बृहस्पति) ग्रह की शान्ति होती है। गोमेदक—यह लाल धुंए के समान होता है इस से राहु ग्रह की शान्ति होती।

उत्पन्न होते हैं यदि सम्यक्त्व रत्न होने मे पहले किसी दुर्गति का बन्धन बन्धा होय तो।

गाथा--जह गिरिवराणु मेरुं, सुराणु इन्दो गहाण जह चन्दो। देवाणं जिण चन्दो, तह धम्माणं च सम्मत्तं ॥१॥

भावार्थ—जैसे पर्वतों में मेरु और देवताओं में इन्द्र, ग्रह नक्षत्रादि में चन्द्रमा, सब देवों में जिनेश्वर देव बड़े और श्रेष्ठ हैं वैसे ही सब धर्मों में सम्यक्त्व धर्म प्रधान है। इस सम्यक्त्व रत्न के बिना मनुष्य का जीवन ही व्यर्थ है।

गाथा—लब्भई सुर सामित्तं, लब्भई पहुत्तणं न संदेहो। इकं न वरिं न लब्भई, दुल्लह रयणं च सम्मत्तं ॥२॥

भावार्थ—इस जीवात्मा को देवताओं का स्वामी (इन्द्र) पना होना सहज है पृथ्वी का स्वामी चक्रवर्त्यादि का होना, भी कठिन नहीं है यानी इन्द्र नरेन्द्र चक्रवर्ती बलदेव वासुदेव आदि की महा पद्वी को भी इस जीवात्मा प्राप्त कर सकता है किन्तु सम्यक्त्व रत्न प्राप्त होना तो महा कठिन है।

श्लोक—असम सुख निधानं धाम सँविग्न ताया: भव सुख विमुखत्वोद्दीपने सद्विवेकः। नर नरक

पशुत्वोच्छेद हेतुर्नराणां, शिव सुख तरु मूलं शुद्ध सम्यक्त्व लाभः ॥३॥

शुद्ध सम्यक्त्वरत्न की प्राप्ति सुख का अनुपम निधान है सम्वेग का घर है, संसारिक सुखों से विरक्ति वढाने के लिये सच्चा विवेक है, मनुष्य तिर्यंच और नरक गति को नष्ट करने वाला तथा मोक्ष का मूल कारण है।

श्लोक—सम्यक्त्वमेकं मनुजस्य यस्य हृदि स्थितं शिवा प्रकम्पम्। शंकादि दोषाप हृतं विशुद्धं, न तस्य तिर्यं नरके भयं स्यात् ॥४॥

जिनके हृदय में मेरु के समान अचल सम्यक्त्व रत्न शंकादि दोषा रहित है उसको नरक और तिर्यंच गति का भय नहीं रहता।

श्लोक-सम्यक्त्व यस्य जीवस्य, हस्ते चिन्तामणि र्भवेत्। कल्पवृक्षो गृहे यस्य, काम गव्यनु गामिनी ॥५॥

जिस व्यक्ति के पास सम्यक्त्व रूपी रत्न है समझोकि उसके हाथ चिन्तामणि रत्न है, और घर मे कल्प वृक्ष मौजूद है और काम धेनु गाय उसके पीछे २ फिरती है।

श्लोक—पिधानं दुर्गति द्वारे, निधानं सर्व सम्पदः।

बिधानँ मोक्ष सौख्यानां, पुण्यैः सम्यक्त्व माप्नुयात्

श्लोक-सम्यक्त्व रत्नान्नपरँहि रत्नं, सम्यक्त्व मित्रान्न परं हि मित्रं। सम्यक्त्व बन्धोर्न परोहि बन्धुः सम्यक्त्व लाभान्न परोहि लाभः ॥७॥

दुर्गति के द्वार को रोकने वाली, सर्व सम्पत्ति का खजाना स्वर्ग और मोक्ष का देनेवाला एक सम्यक्त्वही है। सम्यक्त्वरत्न सब रत्नों में श्रेष्ठ रत्न है और इससे बढकर कोई मित्रभी नहीं है, यह अबन्धु का बन्धु है, इससे बढबढ कर और कोई लाभ नहीं है।

श्लोक-विनैकक शून्य गण वृथा यथा, बिनार्क तेजो नयने वृथा यथा। बिना सु वृष्टिं च कृषिर्वृथा यथा। बिना सु दृष्टिं विपुलं तपस्तथा ॥८॥

एकादिके बिना जैसे शून्य (बिन्दी) व्यर्थ है अथवा जैसे सूर्य के प्रकाश बिना नेत्रोंका तेज या मेघके बिना जैसी खेती खेत बेकार है वैसे ही बिना सम्यक्त्व रत्न के जप तप संयम व्यर्थ है।

श्लोक-धनेन हीनोऽपि धनी मनुष्यो, यस्यास्ति सम्यक्त्व धनं प्रधानं। धनं भवेदेक भवे सुखाय, भवे भवेऽनन्त सुखी सुदृष्टिः ॥९॥

भा०-जिसके पास सम्यक्त्व रूपी धन है। वह अन्य धनादि न होने से भी धनवान है, यह दार्मिक धनतो इस लोक मे ही सुखका देने वाला होता है, किन्तु सम्यक्त्व धनतो भव २ मे सुखका देने वाला है। सम्यक्त्वी जीव देव तो अरिहन्त और गुरु निर्ग्रन्थ-धर्म केवल ज्ञानी भाषित को मानता है।

❀ देव गुरु धर्म का स्वरुप ❀

देव—श्लोक—सर्वज्ञो जितरागादि—दोषस्त्रैलोक्य पूजितः।
यथास्थितार्थ वादीच, देवोऽर्हन् परमेश्वरः ॥ १ ॥

भा०-अरिहन्त देव महा ईश्वर राग द्वेष से रहित त्रिलोक में पूज्यनीय सत्यवादी सर्वज्ञ प्रभु ही सच्चे देव हैं। उन अर्हन् देव को षट मत इस प्रकार मानते हैं।

श्लोक-यंशैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो,
बोद्धा बुद्ध इति प्रमाण पटवः कर्तेति नैयायिका।
अर्हं नित्यथ जैन शासन रताः कर्मेति मीमाँसकाः,
सोऽयं वोविदधातु वाँछित फलं श्री वीतरागो जिनः ॥२॥

भा०-शिव के मानने वाले उसको "शिव" और वैदान्तिक उसको "ब्रह्म" बौद्धिक लोग "बाद्ध" नैयायिक "कर्ता" जैनी "अर्हन्" मीमासिक "कर्म" कहकर उनका ध्यान लगाते है, वही वीतराग अरिहन्त देव ही सब देवो मे श्रेष्ठ देव हैं

अलख निरंजन देव है, अथवा केवल धार।
जन्म मरण सुं रहित है, साचा देव विचार ॥ ३ ॥
जग में गूगा शीतला, देव धरावे नाम।

नास्ति श्रद्धा समं तीर्थं, संसारे प्राणिनां नृपः ॥ ५ ॥

ससार मेंदर्शन (सम्यक्त्व) के समान न कोई पून्य है और न तीर्थ हैं

श्लोक—नरत्वं दुर्लभं लोके, विद्या तत्र सु दुर्लभाः

धर्मित्वँ दुर्लभँ तत्र, श्रद्धा तत्र सु दुर्लभाः ॥ ६ ॥

भा०— ससार में मनुष्य जन्म विद्या और धर्म का मिलना कठिन है किन्तु दर्शन(शुद्ध श्रद्धा) का प्राप्त होना महा कठिन है ।

चरित्र— जिससे पाप नष्ट हों, आवत । आश्रव रुके उसे चरित्र कहते हैं।

श्लोक··चरित्ररत्नान्न परंहिरत्नं, चारित्र वित्तान्न परंहि वित्तम् । चारित्र लाभान्न परोहि लाभ चारित्र योगान्न परोहि योगः ॥ ७ ॥

भा० चारित्र रत्न से चढ बढकर कोई रत्न नहीं है, न इससे बढकर कोई धम लाभ और योग्य ही है । तप—व्रत बेला आदि करना, भूख से म खाना, शुद्ध भिक्षा लाना, लौच आदि करना, निरस भोजन जीमना इन्द्रियों को वस में करना लगे हुए दोष का प्राश्चित लेना, गुरु ज्ञानी जनों की विनय करना स्वधर्मो की व्यावच करना, सिद्धान्त पढना पढे हुए की स्वाध्याय करते रहना, धर्म ध्यान शुल्क ध्यान मे रमण रहना, आत्मा (शरीर) का मोह छोड़कर एकत्व भावना भाना ।

श्लोक·मलं स्वर्णगतँ वन्हि··हँसः क्षीरगतँ जलम् यथा पृथक्करोत्येवँ, जन्तोय कर्ममलं तपयः ॥८॥

जैसे सोने के मैल को अग्नि खोती है अथवा जैसे दूध मे हस पानी अलग करता है वैसे ही तप से जीवात्मा के पापमल दूर हो जाते हैं ।

ससार समुद्र से पार उतारने वाला अथवा या कहिये कि में दुर्गति पड़ने

हुये जीव को उठाकर स्वर्ग और मोक्ष मे पहुँचाने वाला है तो एक धर्म है, वह धर्म चार प्रकार का जोकि दान शील तप भावरूप है ।

श्लोक–दुर्गतिप्रपतत् जन्तु, धारणाद्धर्म उच्यते ।
दान शील तपो भावः, भेदात् सतु चतुर्विधः ॥१॥
दीपो यथाल्पोपि तमांसि हन्ति, लवोऽपि रोगान् हरते सुधाया । तृणं दहत्याशु कणोऽपि चाग्ने धर्मस्य लेशोऽप्य मलस्तथाहं ॥ २ ॥

भा० जैसे दीपक अन्धेरे को अमृत की बूंद रोग को, अग्नि का कण घास,को समाप्त कर देता है, ठीक इस ही तरह धर्म भी पाप मल को नष्ट कर देता है ।

श्लोक–धर्माज्जन्म कुले शरीर पटुता सौभाग्य मायुर्बलम्,
धर्मेणैव भवन्ति निर्मल यशो विद्यार्थ सम्पत्तयः।
कान्ताराच्च महा भयाच्च सततं धर्मः परित्रायते, धर्मः सम्य–
गुपासता भवतिहि स्वर्गा पवर्ग प्रदः ॥ ३ ॥

भा० धर्म से ही श्रेष्ठ कुल में जन्म होता है, शरीर से सुन्दर पना और सौभाग्यता की प्राप्ती होती है, दीर्घायु बल विद्या निर्मल यश आदि उत्तमोत्तम सम्पत्ति मिलती है, धर्म ही वन या महा भय से बचाता है धर्म करने मे स्वर्ग और मोक्ष मिलती है ।

सम्यक्त्व रत्न के धारक सद्ग्रहस्थको नित्य प्रति बत्तीस दोष टाल कर त्रिकाल शुद्ध सामायिककरनी चाहिये, एक महीना में कम से कम दो पोसे अवश्य करने चाहियें, एक व्रत से लेकर बारा व्रत करने, यदि सामायिक सम्वर व्रत

ऐसा कुछ भी न हो सके तो घर के सब काम धन्धों को छोड़ कर स्थानक में जाकर कम से कम एक माला जरूर फेरे, परवस पने में अथवा दुःख दर्द में या किसी खास कारण से या भूल से किसी दिन माला न फेरी जावे तो दूसरे दिन तेल की चीज खाने का त्याग कर दे, गाम में साधु साध्वी आये हुए हों तो उनके पास थानक में जाकर विधि युक्त वन्दना नमस्कार कर सुखसाता पूछे, मांगलीक पाठ सुने। साधु साध्वी के योग्य वस्त्र पात्र आहार पानी आदि चौदह प्रकार का दान देवे। जिस दिन किसी खास कारन से गुरु गुरुणी के दर्शन न हो सके तो दुसरे दिन किसी हरी सब्जी फल फूल के खाने का त्याग कर दे। सम्यक्त्वरत्न के पाँच लक्षण हैं। जो कि निम्न प्रकार हैं—

श्लोक-सम सँवेग निर्वेदा-नु कम्पास्तिक्य लक्षणैः ।
लक्षणैः पँचभिः सम्यक्, सम्यक्त्व मुपलक्ष्यते ॥ १ ॥

पहला "सम" है हर एक प्राणीमात्रपर समभाव रखना चाहे मित्र हो या शत्रु। दूसरा "सम्वेग", वैराग्य वान होना। तीसरा "निर्वेद–निर्वेग" संसारिक विषय वासना से पृथक रहना। चौथा "अनुकम्पा" दुखी जीव को देखकर उसपर अनुकम्पाके भाव लाना और दुख से छुडाना। पाचवा "आस्ता" जिनेन्द्रदेव के वचनों पर श्रद्धा लाना जो केवल ज्ञानी वीतराग प्रभु ने अपने अनुभव ज्ञान द्वारा देखा है और सभा के समक्ष कथन किया उस पर विश्वास लावे। इन उपरोक्त लक्षणों सहित होतो समझना कि यह सम्यक्त्व रत्न का धारक है, सम्यग्दृष्टि जीव जरूर घर के

सब काम धन्धे करते हैं लेकिन उनकी आत्मा फिर भी ससार से पृथक ही रहती है, जैसे कवल की उत्पत्ती कीचड़ से होती है और वह जल से बृद्धि को प्राप्त होता है फिर वही कवल जलके ऊपर आकर फिर जल और कीचड़ में लिपाय मान नही होता ठीक इसही प्रकार समदृष्टि जीवभी ससारिक बन्धनों में नही बन्धते "समदृष्टी जीवडा" करे कुटुम्ब प्रत्तिपाल। अन्दर घट न्यारा रहे, ज्यों धाय खिलावे बाल ॥ २ ॥

❀ समदृष्टी जीव का आहार विहार ❀

दोहा—समकित धारीजीव का, होवे शुद्ध आहार।
भोजन अशुद्ध करे नही, तजे प्राण निरधार ॥ १ ॥
अनखावे ते सोधके, ढँकन होवे जन्त।
दया हेतु रजनी विषय, भोजन नही भखन्त ॥ २ ॥
जल पीवे छाण के, करुणा धरे मन मांय।
जीवानी दिन रातनों, तिनही अगड़ ठवाय ॥ ३ ॥
विध्या अन्न लेवे नही अरु विध्या अन्न न संच।
विध्या ईन्धन ना ग्रहे, जैनी नाम धरन्त ॥ ४ ॥
चुल्हा नगन राखे नही, रजनी नहीं तपाय।
भोजन वर के ऊपरे' चादर देवे तणाय ॥ ५ ॥
पुद्गल जो रस चलत है, समदृष्टी नहीं खाय।
ललिय फूलण भोजन विषय, ताके निकट न जाय ॥ ६ ॥
अभक्ष आहार भखे नहीं समदृष्टी जे नर होय ॥
रतटूटे रोटी विषय, कर फर मे नहीं कोय ॥७॥

प्यारे पाठ को ! सम्यकत्व के विचार को सुनकर अब राजा श्रेणिक मिथ्यात से बचने के लिये तथा अन्य जनता को मिथ्यात्व-अन्धकार मे बचाने के लिये गुरु देव श्री गौतम स्वामी जी से मिथ्यात्व का स्वरुप पूछा, गुरु देव कहने लगे कि हे राजेश्वर इस जीवात्मा को समार रुलाने वाली है तो एक मिथ्यात है। मिथ्याती किसको मानता है—

चौपाई—कबहूं पूजे शीतला, कबहूं गुग्गा गुण गावे।
कबहूं सुमरे क्षेत्र पाल को, कबहूं रुद्र चरण चित लावे।१।

श्लोक—**नीच देव रतो जीवो, मूढः कु गुरुः सेवकः।**
कुज्ञान तपसा युक्तः, कु धर्मात् कु गतिं व्रजेत् ॥ २ ॥

भा०—मिथ्यात्वी जीव कु देव को सुदेव मानकर और कु गुरु को सु गुरु मानकर उनकीसेवाकरता है और कु ज्ञान द्वारा कु धर्म कुतपस्या करने खोटीगती को जाता है। मिथ्यात्व से बढकर कोई रोग नही और न मिथ्यात्व से बढकर कोई अन्धकार ही है, मिथ्यात्व से बढकर कोई शत्रु नही और न इससे बढकर कोई विषही है।

श्लोक— **पटोत्पत्ति मूलँ यथा तन्तुवृन्दं, घटोत्पत्तिमूलं तथा म्टत्समूहः। तृणोत्पत्ति मूलँयथा तस्य बीजं, तथा कर्म मूलँ च मिथ्यात्व मुक्तम् ॥ ३ ॥**

भा०—जैसे वस्त्र की उत्पत्ति तागों से घडे की मट्टी से धान्यकी बीज से होती है ठीक उसही प्रकार कर्मोंकी उत्पत्ति का मूल कारण एक मिथ्यत्व है। सर्प विष शस्त्र अग्नि व्याघ्र शेर तो एक जन्म में ही देहधारियों को दुःख देते हैं और मिथ्यात्व तो एक नही अनेक कोटी जन्मों तक दुःख देता है जैसे घोर अन्धकार में कुछ नही दीखता ठीक उसही प्रकार मिथ्या

ती को भी सम्यकत्व रूपी रत्न नही दीखता ।

श्लोक—वरं सर्प मुखे वासो, वरं च विष भक्षणम् ।
अचलाग्नि जले पातो, मिथ्यात्वान्नच जीवितम् ॥ ४ ॥

सर्प के मुख में बास करना और जहर पीजाना अच्छा है तथा पहाड़ से पड़ मरना, अग्नि में भस्म होना श्रेष्ठ है हिंसक जीवों के साथ जंगल में रहना भी ठीक है किन्तु मिथ्यात्वयुक्त जीवन बिताना अच्छा नहीं ।

श्लोक —वरं ज्वाला कुले क्षिप्तो, देहिनात्मा हुताशने ।
ननु मिथ्यात्व संयुक्तम्, जीवितव्यम् कदाचनः ॥ ५ ॥

भा०—हवा में उड़जाना वृक्ष से गिर कर मर जाना अग्नि में जलना अच्छा है किन्तु मिथ्यात्व युक्त जीवन बीताना किसी तरह भी अच्छा नहीं, मिथ्यात्वी की सगति भी बुरी होती है सज्जन पुरुषों का कर्तव्य है कि वह मिथ्यातियों (पाखंडियों) से बचें ।

दोहा—मिथ्याती की संगति किया, अशुद्ध बुद्धि मन होय ।
जन्म २ शंकट लहे, मुक्ति न पावे कोय ॥ ६ ॥

प्यारे पाठको ! राजा श्रेणिक ने गुरु देव के मुख से ,सम्यक्त्व रत्न और मिथ्यात्व अन्धकार के विचार को सुनकर फिर हाथ जोड़ चरणों में मस्तक झुकाकर प्रार्थना करी कि हे गुरुदेव ! सम्यक्त्व रत्न को उज्वल करने वाली कोई धार्मिक सम्यक्त्व रस से भरी हुई कथा सुनाओ

पाठकों को अब तो ज्ञात हो गया होगा कि राजा श्रेणिक ने वार २ सम्यक्त्व रत्न के विषय के प्रश्न किये हैं और उनके उत्तर सुनकर

भी उसको उस (सम्यक्त्व विषय) की कथा सुनने की उत्कंठा लग रही है, उसका मुख्य कारण यही था कि राजा स्वयं सम्यक्त्व रत्न का धारक था जो जैसा व्यक्ति होता है उसको वैसी ही बात अच्छी लगा करती है जैसे पापी को पाप और धर्मी को धर्म। राजा श्रेणिकके प्रश्न को सुनकर गुरु देव श्री गोतम स्वामी जी ने सम्यक्त्व रस से भरी हुई सेठ अर्हद्दास और उसकी स्त्री मित्रश्री आदि की कथायें कहनी शुरु करदी गुरु देवकहने लगे हे राजेश्वर—

❀ मथुरा के पद्मोदय राजा की कथा ❀

इस जम्बूद्वीपके-भरत क्षेत्र में एक सोरठ नाम का देश था, उस देश मे मथुरा नाम की नगरी थी वह श्रेष्ठ राज लक्ष्मी युक्त थी जो कि सताइस वकारों से सोभाय मान हो रही थी, सताइस वकारो के नाम।

श्लोक—वापि वप्र विहार वर्ण वनिता वाग्मि वनं वाटिका,
वैद्य ब्राह्मण वादि वेश्म विबुधा वाचंयमा वल्लकी।
विद्या वीर विवेक वित्त विनया वेश्या वणिक् वाहिनी।
वस्त्रं वारण वाजि वेसर वरं राज्यतुवे शोभते॥ १॥

भा०—बावड़ी, वप्र (किला) विहार, (मनोहर भवन) वर्ण, (चारो वर्ण-के लोग) वनिता [स्त्री] वाचाल—मनुष्य, वन, वाटिका, [पुष्पोद्यान] वैद्य ब्राह्मण, वादी वेश्म, [बहुत ऊंची २ सुन्दर हवेलियां] विबुध' [पंडित-विद्वान] वाचंयम, [साधु] वल्लकी, [वीणा] विद्या, वीर, [सुभट] विवेक [विचार वान] वित्त [धन विनय, [बड़े जनों की सेवा भक्ति करना] वेश्या वणिक, वाहिनी [सेना, वस्त्र, वारण] (हाथी) वाजी[घोड़ा] वेसर [खच्चर] मथुरा नगरी मे "पद्मोदय नाम का राजा था, वह राजा न्याय नीति

और धर्म कार्य में अति निपुण था।

परोपकार करने में तो हर समय तत्पर रहता था, प्रजा पालन में चतुर, शत्रु रूपी वृक्ष को उखाड़ फेंकने में हस्ती के समान था, राजा के गुण।

श्लोक—**सत्यं सौर्यं दया त्यागो, नृपस्यैते महा गुणाः।**
एभिर्मुक्तो महीपालः, प्राप्नोति खलु वाच्यताम् ॥ २ ॥

भा० — राजा में ये चार महागुण होने बहुत जरूरी हैं यदि यह गुण न हों तो वह राजा निश्चय निन्दा का पात्र होता। वे चार गुण यह हैं सत्य, शूर, वीरता, दया और त्याग।

श्लोक—यः कुलाभिजना चारै, अति शुद्ध प्रतापवान् ।
धार्मिको नीति कुशलः, स स्वामी युज्यते भूवि ॥ ३ ॥

भा०—कुलाचार और लोक चार में निपुण हो तथा महा प्रतापी, धर्म शील और नीति में कुशल हो वही पृथ्वी पति अर्थात् वही राजा राज्य के योग्य होता है।

श्लोक—यस्य प्रसादे पद्मास्ते, विजयश्च प्राक्रमे ।
मृत्युश्च वसति क्रोधः, सर्व तेजो मयो हि सः ॥ ४ ॥

भा०—जिसकी प्रसन्नता में लक्ष्मी, प्राक्रम में जय, और क्रोध मे मृत्यु रहती है वही तेजस्वी राजा राज्य के योग्य होता है।

श्लोक—हर्ष क्रोधौ समौ यस्य, शास्त्रार्थे प्रत्ययस्तथा।
नित्यं भृत्यानु पेक्षाच, तस्य स्याद्धन दाँधरा ॥ ५ ॥

भा० जिस राजा को हर्ष खुशी और क्रोध समान है, सिद्धान्त पर विश्वास है, सेवकों [illegible] रखता है, उस राजा को ही यह पृथ्वी धन धान्य देने वाली होती है।

श्लोक-तस्करेभ्यो नियुक्तेभ्यः, शत्रुभ्यो नृप वल्लभात्।
नृपति निज लोभाच्च, प्रजा रक्षेत्पितेव हि ॥ ६ ॥

भा० राजा को चोरों से, सेवकों से, शत्रुओं से, मर्त्री से और अपने लोभ से प्रजा को बचावे प्रजा को लूटे नहीं, पिता की तुल्य प्रजा की रक्षा करता रहे।

श्लोक-कामःक्रोध स्तथा मोहो,लोभो मानो मदस्तथा।
षड्वर्ग मुत्सृजेदेन-मस्मिंस्त्यक्ते सुखी नृपः ॥ ७ ॥

भा० जो राजा काम क्रोध मोह लोभमान और मद को छोड़ेगा वही सुखी होगा। पद्मोदय की सब से बड़ी राणी का नाम " यशोमती " था वह अति रूपवान एव पतिव्रतादि गुण युक्त थी ,उस ही रानी के अग से उत्पन्न हुआ सर्व गुण व लक्षण युक्त "उदितोदय" नाम का पुत्र था। राजा के मन्त्री का नाम "सभिन्नमती" था वह साम दाम दण्ड भेद आदि राज्य नीति मे अति ही निपुण था ,उत्पातिया विणिया कामिया परि-णामिया आदि बुध्दि का निधान था। नगर वासियों का आधार भूत था हर समय राज्य और प्रजा की भलाई में लगा रहता था।

❀ मंत्री की महिमा ❀

श्लोक—स्मृतिश्च परमार्थेषु, वितर्को ज्ञान निश्चय.।
दृढता मंत्र गुप्तिश्च, मंत्रिणः परमो गुणः ॥ ८ ॥

भावार्थ-धर्म के तत्वों को स्मरण रखना (याद रखना) विवेकवान होना, बुद्धि की स्थिरता दृढता मंत्र को गुप्त रखना ये मत्री के महा गुण है।

श्लोक-स्वदेशजं कुलाचारं, विशुद्ध मुपधा शुचिम्।

सं त्रज्ञ मव्यसनिनँ, व्यभिचार विवर्जितम् ॥ ६ ॥
अधितव्य व्यवहारार्थ ,मौलं ख्यातं विपश्चितम् ।
अर्थस्योपादकं चैव, विदध्यान्मंत्रिणं नृप ॥ १० ॥

भा०—स्वदेशीकुल की रीति में निपुण धर्म शील अर्थात् उत्कोच (रिश्वत) आदि न लेवे, विचार करने मैं चतुर, द्यूत (जुवा) पान (शराव) पीने आदि व्यसन से तथा व्यभिचार से रहित, युद्ध कला में दक्ष, कुलीन प्रसिद्ध विद्वान नीतिसे धन उपार्जन करने बाला ही मंत्री बनाने के योग्य है । समिन्न मती मंत्री की स्त्री का नाम ,"सु प्रभा" था और पुत्र का नाम ',सुबुद्धि', था । मुथरा पुरी में एक "रूप खुरा" नाम का एक चोर रहता था वह अजन गुटिका (गोली) मैं बड़ा चतुर था चोरी करने में हल के हाथ वाला (चोरी करने में होशियार) सर्प समान एक दृष्टी वाला, छुरी के समान एक धार वाल अर्थात् जिसके घर चोरी करनी होती उसके यह चोरी करके ही दम लिया करता था । जैसे अग्नि सर्व भक्षी होती है ठीक उस ही प्रकार वह भी सब वस्तु का भक्षण करने वाला था, इसकी स्त्री का नाम रूपखुरी और पुत्र का नाम सुवर्ण खुरा था । इस ही नगरी में राज्य मान्यनीय जिनदत्त नाम का एक सेठ रहता था वह जैन धर्म को मानने वाला श्रावक था और वह श्रावक धर्म का सम्यक् प्रकार से पालन करता था श्रावक धर्म—

सवैया—माने देव अरिहन्त, गुरू माने निग्रन्थ, धर्म के बर का, और नहीं भाइये। आडम्बर धारी होवे, ताकु लोग परसंसे कु सगत लाय कर मन ना डिगाइये। सामायिक पोषा माँहि साधु संग बैठकर, सुनत व्याख्यान वाणी, निन्दा नहीं गाइये । कहे मुनि हीरचन्द ऐसे पाले जिन धर्म, चुके नहीं

चित ताकु श्रावक बताइये ॥ ११ ॥ पाले शुद्ध व्रत बार समकित जाने सार । मिथ्यात में राचे नाही, श्रावक सो कहिये । साधां सेती राखे राग, यथा शक्ति करे त्याग, चाले नही भूठे राह, पर गुण लहिये । पर निन्दा नही करे, दया मन चित धरे, यशवन्त लोक मांही, क्षमा मन गहिये । कहे साधु हीरचन्द कुमती न राखे चित, दान देवे यथा वित्त शिवपुर चहिये ॥ १२ ॥

श्लोक—सिद्धान्त श्रवणे श्रद्धा, विवेक व्रत पालनम् ।
दानादिकं करणं सेवा, ह्येतच्छ्रावक लक्षणम् ॥१६॥

श्रावक का मुख्य कर्त्तव्य है कि जिनेन्द्र देव द्वारा भाषित सत्य सिद्धान्त का श्रवण करे और उसमे श्रद्धा रखे, विवेक युक्त द्वादश व्रत का पालन करे, हाथ से दान देवे, संघ की भक्ति करे जिमसे आत्मा का कल्याण हो।

श्लोक—नो भुंजेत् किल रात्रि भोजन मथो नो कन्दमूला-शनम्, नो कुर्य्यात् भु ग्मन्य दार गमनं मात्रा समं मन्यते । नो सेवेत् कदापि सप्त व्यसनं नो दीर्घ वैरं तथा, यस्यैतद् गुण पॅचक हृदि से तच्छ्रावकत्वं परम् ॥१४॥

भा०— श्रावक के पाच लक्षण हैं –रात्रि भोजन न करे, कन्द मूल का भक्षण न करे पर स्त्री से गमन न करे पराई स्त्री को माता के सामन समझे, सात कु व्यसन् का त्याग करे, किसी से घणे दिन तक वैर न रखे

श्लोक—विभाग शीलो यो नित्यं, क्षमा युक्तो दयालुकः ।
देवता तिथि भक्तश्च, गृहस्थः सतु धार्मिक ॥ १ ॥

भा०—जद गृहस्थ भोजन पदार्थ को आपस मे बांट कर खावे, क्षमावान

सं अज्ञ मव्यसनिनँ, व्यभिचार विवर्जितम् ॥ ६ ॥
अधितव्य व्यवहारार्थ ,मौलं ख्यातं विपश्चितम् ।
अर्थस्योपादकं चैव, विदध्यान्मंत्रिणं नृप ॥ १० ॥

भा०—स्वदेशीकुल की रीति में निपुण धर्म शील अर्थात् उत्कोच(रिश्वत) आदि न लेवे, विचार करने मैं चतुर, द्यूत (जुवा) पान (शराब) पीने आदि व्यसन से तथा व्यभचार से रहित, युद्ध कला में दक्ष, कुलीन प्रसिद्ध विद्धान नीतिसे धन उपार्जन करने बाला ही मन्त्री बनाने के योग्य है। सभिन्न मती मंत्री की स्त्री का नाम ,'सु प्रभा" था और पुत्र का नाम ',सुबुद्धि', था। मुथरा पुरी में एक "रूप खुरा" नाम का एक चोर रहता था वह अजन गुटिका (गोली) मैं बड़ा चतुर था चोरी करने मे हल के हाथ वाला (चोरी करने में होशियार) सर्प समान एक दृष्टी वाला, छुरी के समान एक धार वाल अर्थात् जिसके घर चोरी करनी होती उसके यहा चोरी करके ही दम लिया करता था। जैसे अग्नि सर्व भक्षी होती है ठीक उस ही प्रकार वह भी सब वस्तु का भक्षण करने वाला था, इसकी स्त्री का नाम रूपखुरी और पुत्र का नाम सुवर्ण खुरा था। इस ही नगरी में राज्य मान्यनीय जिनदत्त नाम का एक सेठ रहता था वह जैन धर्म का मानने वाला श्रावक था और वह श्रावक धर्म का सम्यक् प्रकार से पालन करता था श्रावक धर्म—

सवैया—माने देव अरिहन्त, गुरू माने निग्रन्थ, धर्म के वली का, और नही भाइये। आडम्बर धारी होवे, ताकु लोग परसंसे, कु संगत लाय कर मन ना डिगाइये। सामायिक पोषा माँही, साधु सँग बैठकर, सुनत व्याख्यान वाणी, निन्दा नहीं गाइये। कहे मुनि हीरचन्द ऐसे पाले जिन धर्म, चुके नही

चित ताकु श्रावक बताइये ॥ ११ ॥ पाले शुद्ध व्रत बार समकित जाने सार। मिथ्यात में राचे नाही, श्रावक सो कहिये। माधां सेती राखे राग, यथा शंक्ति करे त्याग, चाले नहीं झूठे राह, पर गुण लहिये। पर निन्दा नही करे, दया मन चित धरे, यशवन्त लोक मांही, क्षमा मन गहिये। कहे साधु हीरचन्द कुमती न राखे चित, दान देवे यथा वित्त शिवपुर चहिये ॥ १२ ॥

श्लोक—सिद्धान्त श्रवणे श्रद्धा, विवेक व्रत पालनम् ।
दानादिकं करणं सेवा,ह्येतच्छ्रावक लक्षणम् ॥१६ ॥

श्रावक का मुख्य कर्त्तव्य है कि जिनेन्द्र देव द्वारा भाषित सत्य सिद्धान्त का श्रवण करे और उसमे श्रद्धा रखे, विवेक युक्त द्वादश व्रत का पालन करे, हाथ से दान देवे, सघ की भक्ति करे जिससे आत्मा का कल्याण हो।

श्लोक—नो भुंजेत् किल रात्रि भोजन मथो नो कन्दमूला-शनम्, नो कुर्य्यात् भुवमन्य दार गमनं मात्रा समं मन्यते।
नो सेवेत् कदापि सप्त व्यसनं नो दीर्घ वैरं तथा, यस्यैतद् गुण पँचक हृदि से तच्छ्रावकत्वं परम् ॥१४ ॥

भा०—श्रावक के पाच लक्षण हैं—रात्रि भोजन न करे, कन्द मूल का भक्षण न करे पर स्त्री से गमन न करे पराई स्त्री को माता के समान समझे, सात कु व्यसन् का त्याग करे, किसी से घणे दिन तक वैर न रखे

श्लोक—विभाग शीलो यो नित्यं, क्षमा युक्तो दयालुकः।
देवता तिथि भक्तश्च, गृहस्थ सतु धार्मिक ॥ १ ॥

भा०—सद गृहस्थ भोज्य पदार्थ को आप न बाट कर खावे, क्षमावान

और दयालु हो, देव गुरु का परम भक्त होवे ।

श्लोक—पितुमातुःशिशुनाच, गर्भिणी वृद्ध रोगीणॉ ।
प्रथमं भोजनं दत्वा, स्वयं भौक्तव्य मुत्तमैः ॥ १६ ॥

भा० – माता पिता बालक गर्भिणी वृद्ध (बूढे) और रोगी को पहले भोजन खिला कर फिर आप भोजन जीमें।

श्लोक- चतुपदानां सर्वेषां, धृतानां च तथा नृणाम्
चिन्ता विधाय धर्मज्ञ, स्वयं भुजतिनान्यथा ॥१७॥

भा०—श्रावक का सर्व प्रथम कर्तव्य है कि अपने पास में रहने वाले समस्त मनुष्य और पशुओं को खाना दाना खिला पिला के फिर आप खावे पीवे। जिनदत्त सेठ की धर्म पत्नी का नाम 'जिनमती' था वह पतिव्रता थी और जैन धर्म में अतिशय प्रेम रखती थी।

कार्ये दासी रतौ वैश्या, भोजने जननी समा ।
विपत्तौ बुद्धि दात्री च, सा भार्या सर्व दुर्लभा ॥१८॥

भा०—पतिव्रता स्त्री दासी की तरह घर के सब काम धन्धे अपने हाथो से करे नौकर चाकरों पर न रहे, अपने पति को भोजन ऐसे प्रेम से जीमावे जैसे कि माता पास बैठकर पुत्र को जीमाया करती है, पति दुःख सकट में पड़ गया होतो उसको ऐसी बुद्धि देवे जिस से वह दुःख सागर से पार हो जावे, पति की आज्ञानुकूल चलने वाली हो ।

श्लो–कार्येषु मन्त्री करणेषु दासी, भोज्येषु माता शयनेषु रंभा
धर्मानुकूला क्षमया धरित्री, भार्याचैषाँ गुणवतीह दुर्लभा.

भा०– पतिव्रता स्त्री पति देव को मन्त्री की तरह हित शिक्षा देवे बादी की तरह गृह कार्य में लगी रहे' माता के समान पास बैठ कर पति को भोजन

स्त्रिन्धो बन्धुजनः सखाऽति चतुरो नित्यँ प्रसन्न प्रभुः
निर्लोभोऽनुचरः स्वबन्धु सुमुनि प्रायोप योग्यं धनं,
पुण्याना मुदयेन संततमिद कस्यापि सं पद्यते ॥३०॥

भा०—स्त्री प्रेम करने वाली, पुत्र-विनय भक्ती करने वाला, भाई प्रेमादि गुण से युक्त, बन्धुस्नेह वाले, चतुर मित्र, स्वामी प्रसन्न चित वाले' नोकर निरलोभी, धन साधु सन्तो की सेवा में-लगे तथा कुटुम्बी जनौं की सेवा में लगे, ये कार्य पूर्वले पुन्य के उदय से होते हैं बिना पुन्य के कुछ नहीं होता

श्लोक—जैनो धर्मः प्रकट विभवः सँगति साधु लोके, विद्वद्गो-ष्ठि र्वचन पटुता कौशलं सत् क्रियासु। साध्वी लक्ष्मीः चरण कमलो पासनं सद् गुरुणां, सुद्धं शीलं सुमतिरमला प्राप्यते नाल्प पुण्यैः ॥ ३१ ॥

भा०—जैन धर्म, धन, साधुओंकी सगति, विद्वानों से वार्तालाप श्रेष्ठ धार्मिक क्रियाओं में उत्साह, लक्ष्मी रूप स्त्री, सत गुरु की सेवा, शुद्ध शीलाचार का पालना, थोडे पुण्य से प्राप्त नहीं होता, यह उपरोक्त वस्तुयें बड़े भारी पुण्योदय से प्राप्त होती हैं।

श्लोक—मनुष्यं वर वंस जन्म विभवो दीर्घायुरारोग्यता, सन्मित्रं सु सुता सती प्रियतमा भक्ति श्चतीर्थं करे। विद्वत्वं मिन्द्रि-जयः सत्पात्र दाने रति-स्तेपुण्येन विना त्रयोदश गुणाः सँसारिणॉ दुर्लभा ॥ ३२ ॥

भा०—मनुष्य भव. उत्तम कुल में जन्म धन, दीर्घायु, शरीर निरोग, सच्चा मित्र, आज्ञाकारी पुत्र, सती स्त्री, तीर्थंकर देव की भक्ति ! विद्वानपना, अच्छे स्वभाव वाला होना, इन्द्रियों का जीतना, सुपात्र को दान देने की रुचि होंना, यह तेरह गुण बड़े पुण्योदय से प्राप्त होते है जिनदत सेठने अपने प्यारे पुत्र "अर्हंदास" का आठ

नगरस्थो वनस्थो वा, पापोवा यदिवा शुचिः यासाँ स्त्रीणां प्रियो भर्ता, तासाँ लोका महोदयाः ॥ २६ ॥

भा०—कारन वस पति स्त्री को कठोर बचन भी कहे क्रोध की दृष्टी से भी देखे त। भी पतिव्रता स्त्री पति के सामने मुख प्रसन्न किये खड़ी रहती है। पति नगर में हो बन मे हो कारन वस पाप बुद्धिवाला हो गया हो, पुन्यरूप हो चाहे कैसी भी अवस्था क्यों न हों जो पति की सेवा करेगी वही पुन्यात्मा स्त्री सती कहलायगी।

श्लोक—सतीनां पाद रजसां, सद्यः पूता वसुन्धरा ।
पति व्रता नमस्कृत्य, मुच्यते पातकान्नर ॥ २७ ॥

भा०—जिनमती जैसी पतिव्रता सती के चरणों की धूल से यह पृथ्वी शीघ्र ही पवित्र हो जाती ऐसी पतिव्रता सती को नमस्कार करने से मनुष्य शीघ्र पाप से छुट जाता है। सेठ जिनदत्त और जिनमती का पुत्र "अर्हदास," था वह भी पिता की तरह धर्म का रागी और जिनेन्द्र देव का परम भक्त एव नव तत्त्व ज्ञाता था नव तत्त्व के नाम—

जीव अजीव पुन्य पाप है, आश्रव सम्बर जाण।
निरजरा बन्ध मोक्ष है, ये नव तत्त्व को ज्ञान ॥ २८ ॥
सम्यक्त्व ने सेठा घणा, छोड़ा पाखंड मत।
हाडी २ नी मींजिया, जिन धर्म में रत ॥ २६ ॥

प्यारे पाठकों बड़े भारी पुन्योदय से इस जीवात्मा को मनुष्य का शरीर मिलता है और भी पुन्योदय से किसी २ वस्तु की प्राप्ती होती है वह भी देखिये।

पत्नी प्रेमवती सुतः स विनयों भ्राता गुणालकृतः,

स्निग्धो वन्धुजनः सखाऽति चतुरो नित्यँ प्रसन्न प्रभुः
निर्लोभोऽनुचरः स्वबन्धु सुमुनि प्रायोप योग्यं वनं,
पुण्याना मुदयेन संततमिद कस्यापि सं पद्यते ॥३०॥

भा०—स्त्री प्रेम करने वाली, पुत्र-विनय भक्ती करने वाला, भाई प्रेमादि गुण से युक्त, वन्धुस्नेह वाले, चतुर मित्र, स्वामी प्रसन्न चित वाले' नोकर निरलोभी, धन साधु सन्तो की सेवा मे लगे तथा कुटुम्बी जनों की सेवा में लगे, ये कार्य पूर्वले पुन्य के उदय से होते हैं विना पुन्य के कुछ नहीं होता

श्लोक—जैनो धर्मः प्रकट विभवः सँगति साधु लोके, विद्वद्गो-ष्ठि र्वचन पटुता कौशलं सत् क्रियासु। साध्वी लक्ष्मीः चरण कमलो पासनं सद् गुरुणां, सुद्धं शीलं सुमतिरमला प्राप्यते नाल्प पुण्यैः ॥ ३१ ॥

भा०—जैन धर्म, धन, साधुओंकी सगति, विद्वानों से वार्तालाप श्रेष्ठ धार्मिक क्रियाओं में उत्साह, लक्ष्मी रूप स्त्री, सत गुरु की सेवा, शुद्ध शीलाचार का पालना, थोड़े पुण्य से प्रात नहीं होता, यह उपरोक्त वस्तुयें बड़े भारी पुण्योदय से प्राप्त होती हैं।

श्लोक—मनुष्यं वर वंस जन्म विभवो दीर्घायुरारोग्नता, सन्मित्रं सु सुता सती प्रियतमा भक्ति श्चतीर्थं करे। विद्वत्वं मिन्द्रि-जयः सत्पात्र दाने रति-स्तेपुण्येन विना त्रयोदश गुणाः सँसारिणाॅ दुर्लभा ॥ ३२ ॥

भा०—मनुष्य भव. उत्तम कुल में जन्म धन, दीर्घायु, शरीर निरोग, सच्चा मित्र, आज्ञाकारी पुत्र, सती स्त्री, तीर्थंकर देव की भक्ति। विद्वानपना, अच्छे स्वभाव वाला होना, इद्रियों का जीतना, सुपात्र को दान देने की रुचि होंना, यह तेरह गुण बड़े पुण्योदय से प्रात होते हैं जिनदत सेठने अपने प्यारे पुत्र "अर्हदास" का आठ

बड़े सेठों की सुयोग्य कन्याओं से शुभ महुर्त मे विवाह कर दिया, उन आठों स्त्रियों के क्रम से यह नाम थे मित्र श्री, चन्दन श्री, विष्णुश्री, नागश्री, पद्मलता, कनकलता, विद्यु तूलता, कुन्दलता, यह आठों स्त्रिया भी पतिव्रता थी और जैन धर्म मे इनकी भी अधिक रुचि थी। वह सासु जिनमती को माता के समान और सुसरे जिनदत्त को पिता के समान समझती थी, ज्येष्ठ देवर के साथ भाई जैसा वरताव किया करती थी, सासु की दी हुई हित शिक्षा को बड़े प्रेम के साथ सुना करती थी और हित शिक्षा पर ध्यान दे हर समय वह वही काम करती थी जिससे सासुजी का दिल हर समय प्रसन्न रहता था। बहु का कर्तव्य

सवैया—सासु को मात, पिता सुसरा, अरु देवर जेठ लखे निज भाई। सासु जो सीख करे सो सुने, और कौमल बैन वदे हर्षाई। हे! मम मात मैं बालक जात हूं, आप पवित्र सु सीख सुणाई। कृष्ण कहे कुलवान बहु, सत्य धर्म की रीति चले सुखदाई॥२२

प्यारे पाठक वृन्द कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी के दिन मथुरा के राजा "पद्मोदय,, ने शहर भरमें डु डी पिटवादीकि कल कार्तिक शुदी पूर्णमासी का दिन है इस लिये राजाकी आज्ञा है कि कलको शहर की समस्त स्त्रिया बन क्रिड़ा के लिये वन में जावें और दिन रात वही वन में रहकर गीत नृत्य वाजित्रों द्वारा बड़े आमोद प्रमोद के साथ अपना समय वितावें, स्त्रियों के मेले में कोई पुरुष नहीं जाने पावेगा, जो हमारी इस आज्ञा का उलंघन करेगा वह राज द्रोही समझा जावेगा और पुरुषों को शहर मे ही रहना होगा। डु डी की आवाज को सुनकर नगर निवासियों ने राजा की आज्ञा के अनुकुल ही कार्य किया। पूर्ण मासी के दिन नगरकी सब स्त्रिया तथा राजा की सब रानिया वन क्रीड़ा के लिये वन मे गई। राजाने चारों

दिशाओं में शूर वीरों का पहरा बैठा दिया कि स्त्रियों के जल से मे कोई किसी प्रकार का विघ्न न होने पावे। इधर शहर के लोगों ने सारा दिन बड़े आनन्द के साथ बिताया, और रात को सब अपने २ घरों में चले गये, राजा ने भी वह दिन तो आनन्द पूर्वक बिता दिया किन्तु रात्रि को जब चन्द्रोदय हुआ तो काम वासना ने राजा के चित को विकल बना दिया, तब राजा के रानिया याद आई पर महलों मे रानी नहीं थी। राजा ने उसी समय नोकर के हाथ "सभिन्नमती" मंत्री को बुलाया और कहा अमात्य राज जहापर मेरी रानिया क्रिड़ा कर रही हैं वहीं उस बन में मैं भी जाना चाहता हूँ। राजा की इस बात को सुनकर मंत्री विचारने लगा कि

श्लोक–नृप· कामासक्तो गणयति न कार्यन च हितं, यथेष्टं स्वच्छन्द. प्रविचरतिमत्तो गज इव·। ततो मान व्सात· स पतति यदा शोक गहने, तदा भृत्ये दोषान् श क्षिपती न निजं क्षेत्य विनयम् ३४

भावार्थ–राजा लोग काम भोगों में धस कर हितकारी और सुन्दर कार्य वाली बात को नहीं सुनते और मद में हस्ती की तरह मद मस्त होकर अपनी इच्छानुसार ·जो चाहें कर लेते हैं और फिर जब दुःख सागर मे पड़ जाते हैं तब सेवकों पर दोषारोपण करते हैं अपने किये हुए कुकर्मों को नहीं देखते फिर भी राजा को समझाना मेरा कर्तव्य है।

मन्त्री बोला–श्री महाराज इस समय आपका बन में जाना उचित नहीं है, यदि इस समय आप बन में चले जाओगे तो शहर वालों से आपका पूरा २ विरोध हो जाएगा और फिर प्रजा से विरोध होने पर आपके राज्य को नष्ट होते हुये कुछ भी देर नहीं लगेगी क्योंकि बहुतों को जीतना महा कठिन है। देखिये बड़े भारी मद मस्त हाथी को छोटी छोटी कीड़िया भी मारने में समर्थ हो जाती हैं। मन्त्री की बात को सुनकर

क्रोध में भरा कर राजा बोला रे मन्त्री तू क्या कहता है ? जब मैं क्रोध करूंगा तब ये नीच लोग मेरा क्या करलेंगे, मेरे हाथ में सबकुछ है, मैं जो चाहे सो कर कर सकता हूँ। राजा की बात को सुनकर मन्त्री बोला- श्री महाराज आप कहते हैं कि ये नीच हमारा क्या करेंगे सो आपका यह कहना ठीक नहीं हैं, असमर्थ मनुष्य भी यदि बहुत से मिल जावें तो एक बड़ी भारी शक्ति बहुत ही जल्दी तैयार हो जाती है फिर वह जो चाहे सो कर सकते हैं। इस लिये आप अपनी इस हठ को छोढ दें, देखिये तृण कितनी शक्तिहीन वस्तु हैं पर वह जस बहुत से मिलकर इकठ्ठे हो जावें यानी उनका रस्सा वाट लिया जावे तो वह टूटना कठिन हो जाता है फिर चाहे उस रस्सा से हाथी भी बाध लेवे तो वह टस से मस नहीं होता। राजा कहने लगा कि मत्री यह ठीक है परन्तु हैं तो यह निर्बल ही। एक सबल के सामने हजारों, लाखों क्रोड़ों बेकार हैं, जैसे एक चन्द्रमा के सामने सब तारे बेकार हैं ऐसे ही एक तेजस्वी के आगे अनेक निस्तेज भी बेकार हैं। राजा के बचन को सुनकर निडर होकर मत्री कहने लगा कि श्री महाराज मालूम होता हैं कि अब आपका विनाश का समय भी आन पहुँचा हे जो आप को सद् शिक्षा भी उलटी ही दिखती हैं, आपकी बुद्धि भी फिर गई है, इसमें आपका भी कोई दोष नहीं हैं सब आपके भाग्य का दोष है।

दोहा—होनहार हृदय बसे, बिसर जाय सब बुध, जो होनी सो होत है, वैसी उपजे बुध ॥ ३५ ॥

राजा रावण यह खूब अच्छी तरह जानता था कि सीता जी के कारण से मेरी मृत्यु होगी फिर भी तो वह सीता जी को चुराकर ही ले गया, पाच पाडव—युधिष्ठिर आदि सब जानते थे कि जुवा खेलने से किसी की भी जय नहीं होती फिर भी वह जुवा खेल कर ही रहे जिसके परिणाम (नतीजे) को समस्त संसार जानता है। हे राजेश्वर सुयोधन राजा को अपने बलका

बड़ा भारी घमण्ड था लेकिन बलहीन प्रजा ने उसको गद्दी से उतार दिया और धक्का देकर शहर से निकाल दिया आप खूब अपने हृदय में सोचें और समझें और अपने हठ को छोड़ें; मैं आपको सुयोधन राजा को कथा सुनाता हूँ

❀ बिकलमती सुयोधन राजा की कथा ❀

श्रीमहाराज हथनापुर नाम के शहरमें "सुयोधन" नाम काएक प्रतापी राजा राज्य करता था उसकी पटरानी का नाम"कमलादेवी" था और "गुणपाल" पुत्र था। मत्री का नाम "पुरुषोत्तमदास" था उसकी स्त्री का नाम "लक्ष्मीदेवी" और पुत्र का नाम "देवपाल" था। राज्य प्रोहित का का नाम "कपिलदेव" प्रोहितानी का नाम "कपिलादेवी" और पुत्र का नाम "सुशर्मा" था। राजा के यहा माना हुआ नगर रक्षक (कोतवाल) "यमदण्ड" था उसकी घर वाली का नाम "बनवर्ती" पुत्र का नाम "सुमतप्रकाश" था। एक दिन राजा कचेहरी मे बैठा हुआ था कि एक गुप्तचर ने आकर कहा—श्री महाराज शत्रुओंने आपके देश को उजाड़ना शुरु कर दिमा हैं और बड़ा उपद्रव मचा रखा है, देश में हा हा कार मच रहा है, इतनी सुनकर राजा बोला कि हे गुप्तचर मैं अभी चलता हूँ, और उस दुष्ट को देखता हूँ। वह पापात्मा जबतक ही उधम मचाले कि जब तक मैं उसके सामने न जाऊ, मृग तब तक ही स्वतत्र होकर घूम फिर सकते हैं कि जब तक कि सिंह नेत्र मु दे गुफा में पड़ा रहे अथवा मद मस्त हाथी तब तक ही गरजे है कि जब तक कि शेर उसके पास न आवे अर्थात् शेर आवेगा तब न तो मृग ही ठहरने पावेंगे और न हाथी ही। सब चारों दिशाओं में भागते ही दृष्टिगत होंगे, मिडक पड़ा हुआ तब तक टरंड़ु टरंड़ु की धुनी करताहै जब तक कि काला नाग उसको दिखाई न देवे, यह कहकर राजा हाथी, घोड़ा, रथ, पैदल की फौज लेकर मन्त्री

श्लोक—आराध्य मानो नृपतिः प्रयत्ना—न्नतोषमायाति किमत्र चित्रम् । अयंत्व पूर्व प्रतिमा विशेषो, यः सेव्य मानो रिपुता मुपैति ॥४०॥

भा०—राजा की कोई चाहे कितनी भी सेवा करके देख ले । वह कभी प्रसन्न ही नहीं होता, इस में आश्चर्य भी क्या है क्योंकि यहतो एक अनोखी ही देव मुर्ति है जो सेवा करने पर भी उलटी शत्रुता करती है ।

श्लोक—काके शौचं द्यूतकारे च सत्यं, सर्पे क्षान्तिः स्त्रीषु कामोप शान्तिः । क्लीवे धैर्यं मद्यपे तत्वे चिन्ता, राजा मित्रं केन दृष्टं श्रुतंवा ॥४१॥

भा० कौआ में पवित्रता, जुवे खेलने वालों में सचाई, सर्प में क्षमा, स्त्रियों में काम वासना की उपशान्ति, हीजड़े में धैर्यता, मद्यप (शराब पीने वालों) में तत्व (धार्मिक) विचार नहीं होता। ठीक इसही प्रकार राजा भी किसी के मित्र न देखे और न सुने गये हैं, इस लिए मेरे को चाहिये राजा से मैं अपनी रक्षा करू । इधर सुयोधन राजा ने यमदण्ड को फसाने के लिये अनेक उपाय किये किन्तु उसके सब यत्न निष्फल गये। राजा ने एक दिन समय देखकर एकान्त में मन्त्री को और प्रोहितजी को बुलाया और अपने हृदय की बात कह सुनाई, उन पापियों ने भी राजा की हा में हा मिलादी, नीतिकारो ने क्या ही अच्छा कहा है कि—

श्लोक—वैद्यो गुरुश्च मंत्री च, यस्य राज्ञः प्रियः सदा ।
शरीर धर्मको शेभ्यः, क्षिप्रं स परि हीयते ॥४२॥

भा० जिस राजा के वैद्य प्रोहित और मंत्री सदा हा में हा मिलाने वाले हों वह राजा शरीर धर्म और खजाने से रहित हो जाता है ·नीति शास्त्र में लिखा है कि—

श्लोक—तादृशी जायते बुद्धि—र्व्यवसायोऽपि तादृशः ।

सहाया स्ता द शाएव, यादशी र्भव्यतव्यता ॥४३॥

भा० – जैसा होनहार होना है वैसी ही मनुष्य की बुद्धी हो जाती है और उपाय व सहायक भी उसको वैसे ही मिल जाते हें।

अब राजा मत्री और प्रोहित यमदड को मारने का उपाय सोचने लगे कि इसको कैसे मारें, निदान उन तीनों ने यमदड को मारने का उपाय ढूड ही निकाला, रात्रि के समय तीनों पापी खजाने पर गये और राज्यकीय खजाने को तोढ कर माल निकाल चलते बने और महलों मे जा गुप्त स्थान मे धर अपने २ ठिकाने पिलगो पर जा कर सो गये। यमदण्ड के पुण्योदय से समझो या उनकी भूल (पापोदय) से समझो कि जहा उन पापियों ने पाड़ दई थी वहीं पर जल्दी के कारण राजा की खड़ाऊ मत्री की अंगूठी और प्रोहित देवता की जनेऊ रह गई। । प्रात: काल होने ही राजा जाग उठा और एक दम खजाने में चोरी हो नाने का शोर मचाया और उसी समय कोतवाल को बुलाने के लिये अपना अनुचर (सिपाही) भेजा, नोकर को दूर से आता देख कर यमदंड जान गया कि अब मेरा काल निकट ही आ गया है अब सेरे मरने में कुछ भी देर नहीं क्योंकि राजा तो मेरे पर पहिले से ही द्वेष रखता था अब उसने मेरे को मारने का कोई न कोई उपाय अवश्य ढूड लिया है आज मेरे लिये जो न हो जाय वही थोड़ा है। राजा के सामने पडितों की पडताई चली जती है, चतुर मूर्ख और शूरवीर डरपोक हो जाता है दीर्घायु वाले अल्पायु और कुलीनकुल हीन हो जाते हैं। यमदण्ड नोकर के साथ दरवार मे गया और राजा के सामने हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया देखता क्या है कि राजा प्रोहित और मत्रीकरड़ी नज़र लगाये बैठे हैं राजा क्रोध में भर कर लोला– रे यमदड ? तू मेरी प्रजा की तो क्या रक्षा करता होगा तेरे से मेरा खजाना ही नहीं रखा गया मालुम होता है कि तू चोरों से मिला हुआ है, तेरे बिना मिले खजाने में चोरी कैसे हुई, आज मेरे खजाने में चोरी हो गई है, जो मेरा माल चुरा ले गया है उस माल को और चोर को शीघ्र ही लाकर हाज़िर

नहीं तोदेखले इस चमकती हुई तलवार से तेरा मस्तक काट लिया जावेगा राजा की इस कठोर आज्ञा को सुन कर यमदमूड भागा हुआ खजाने पर गया, खजाना टूटा हुआ पाया और खजाने के पास ही खड़ाउ अगूठी जनेऊ पडी हुई पाई, यमदण्ड ने तीनों चीजे अपने कब्जे में कर चल दिया रास्ते में विचार किया कि यह तो तीनों ही चोर हैं (खड़ाउ से राजा, अगूठी से मत्री जनेऊ से प्रोहित को जानलिया) इन तीनों ने ही मिल कर चोरी की है इन तीन के सिवाय और किसी के खोज भी खजाने पर नही दीखते, बड़े खेद की बात है कि राजा स्वय चोरी करने लगगया है तब मैं कहाँ जाकर पुकारु जो मेरी प्रार्थना को सुने। राजा के कोष में चोरी हो गई है और कोतवाल साहब को बुलवाया है इसबात के समाचार सारी नगरी में विजली की तरह फैल गये और नगरी के बड़े २ पच महा जन नबरदार मुखिया सब दरबार में आये और अपने २ आसन पर बैठ गये. राजा ने चोरी का सब हाल पंचो को कह सुनाया साथ में यह भी कह दिया कि यदि कोतवाल चोर को और माल को हाजिर न करेगा तो उसका सिर काट लिया जावेगा। थोड़ी देर के बाद कोतवाल कचहरी में आया और राजा ने पूछा कि क्या चोर को और माल को लाया? यमदड बोला श्री महाराज! खजाने पर न तो चोर ही मिला और न आपका माल ही मिला। राजा यमदण्ड के क़त्ल का हुक्म सुनाने वाला ही था कि पन्चा ने मिल कर प्रार्थना की कि श्री महाराज आप हमारे कहने से अपने प्यारे कोतवाल को सात दिन की मोहलत (छुट्टी) दे दीजिये सात के भीतर यदि यह चोर को और चोरी की हुई वस्तू को उपस्थित न कर सके तो फिर जो आपने विचार रखा है वही करना, नगरनिवासी महा जन पचो के बहुत अनुनय विनय युक्त वचन सुन कर यमदड को सात दिन की छुट्टी दी। कचैहरी मे आकर यमदड ने राजपुत्र, मत्रीपुत्र, प्रोहित पुत्र, और पचों को बुला कर कहा बतलाओ अब मैं क्या करू सबने मिल कर एक स्वर से कहा— आप डरना मत हम सब आपके साथी हैं आप कोई फिकर न करना, आपकी रक्षा में पहले कभी इस नगरी में न

चोरी हुई न होने की आशा है यह चोरी तो मालुम होतीहै कि राजादि के भेद से हुई हो। आप चोरको तलाश करें जो चोर ठहरेगा हम उसको दंड देंगें चाहे वह राजा भी क्यों न हो। यमदंड कहने लगा कि यह तो मैं भी जानता हूँ कि आप लोगो को सत्य प्यारा है और सत्य के ही आप साथी हैं,किन्तू कभी ऐसा न हो कि मैं चोर भी हाजीर करदू और तुम लोग मारे डर के मेरा साथ छोड दो! तब सबने यही उत्तर दिया कि हम आप का साथ नहीं छोडेंगें चाहे कुछ भी क्यो न हो जाये, प्रजा को अधिकार होता है कि वह अन्याई राजा को राज्य से पृथक् करदे आगे भी जिन २ राजाओ ने अन्याय जुल्म किया उनको प्रजा ने राज्य से अलग कर गद्दी छीन धक्के दे बाहिर निकाल दिया। आप प्रजा की शक्ति कुछ कम न समझिये ।

यमदंड धूर्तता पूर्वक चोरकी तलाशमें रहने लगा, प्रथम दिन यम-दण्ड राज्य सभा में गया और राजाको नमस्कार कर सामने खड़ा हो गया

दोहा– नमस्कार नृप ने करी, उभा जोड़ी हाथ ।
क्रूर नजर आ कोप कर, तब बोला नर नाथ॥४४॥
रे यमदण्ड तैं चोर को, तलाश कर्‌यो के नाय ।
प्रभू मैं कहीं देख्यो नहीं, सारे पुर के माय॥४५॥

राजा बोला तेरे को चोर मिला है या नहीं, कोतवाल बोला श्री महाराज ! मैंने चोर को खूब ढूंढा लेकिन मेरे को चोर कहीं भी नहीं मिला राजा कहने लगा कि जब तेरे को चोर नहीं मिला तो बतला इतनी देर कहां लगाइ राजा को समझाने के लिये यमदण्ड ने कपोल कल्पित कथाकहनी शुरू की। राजा से कहने लगा अन्नदाता एक जगह एक कथकड कथाकहने लग रहा था, मेरे को उसकी कथा बड़ी प्यारी लगी इसलिये मैभी वहीं पर कथा सुनने के लिये खड़ा हो गया कथा सुनने मे मेरे को देर लग गई।

राजा हस कर बोला अरे! मूर्ख तू अपनी मृत्यु को तोभूल गया और वहा कथा सुनने के लिये खड़ा हो गया, मालूम होता है तेरे को मरने का डर नहीं है यदि मरने का डर होता तो कथा सुनने के लिये खड़ा न होताखैर कोई बात नही जो तू कथा सुन कर आया हैवह मेरे को भी सुना, यमदड बोला श्री महाराज सावधान हो कर (आलश्य-प्रमाद को छोडकर) इस कथा को सुनिये।

एक बन मे तालाब के कांठे एक बड़ी छायावाला ऊचा बड़ का वृक्ष था, उस बड़ पर बहुत से हस रहा करते थे, उस वड़े के पास ही एक बेल का अकुर ऊग आया, उस अकुर को देख कर वृद्ध हंस अपने बेटे पोतों से कहने लगा भाई अब वृद्धावस्था के कारण मेरी चूच तो कमजोर हो गई है और तुम तुम्हारी चूच ताकतवर है इसलिये तुम इस अकुर को उखाड़ कर फैंक दो नहीं तो इस अकुर के द्वारा तुम अपनी मृत्यू निकट आई ही समझना। बूढे हस की बात को सुन कर बेटे पोते आपस में हसने लगे देखो! ये बूढ़ा अब भी मरने से डरता है काल के गाल मे जाने को तो तैयार हो रहा है फिर भी चाहता है कि मैं सदा अमर बना रहूँ, चाहे कोई मृत्यु से डर कर कहीं किसी गुफा मे जाकर छुप जाये या कहीं भी जाकर छुप जाओ या कहीं भी चले जाओ मृत्यू वहीं आ कर ढूड लेगी ये भला मरने से क्यों डरता है। बेटे पोतों की बात सुन कर बूढा हस मन मे बिचारने लगा कि मूर्खों को उपदेश देना हित शिक्षा की बात कहना अपना अपमान करवाना है, सर्प को दूध पीला कर देखो वह जहर ही उगलेगा।

श्लोक—उपदेशो हीं मूर्खाणां, प्रकोपाय न शान्तये।
पयः पान भुजङ्गानां, केवलं विष वर्धनम् ॥४६॥

सवैया—काणी को काजल आँधे को आरसी, खोजन को कहाॅनार सुहाई। स्वान के आगे कपूर धरयो, जैसे सूर को कस्तूरी सुंघाई। गधे को कहां चन्दन लेपन, मूर्ख की कहा करत बड़ाई। मूर्ख आगे ज्ञान कह्यो, जैसे भैंस के आगे मृदङ्ग बजाई ॥३७॥

काणी को काजल, आंधे और नाकहीनको आरसी (दर्पण), हीजड़े को स्त्री, कुत्ते को कपूर, सूवर को कस्तूरी, गधे को चन्दन का लेपन और मूर्ख की बड़ाई, भैंस के आगे बाजा बजाना व्यर्थ है, ठीक उसी वैसे ही मूर्ख को शिक्षा देना भी व्यर्थ है।

श्लोक—शक्यो वारयितुं जलेन हुतभुक् छत्रेण सूर्यातपो, नागेन्द्रो निशिताङ्कुशेन समदो दंडगा गर्दभौ। व्याधिर्भेषज संग्रहैश्च विविधै मंत्र प्रयोगै विषम्। सर्वस्यौषमस्ति शास्त्र विहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधम् ॥४८॥

भा०— अग्नि को शान्त करने के लिये पानी, सूर्य की तेजी को रोकने के लिये छत्र (छत्री), हाथी को वस में करने के लिये अकुश, दुष्ट पशु और गधे के मद को दूर करने के लिये दडा, व्याधि युक्त (रोगी के लिये) औषधी, सर्प आदि के विष के लिये मत्र यत्र तत्र दि है यानि सब की औषधी है किन्तु मूर्ख की कोई भी औषधी नही है। मैंने इन मूर्खों को हित की बात कही मगर इन्होंने उल्टी हसी उड़ाई समय आनेपर इनको अवश्य मूर्खता का फल मिलेगा। बूढा हस उस वृक्ष को छोड़ कर दूसरे वृक्ष पर जा बैठा। अब वह अकुर बढता २ बेल के रूप में परिणत हो गया और वह बेल बड़ के वृक्ष पर चढ गई जहा हसों का निवास स्थान था वहा तक पहुँच गई। एक दिन शिकारी वहा उस ही वन में जा निकला जहा हस रहते थे, उस ही बेल के सहारे वृक्ष पर चढ गया और सोते हुए हसों

पर जाल बिछा कर नीचे आकर सो गया, जब हस जाल मे फस गये तो उन्होंने एक दम कोलाहल किया, उनके कोलाहल सुनकर बूढा हस भागा हुआ आया और बोला रे मूर्खो! तुमने मेरा कहा नहीं माना आज उसबेल के अकूर के द्वारा तुम्हारी मौत आ पहुँची है। सबने मिलकर एक स्वर से बृद्ध हस से प्रार्थना करी कि हे पिताजी! जो कुछ होना था सो वह तो हो गया, अब आप हमारे बचानेका उपाय निकालिये, बालकों चेलकोंकी दया कर बृद्ध बोला पुत्रो तुम मरे हुए मृग की तरह स्वांस खींच कर पड़ जाओ प्रात काल होते ही शिकारी तुम्हारे पास आवेगा और तुमको मरा हुआ समझ कर ऊपर से जालउतार लेगा बस फिर तुम एक दम उड जाना बेटे पोतों ने बूढे बाबा का कहना मान लिया और वैसे ही दम खैंच कर पड़ गये सुबह के समय शिकारी आया और उनको मरा हुआ जानकर ऊपर से जाल उठा लिया उसका जाल समेट कर एक तरफ खड़ा होना था कि इतने में सब हस आकाश को उड़ गये और दूर जाकर एकान्त मे जाकर एक वृक्षपर बैठ गये बाबा साहब भी वहीं अपने परिवार के पासजा पहुँचा। सब ने मिलकर बाबा देव का स्वागत किया और सब आपसमे कहने लगे आज बाबा की शिक्षा मानी तो अपनी सब कीजान बच गई। हरएक सज्जन महपुरुष का कर्त्तव्य है बुद्धिमान समझदार की सद् शिक्षा को माने।

इस कथा को सुना कर यमदण्ड अपने घर गया और दूसरे दिन फिर कचैहरी मे आया राजा को नमस्कार कर सामने खड़ा हो गया। राजा कहने लगा कि क्या चोर मिला? तब कोतवाल बोला नहीं मिला। राजा बोला जबकि चोर तेरे को नहीं मिला तो फिर इतनी देर कहा लगाई? कोतवाल बोला श्री महाराज एक कुम्हार अपनी राम कहानी (आत्म कहानी) सुना रहा था मै भी उसको सुनने लग गया इस लिये आने मे देर हुई। राजा बोला तो वह कुम्हार वाली कथा मे भी सुना? यमदण्ड बोला अपनी इसी नगरी मे एक पाल्हल कुम्हार था, वह बर्तन भांडे बनाने मे बड़ा चतुर था, सदाने लकर बर्तन बना बना कर शहर मे बेचा करता था। एक

द्वारा उसके पास बहुत सा धन हो गया, उस धन से उसने हवेली वगैरह बना ली अपना विवाह करवा लिया और बालक बच्चे हो गये उनका विवाह कर दिया, साधु सन्त महात्माओ की सेवा मे खूब धन लगाया याचको (भिखारियों को) खूब दिल खोल कर दान दिया धन से क्या नहीं होता—

श्लोक—यस्यास्ति वित्तं स नरः, कुलीनः स पंडितः स श्रुत्वा न्गुणज्ञः । स एव वक्ता स च दर्शनीयः, सर्वे गुणा कांचन माश्रयन्ति ॥४६॥

भा०—जिसके पास धन हैं लोग उसको ही कुलीन पंडित सुनने वाला गुण वाला दर्शनीय (माननीय) होता, धनमें सब गुण आकर बसजाते हैं ।

श्लोक—माता निन्दति नाभि नन्दति पिता भ्राता न संभाषते, भृत्य कुप्यति नानु गच्छति सुत कान्ता च ना लिंगते । अर्थ प्रार्थन शङ्कया न कुरुते संभाषणं वै सुहृत, तस्माद् द्रव्य मुपार्जयस्व सुमते द्रव्यस्य सर्वे वशाः ॥५०॥

श्लोक—निर्द्रव्यं पुरुषं सदैव विकलं सर्वत्र मन्दादरं, तात भ्रातृ सुहृज्जनादि कुपितं दृष्ट्वा न सभाषितम् । भार्या रूप-वती कुरङ्ग नयना स्नेहेन नालिंगते, तस्माद् द्रव्व मुपार्ज-याशु सुमते द्रव्येण सर्वे वशा ॥५१॥

भा०— धन हीन पुरुष का चित सदैव विकल रहता है कहीं भी जाओ वही अनादर पाता है, माता पिता भाई बन्धू सीधे मुह बात भी नहीं करते उलटे उसे ताना सुनाते हैं, मृग नयनी स्त्री भी मीठे वचनों से नहीं बोलती उल्टे झिडके देती है सेवक सेवा नहीं करता, मित्र दूरसे ही मु ह फेर लेता है कि कहीं ये कुछ माग न बैठे-पास मे पैसा होतो सब आपसे आप खिचे चले आते हैं इस लिये कहा गया है कि सब धन के दास हैं

अर्थात् धनोपार्जन में लगे रहते हैं।

श्लोक—अहोनु कष्टं सततं प्रवास, ततोऽति कष्ट परगहे वासः। कष्टाधिका नीच जनस्य सेवा, ततोऽपि कष्टा धन हीनता च ॥५२॥

भा–देखो सब से दुखदाई देशाटन है, उससे भी अधिक दुखदाई दूसरे के घर में जाकर बसना, उससे भी अधिक कष्ट प्रद नीच जन की सेवा है और सब से अधिक दुखदाई निर्धनता है।

श्लोक—बुभुक्षितै व्याकरणं न भुज्यते, पिपासितै काव्य रसोन पीयते। न छंदसा कापि समुध्दतं कुलं, हिरण्य मेवाश्रय निष्फलागुणाः ५३॥

भा०–भूख में व्याकरण नहीं खाई जाती, प्यास लगने पर काव्य का रस नहीं पिया जाता, छन्द से कोई कुल का उद्धार नहीं होता, एक बिना धन के सब गुण निष्फल हैं। दान पुन्य के द्वारा पाल्हण कुम्हार ने खूब यशोपार्जन किया। धन के कारण वह अपनी जाति में सब से बड़ा गिना जाने लगा, एक दिन वह अपनी गधी को लेकर मिट्टी खोदने के लिये खदाने पर मिट्टी खोदने लगा खान का टुकड़ा टूट कर उसकी कमर पर आ पड़ा जिससे उसकी कमर टूट गई और वह वहा दब गया, उसके रोने की आवाज सुन कर राहगिरों (मुसाफिरों) ने मिलकर उसको जीवित निकाल लिया और उसको उसके घर पहुँचा दिया, दवा दारू करने के बाद जब उसका स्वास्थ ठीक हो गया तब बाजारमें आकर उसने आज यह आतम कहानी कह सुनाई और साथ मे यह भी कहा कि जिस खानके प्रतापमे मैने धन पैदा किया था याचकों को मुह मागा मा न दिया करता था उस खान मे ही मैने दुःख उठाया, जिसकी कृपा से मैं बढा था उसने ही मेरी कमर तोड़ दी, इसका मतलब यह है कि जिसका मैने शरण लिया उसने ही मेरे को भय प्राप्त हुआ, जो जिसकी शरण मे रहे उसका कर्तव्य है कि शरणागत की रक्षा करे। यह कथा कह कर यमदण्ड अपने घर को

गया और तीसरे दिन फिर दरबार में आया, हाथ जोड़ कर सामने खड़ा हो गया राजा बोला अरे मूर्ख आज तो चोर को ढूड कर लाया होगा, वह बोला श्री महाराज चोर नहीं मिला राजा बोला जब चोर नहीं मिला तब इतनी देर कहा लगाई, कोतवाल बोला कि मैं रास्ते मे एक कथा सुननेलग गया वहा देर हो गई। राजा बोला जो कथा तू सुन कर आया है वह मेरे को भी सुना दे। कोतवाल बोला सुनिये — पचाल देशमें एक 'वरशक्ति' नाम का नगर था वहा का राजा बड़ा प्रजा वत्सल था उसका नाम'सुधर्म' था वह जीवो का रक्षक और ईश्वर भक्त आस्तिकवादी था, उसकी राणी का नाम जिनमती था वह पति व्रता दया दान धर्म में अति दृढ थी। थी। राजा के मन्त्री का नाम 'जयदेव' था उसकी स्त्री का नाम 'विजया' था ये दोनों पति पत्नि बड़े पापी थे उनकी धर्म कर्म में कुछ भी श्रद्धा न थी। वह नास्तिक मत का मानने वाला था, उन नास्तिक मत्तियों का कहना था कि—

श्लोक —यावज्जीवं सुखं जीवे—दृणं कृत्वा घृतं पिवेत्।
भस्मी भूतस्य देहस्य, पुनरा गमनं कुतः ॥५४॥

भा० —यह शरीर जल बल कर राख की ढेरी हो जायगा फिर कुछ आना है न कुछ जाना है, अपने आराम के लिये जब तक जीवे तब तक खूब ऋण (करजा ले कर) घी बूरा खावे और शरीर को पुष्ट बनावे।

श्लोक —पंच भूत्तामक वस्तु, प्रत्यक्षं च प्रमाणकम्।
नास्तिकानां मते न्यान्य—दात्माऽमुत्र शुभाशु भम्॥५५

भा० —यह पञ्च भौतिक आत्मा यहीं सुख दुःख भोग लेती हैं और आगे कुछ भी नहीं, शरीर के साथ जीव का भी नास हो जाता है।

श्लोक —न स्वर्गो वाऽपवर्गो, नैवात्मा पार लोकिकः।
नैवा वर्णाश्रमादीनॉ, क्रिया च फल दायिका ॥५६

अर्थात् धनोपार्जन में लगे रहते हैं।

श्लोक—अहोनु कष्टं सततं प्रवास, ततोऽति कष्टः परगहे वासः। कष्टाधिका नीच जनस्य सेवा, ततोऽपि कष्टा धन हीनता च ॥५२॥

भा–देखो सब से दुखदाई देशाटन है, उससे भी अधिक दुखदाई दूसरे के घर में जाकर बसना, उससे भी अधिक कष्ट प्रद नीच जन की सेवा है और सब से अधिक दुखदाई निर्धनता है।

श्लोक—बुभुक्षितैः व्याकरणं न भुज्यते, पिपासितैः काव्य रसोन पीयते। न छंदसा कापि समुद्धतं कुलं, हिरण्य मेवाश्रय निष्फलागुणाः ५३॥

भा०–भूख में व्याकरण नहीं खाई जाती, प्यास लगने पर काव्य का रस नहीं पिया जाता, छन्द से कोई कुल का उद्धार नहीं होता, एक बिना धन के सब गुण निष्फल हैं। दान पुन्य के द्वारा पाल्हण कुम्हार ने खूब यशोपार्जन किया। धन के कारण वह अपनी जाति में सब से बड़ा गिना जाने लगा, एक दिन वह अपनी गधी को लेकर मिट्टी खोदने के लिये खदाने पर मिट्टी खोदने लगा खान का टुकड़ा टूट कर उसकी कमर पर आ पड़ा जिससे उसकी कमर टूट गई और वह वहा दब गया, उसके रोने की आवाज़ सुन कर राहगिरों (मुसाफ़िरों) ने मिलकर उसको जीवित निकाल लिया और उसको उसके घर पहुँचा दिया, दवा दारू करने के बाद जब उसका स्वास्थ ठीक हो गया तब बाजारमे आकर उसने आज यह आत्म कहानी कह सुनाई और साथ मे यह भी कहा कि जिस खानके प्रतापमे मैने धन पैदा किया था याचकों को मुह मागा मान दिया करता था उस खान ने ही मने दुःख उठाया, जिसकी कृपा से मैं बढा था उसने ही मेरी कमर तोड़ दी, इसका मतलब यह है कि जिसका मैंने शरण लिया उससे ही मेरे को भय प्राप्त हुआ, जो जिसकी शरण मे रहे उसका कर्तव्य है कि शरणागत की रक्षा करे। यह कथा कह कर यमदण्ड अपने घर को

गया और तीसरे दिन फिर दरबार में आया, हाथ जोड़ कर सामने खड़ा हो गया राजा बोला अरे मूर्ख आज तो चोर को ढूंड कर लाया होगा, वह बोला श्री महाराज चोर नहीं मिला राजा बोला जब चोर नहीं मिला तब इतनी देर कहा लगाई, कोतवाल बोला कि मैं रास्ते मे एक कथा सुननेलग गया वहा देर हो गई। राजा बोला जो कथा तू सुन कर आया है वह मेरे को भी सुना दे। कोतवाल बोला सुनिये — पंचाल देशमें एक 'वरशक्ति' नाम का नगर था वहा का राजा बड़ा प्रजा वत्सल था उसका नाम 'सुधर्म' था वह जीवो का रक्षक और ईश्वर भक्त आस्तिकवादी था, उसकी राणी का नाम जिनमती था वह पति व्रता दया दान धर्म में अति दृढ थी। थी। राजा के मन्त्री का नाम 'जयदेव' था उसकी स्त्री का नाम 'विजया' था ये दोनों पति पत्नि बड़े पापी थे उनकी धर्म कर्म में कुछ भी श्रद्धा न थी। वह नास्तिक मत का मानने वाला था, उन नास्तिक मत्तियों का कहना था कि—

श्लोक —यावजीवं सुखं जीवे—दृणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मी भूतस्य देहस्य, पुनरा गमनं कुतः ॥५४॥

भा० —यह शरीर जल बल कर राख की ढेरी हो जायगा फिर कुछ आना है न कुछ जाना है, अपने आराम के लिये जब तक जीवे तब तक खूब ऋण (करजा ले कर) घी बूरा खावे और शरीर को पुष्ट बनावे।

श्लोक —पंच भूत्तात्मक वस्तु, प्रत्यक्षं च प्रमाणकम्।
नास्तिकानां मते न्यान्य—दात्माऽमुत्र शुभाशु भम्॥५५

भा० —यह पञ्च भौतिक आत्मा यहीं सुख दुःख भोग लेनी है और आगे कुछ भी नहीं, शरीर के साथ जीव का भी नास हो जाता है।

श्लोक —न स्वर्गो वाऽपवर्गो, नैवात्मा पार लौकिकः।
नैवा वर्णाश्रमादीनां, क्रिया च फल दायिका ॥५६

भा० —न कोई स्वर्ग-और मोक्ष और न कोई जीव है न वर्णाश्रम है न कोई परलोक में शुभाशुभ क्रिया का फल है।

श्लोक —अशक्तस्तु भवेत् साधु, ब्रह्मचारी च निर्धनः।
व्याधितो देव भक्तश्च, वृद्धा नारी पति व्रता ॥५६॥

भा० —शक्ति हीन ही साधु हुआ करते हैं और निर्धन ब्रह्मचर्य का पालन किया करतेहैं रोगी ही भगवान की भक्ति किया करते हैं, वृद्धास्त्री ही पति-व्रत धर्म का पालन करती हैं। एक दिन 'सुधर्मा' राज सभा में बैठा हुआ था कि एक गुप्तचर ने आ कर सूचना दी कि श्रीमहाराज आपके शत्रु 'महा बल' ने आपकी सारी प्रजा को कष्ट में डाल रखी हैं आप शीघ्र ही उस दुष्ट से अपनी प्रजा को बचावें। इतनी सुनते ही राजा बोला कि मैं अभी चलता हूँ और उस दुष्ट को देखता हू कि वह कैसा है,राजा का कर्तव्य है कि —

श्लोक—दुष्टस्य दंडः स्वजनस्य पूजा, न्यायेन कोषस्यहि बर्द्धनचं। अपक्षपातो निज राष्ट्र रक्षा, पँचैव धर्माः कथिता नृपाणाम् ॥५७॥

भा० —दुष्टों को दड देना, सजनो की सेवा करना, न्याय से भडा भरना, पक्षपात रहित होना अपनी प्रजा की रक्षा का हर समयध्यान रखना ये राजा के मुख्य धर्म हैं।

सुधर्मा राजा फौज को साथ ले महाबल पर चढाई कर दी और संग्राम हुआ अन्त मे सुधर्म की जय हुई महाबल को बाँध कैदी बना साथ मे ले अपनी नगरी को आगे और बाग में डेरा डाल दिया, दूसरे दिन प्रजा के साथ राजा ने नगरी में प्रवेश किया तो दरवाजा एकदम टूट के गिर पडा राजा ने यह अपशकुन हुआ समझा और वापिस ही बाग मे आकर ठहर गया और नया दरवाजा बनवाया तो वह भी प्रवेश के समय गिर पडा

राजा वापिस बाग मे चला गया, फिर दरवाजा बनवाया तीसरे प्रवेशकरने के लिये आया तो तीसरे फिर दरवाजा गिर गया राजाने अपने दिल में बहुत दुख माना और दरवाजा के विषय मे मत्री से कहा कि अब क्या करना चाहिये। वह पापात्मा नास्तिक मति बोला—श्रीमहाराज यदि आप अपने हाथ से मनुष्य को मारकर उसके खून से इस दरवाजे को सींचन करो तो ये स्थिर रह सकता है, ऐसा अपने कुल के पुरातन पुरुषों से सुनता आ रहा हूँ। राजा बोला—रे मत्री यदि मनुष्य के मारने से ही यह दरवाजास्थिर रहता हो तो मुझे ऐसी नगरी की आवश्यकता नहीं, जहा मैं हूँ वही मेरी नगरी है, वह सोना किस काम का है जो कानों को तोड़े।

अहिंसा—दया—विचार

श्लोक—अमेध मध्येकीटस्य, सुरेन्द्रस्य सुरालये।
समाना जीविता कांक्षा, समंमृत्यु भयं द्वयोः ॥५८॥

भा०—गंदगी मे पैदा हुआ कीडा और स्वर्ग मे पैदा हुआ इन्द्र ये सब जीना चाहते हैं और मरने से सब डरते हैं, हर एक प्राणी जीवनऔर सुख चाहता है, इसलिये प्रत्येक प्राणी को चाहिये कि जीवों की रक्षा करे (अहिंसा व्रत का पालन करे)

श्लोक—अहिंसा परमो धर्मस्तथाऽहिंसा परोदमः।
अहिंसा परमंदान—तहिंसा परमं तपः ॥५९॥

श्लोक—अहिंसा परमो यज्ञः—स्तथाऽहिंसा परमं फलम्।
अहिंसा परमं मित्रं—महिंसा परमं सुखम् ॥६०॥

भा०—अहिंसा ही परम धर्म है' अहिंसा ही परम दम, परम दान, श्रेष्ठ तप, श्रेष्ठ यज्ञ उत्तम फल, हितइच्छुक, मित्र, महा सुख दाता, मनो वाञ्छित फल के देने वाली है तो एक अहिंसा ही है।

श्लोक–सर्वे, यज्ञेषु यद्दानं, सर्वं तीर्थेषु यत्फलम् ।
सर्व दान फलं वाऽपि, तन्न तुल्य महिंसया ॥६१॥

भा०–सर्व यज्ञों में जो दान दिया जाता है उसका फल तीर्थाटन से जो फल मिलता है दानों का जो फल प्राप्त होता है। वह एक जीव रक्षा के बराबर भी नहि होता है।

श्लोक–लक्ष्मीः पाणि तले तस्य, स्वर्गस्तस्य गृहांगणे ।
कुरुते यो जनः सर्वः, जीव रक्षां सदाऽऽदरात् ॥६२॥

भा०–जो जीव रक्षक है समझो कि उसके हाथ में लक्ष्मी का वासा है, और समझो कि स्वर्ग उसके आंगन (चौक) में ही है।

श्लोक–लावण्य रहितं रुपं, विद्यया वर्जितं वपुः ।
जलत्यक्तम् सरोभाति, तथा धर्मो दयां विना ॥६३।

भा०–जैसे चतुराई रहित रूप, विद्यारहित शरीर, जल बिनाशरोवर की शोभा नहीं हती ठीक इस ही प्रकार दया के बिना धर्म व्यर्थ है। जयदेव मन्त्री बोला–श्री महाराज पुन्य पाप का फल किसने देखा है यह पाँच तत्व का पुतला पाच तत्व मे मिल जाता है, आमे न कुछ आना है और न जानाहै

गाथा–न मे दिट्ठे परे लोए, चक्खु दिट्ठा इमाराई ।
को जाणइ परे लोए, अत्थिवा नत्थि वा पुणो ॥६४॥

भा०–मैंने परलोक नहीं देखा जो नेत्रों से देख रहा हूँ बस यही है और कुछ नहीं है, इस बात को कौन जानता है कि परलोक है या नहीं, यह तो अपना मतव्य जाहिर कर ही रहा था कि इतने में मन्त्री के बहकाये हुये पंच लोग भी राजा के पास आये और प्रार्थनाकरने लगे कि श्रीमहाराज आप अपने हाथ से कुछ न करना, हम लोग ही सब कुछ करलेंगे, जिसका पुन्य पाप आपको कुछ भी नहीं लगेगा। राजा बोला भोले भाईयो भला यह कैसे हो सकता है प्रजा के पुन्य पाप का छटा अंश (हिस्सा)

राजा को अवश्य भोगना पडता हैं।

यथैव पुन्यस्य सुकर्मा भाजां, षडांश भागी नृपतिः सुव्रचः।
तथैव पापस्य सुकर्म भाजां, षडांश भागी नृपतिः सुव्रत ॥६५॥

भा०—जैसे सदाचारी राजा पुन्यात्मा जीवोंके पुन्य मे छटे अश का भागी है ठीक उसही प्रकार पापियों के पाप मे भी छटे हिस्से का भागी होता है। प्रजाके पुन्य और पाप इन दोनों मे राजा का हिस्सा है। राजा के कथन को सुन कर मन्त्री और नीच लोगों ने मिल कर फिर कहा—स्वामी नाथ हमारे पुन्य के हिस्सेदार तो आप रहिये और पाप के भागी हम ही बने रहेंगे, आप किसी प्रकार की चिन्ता न करे, हम धन देकर किसी का बालक खरीद लेंगे, जब माता पिता अपने पुत्र को बेचदे तब कहिये आपको पाप कैसे लगेगा, इत्यादि वचनों द्वारा राजा का मन धर्म से हटा दिया, नीच की सगति क्या नहीं करती।

श्लोक—असतां सँग दोषेण, साधुवोयान्ति विक्रियाम्।
दुर्योधन प्रसँगेन, भीष्मो गो हरणेगत· ॥६६॥

भा०—नीचों की संगति से श्रेष्ठ जनों का मन भी विकार भाव को प्राप्त हो जाता है जैसे दुर्योधन की कृपा से गो सेवक भीष्म जी भी गो हरण के लिये तैयार हो चले गये थे राजा ने कहा भाइयो जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो। मत्री ने सुवर्ण (सोने) का पुरुष बनवाया और उसको वस्त्राभूषण पहना कर गाड़ी मे बैठा कर शहर में फिरवाया और डुंडी पिटवाई और कहा जो अपना पुत्र बली के लिये (मारने के लिये) देवे, पिता तलवार से मस्तक काटे माता जहर पिलावे उस को यह सोने का पुरुष दिया जावेगा और साथ में एक क्रोड मोहरें भी दी जावेंगी। /

सी "वरशक्ति" नगरी मे एक "वरदत्तनाम" का महा दरिद्री ब्राह्मण र

है ही तो क्यों न मैं अब अपना चित्त प्रभु भक्ति में गाऊं। यह विचार कर वह भगवान का ध्यान लगा हंस मुख हो राजा के सामने जा उपस्थित हुआ [इन्द्रदत्त] को प्रसन्नचित एवं हंसते हुए को देखकर राजा कहने लगा भाई तू हंसता क्यों है, क्या तेरे को मरने का डर नहीं लगता। इन्द्रदत्त बोला महाराज सुनिये—

श्लोक—तावद्भयेषु भेतव्य, यावद्भय मनागतम्।
आगतं तु भयं दृष्ट्वा, प्रहर्तव्य मशंकया ॥७०॥

भा०—भय से तब तक ही डरना चाहिये जब तक कि भय पास न हीं आया हो भय पास आने पर तो उसके सामने छाती ठोक कर खड़े हो जानाही उचित है, दूसरे श्री महाराज मृत्यु तो आ कर ही रहेगी यह जा कहीं भी चले जाओ छोड़ेगी ही नहीं, फिर क्यों न मैं हर्ष पूर्वक बलि वेदी पर चढ जाऊ, यदि मैं रोने भी लगू तो मेरे रोने धोने की आवाज को सुन कर भला किस दयालु को दया आवेगी। जब बालक पिता से दुखित होता है तब वह माता की शरण में चला जाता है, और जब माता से ताडित होता है तो पिता के पास जाता है, जब माता पिता ही बालक को मृत्यु के घाट पार उतारना चाहते हों तो बालक राजा की शरण ग्रहण करता है, यदि राजा घात करना चाहे तो नगर गाम के पंचों की शरण लेवे भला जहां माता बालक को जहर पिलावे, पिता तलवार से गरदन उतारे, राजा मंत्री और पंच लोग धन देकर खरीद लेवें फिर मनलाते वह बालक किस की शरण लेवे जिस से उस का दु:ख से छुटकारा होवे।

सवैया—तात जो दुःख देवे निज पुत्र को, तो सुत मात पे जाय पुकारे। मात जो नाहीं संभार करे सुत की, तब तात

को आय संभारे। मात रु तात रुसे नर के जब, आय के नर पति शरण विचारे। मञ्जु कहे गति कौन हुवे जब, भूपति अपने हाथ से मारे ॥७१॥

श्लोक—माता पिता अर्थ का लोभी, राजा लोभी प्रतोलीका देवता बली का लोभी 'कस्य शरणं गतं व्रजे ॥ ७२ ॥

भा० मेरे माता पिता तो धन के लोभी हो रहे हैं और श्री महाराज आप को अपने दरवाजे का लोभ लगा हुआ है, नगर रक्षक देवता मेरी बली लेने के लिये तत्पर हो रहा है ' कृपा कर बतलाइये कि अब मैं किसकी शरण मे जाऊं, यहां मेरे को किसीका शरना दृष्टिगत नहीं हुआ इसलिये प्रसन्न वदन हो मैंने धर्म का शरण लिया है धर्म मे ही आत्म कल्याण होता है।

श्लोक — धर्मो मात' पिता चैव , धर्मो बन्धुः सुहृत्तथा।
धर्मःस्वर्गस्य सोपानं , धर्मात् मोक्ष माप्नुयात् ॥ ७३ ॥

भा०—धर्म ही माता पिता भाई बन्धु और मित्र है धर्म स्वर्ग की निशरनी (पैड़ी) है और धर्म से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

अन्नेन गात्रं नयनेन वक्त्रं, नयेन राज्यं लवणेन भोज्यं।
धर्मेण हीनं बत,जीवतव्य , न राजते चन्द्र मसा निशीथ

भा० —जैसे अन्न के बिना शरीर की नेत्र के बिना मुख की ' न्याय के बिना राज्य की, नमक के बिना भोजन की,चन्द्रमा के बिना रात्री की कोई शोभा नहीं होती ठीक उसही प्रकार धर्म के बिना मनुष्य की कोई शोभा नही अर्थात् धर्म के बिना मनुष्य जीवन ही व्यर्थ है।

श्लोक— चला लक्ष्मी श्चला प्राण- श्चले जीवित मंदिरे

बच्चो सहित पकड़ी गई और दरबार में लाई गई तब नगरवासी उस हिरणी और उसके बच्चों की दयनीय दशा देख कर आपस में कहने लगे कि ये जंगल में स्वतंत्र विचरने वाली इन के पजे में कैसे फंस गई तब एक पठित विद्वान बोला जब कि वन में एक तर्फ तो आग लगा दी जावे दूसरी तर्फ जहर का पानी भरवा दिया जावे और तीसरी तर्फ जाल बिछवा कर चौथी तर्फ शिकारी धनुष बाण लेकर खडे हो जावें तो फिर तृण आहारी जगली जीवों की जीवने की क्या आशा की जा सकती है और उस में भी फिर राजा स्वय शिकारी बन कर अनाथ असहाय जीवो का भक्षक बन जावे तब बतलाईये रक्षा कौन करेगा अर्थात् उस को तो मृत्यु के मुख में जाना ही पड़ेगा। यह कथा कह कर कोतवाल अपने घर को गया अब पाचवें दिन यमदंड कचहरी में आया और राजा को नमस्कार कर अपने स्थान बेठ गया राजा नेपूछा कि चोर मिला है या नहीं तब कोतवाल ने वही बनावटी उत्तर दिया कि श्री महाराज मैंने चोर को खूब तलाश किया किन्तु मेरे को नगरी में कहीं भी ढू ढा नहीं मिला राजा बोला तो इतनी देर कहा लगादी ? कोतवाल बोला —श्री महाराज मे एक कथा सुनने लग गयाइस लिये देर हो गई राजा बोलाकि वह कथा मेरे को भी सुना ? तब कोतवाल बोला — नेपाल देश में एक पाडलपुर नाम का नगर था वहा का राजा वसुपाल था उसकी रानी का नाम वसु-मती था। राजा को कविता करने का बड़ा शोक था और वह था भी कविता करने में बड़ा चतुर। वसुपाल राजा के मन्त्रीका नाम भारतीभूषण था,। उसकी स्त्री का नाम देविका था मन्त्री भी राजा की तरह कविता का

[illegible] । एक दिन राजा ने

[illegible] मेरे

सम्पर्क (सग) से अपवित्र (नीच) भी पवित्र (ऊन्च) हो जाते हैं, तुम प्राणियों के जीवन प्राण हो, यदि तुम अपने प्रण (मर्यादा-गुण) को छोड नीच पथ का अवलम्बन करो तो भला तुम को रोकने वाला भी कौन हैं। ऐसे ही सर्व गुण सम्पन्न प्रजा वत्सल राजा की छत्रछाया मे कोई आ कर रहने लग जावे यदि वही राजा जान का दुश्मन बन जावे तो बतलाइये फिर किस का शरण लिया जावे जिस से सुख की प्राप्ती होवे। इधर राजा वसुपाल भी मन्त्री की बातों को छुप कर सुन रहा था। मन्त्री की बातों को सुन कर राजा का हृदय पसीज गया और क्रोध जाता रहा मन में विचारने लगा कि मैं ने यह अच्छा नहीं किया जो निज आश्रित मन्त्री को गगा की धार में फिकवा दिया, जो सज्जनों के सहारे आ कर बसते (रहते) हैं उन को चाहिये कि उनके गुण दोषों पर कुछ विचार न कर उनकी पालना (रक्षा) का ध्यान हर समय रक्खे चन्द्रमा का स्वभाव घटने और बढने का है और जो स्वभाव से ही बाका टेढा भी है अपने प्रिय मित्र सूर्य के अस्त पर आप उदय हो आता है चन्द्रमा के इतने दुषण जानते हुए भी महादेवजी उस को अपने मस्तक पर बैठाये रखते हैं। पानी कितना ही शीतल (ठण्डा) होता है यदि उस ठण्डे पानी को अग्नि के ऊपर रख दिया जावे तो वह इतना गर्म होजाता है कि एक बार तो सर्वा ग को भी जला देता है और शरीर में फफोले ही फफोले डाल देता है, यदि अग्नि से पानी को अलग रख दिया जावेतो वही जल शीतल(ठण्डा)हो कर अनेक रोग हरता हो जाता है ठीक इस ही प्रकार मैं भी क्रोध द्वेष रूपी अग्नि मे प्रज्वलत हो गया अब वह मेरी द्वेपाग्नि शान्ति हो गई है तो क्यों न अब मैं मत्री का सन्मान करू यह विचार कर राजा ने मंत्री को गगा में से निकलवा कर बड़ी इज्जत के साथ मन्त्री पद पर स्थापन कर आनन्द से रहने लगा।

तन्मध्ये भूत संचारो, यद्वा तद्वा भविष्यति ॥ ८२ ॥

भा०—एक तो बन्दर स्वभाव से ही चचल (उजाड़ बिगाड़) होता है फिर यदि वह पीले मद्य (शराब) तो कहना ही क्या है, उस पर भी यदि उस के बिछु डक मारदे और उस में बड़जावे भूत, बस फिर उस की लीला का क्या ठिकाना है, फिर तो वह जो कुछ लीला न करले वही थोड़ी है। बागवान ने बन्दरों का बहुत ही खेदना चाहा लेकिन वह उस के बस मे नहीं आये, अब बागवान हताश हो भागा हुआ राजा के पास गया और बानरों के उधम का सारा किस्सा कह सुनाया और प्रार्थना करी कि आप बाग की रक्षा के लिये सिपाही भेजिये, राजा बोला आदमी जा कर क्या करेंगे मेरे घर के और शहर के बन्दरों को भेजता हूं तुम मेरे घर वाले और शहर वाले बन्दरों को ले जाओ बस वे ही सब प्रकार से रक्षा करलेंगे, अब राजा ने बाग की रखवाली के लिये बन्दर भेज दिये, बागवान ने विचारा कि भला कही बन्दर भी बाग की रक्षा कर सकते है, वहतो बाग को उजाड़ा हीकरते हैं।

दोहा—बाग उजाड़े बानरा, चुगल उजाड़े गाम।
कु बुद्धि उजाड़े देश को,जाय कपूतसे नाम ॥ ८६ ॥

मालूम होता है कि राजा बुद्धि हीन है ' यदि राजा मे थोड़ा भी विवेक (अकल–बुद्धि) होती तो कभी भी बाग रक्षा के लिये बानर न भेजता जिस के विवेक रूपी नेत्र नहीं यदि वहअन्याय रूपी अन्धकार मे चले कुमार्ग में प्रवृत्तिकरेतो उस मे उसका अपराध भी क्या है, राजा के दो नेत्र होते हैं एक तो विवेक दूसरे ज्ञानी पुरुषों की सगति, हमारे राजा के इन दोनों नेत्रो में से एक भी नेत्र नहीं है। जगल के और राजा के और गाम के बानरो ने उस राजा के लक्खी बाग को उजाड़ दिया जिससे

जीत लिया।

श्लोक-प्राणी घातक वीरश्च, बहवः शान्ति भूतले।
कन्दर्प; घात को वीरः, क्वचित्तष्ठति वा न वा ॥८४॥

भा०-इस पृथवी पर प्राणियों के प्राण हरण करने वाले बहुत से शूर वीर है किन्तु इस दुष्ट कामदेव को जीतने वाले शूरवीर धर्मात्मा तो कही मिले भी और नहीभी मिलें

श्लोक—व्याकीरण केसर कराल मुखा मृगेन्द्रा, नागाश्च भूरि मद राजि विराजमानाः। मेधा विनश्च-पुरुषाः समरेषु शूराः, स्त्री सन्निधौ परम का पुरुषा भवन्ति ॥८५॥

भा०-केशरा युक्त विकराल मुखवाले सिंह को और मद मस्त हाथी को जीतने वाले और युद्ध मे एक नही हजारों लाखों क्रोडों मनुष्यो को जीतनेवाले बहुत हैं किन्तु वही शूर वीर स्त्रियों के (कामदेव के) सामने कायर हो जाते हैं।

श्लोक—उपवासोऽ व मौदर्यं, रसानॉ त्यजनं तथा।
स्नान स्या सेवनं चैव,ताम्बुलस्य च वर्जनम् ॥ ८६ ॥
असे वेच्छा निरोधस्तु, ज्ञानस्य स्मरणं तथा।
एते हि निर्जरो पायाः,मदनस्य महा रिपोः ॥ ८७ ॥

भा०—इस कामदेव के जीतने के उपाय ज्ञानी पुरुषो ने यम बतलाये हैं यथा —उपवास करना भूख से कम खाना, पट रस छोड़ देना स्नान न करना, काम सेवन न करना, काम इच्छा को रोकना, काम भावों क स्मरण न करना ज्ञान में रमन करना विधवा स्त्री को चाहिये कि वह अपने विधवापन के धर्म को विचार के ब्रह्मचर्य महाव्रत का पालन करे

सवैया—अंजन मंजन लेपन ताम्बुल, वस्त्र छटा तिलकादि निवारे। माने अगारसिंगार सभी, तन शीलशिंगार सदा उर धारे। काम कथा न करे वली कौतुक, भोजन सरस निरन्त टारे। दुर्जन संग तजे कृष्ण सती वधना के ये धर्म विचारे ॥ ८८ ॥

रहा है आंख लाल हो रही हैं आंखों की भ्रुयें तणी हुई हैं दान्त पीस रहा है और होटों को डस रहा है कहांतक कहा जावे एकबार यदि कायर देख लेवे तो उसके प्राण निकल जावे पन्च महाजनों ने विचार किया कि अब राजा अपने आपे मे नही है यह क्रोध के बस में हो न्यायानीति को भूल बैठा है

श्लोक—उत्तमेतु क्षणं कोपो मध्यमे घटिका द्वयम्
अधमे स्यादहो रात्रं, चॉडालेमरणान्तिकः ॥६१

भा०—उत्तम पुरुषों का क्रोध क्षणमात्र के लिये मध्यमों का दो घड़ी के लिये अधम का एक रात दिन के लिये और चांडाल (नीच) का क्रोध जीवन पर्यन्त रहता है दूसरेके प्राण लेने को हर समय उद्यत (तैयार रहता है। शहर के पन्च महाजन आदि प्रणामकरके खड़े हो गये राजा पंचों से बोला – देखो मैंने तुम्हारे कहने से इस पाजी यमदण्ड को सात दिन की छुटी दी थी अब मेरे को दोष न देना। यह मेरे को सात दिन से धोखाही धोखा दे रहा है न तो यह अब तक चोर को ही लाया है और न मेरे खजाने का माल ही हाजिर किया। अब मैं इस नंगी तलवार से इस पाजी के टुकड़ेसे दिशाओ की बली दूंगा, यदि ये अब भी चोर को और माल को हाजिर करदे तो मैं अब भी इस को छोड़ सकता हूँ। पंच व प्रजा जन कहने लगे कि यमदंडजी तुम राजाकी बातका उत्तर क्यों नही देते ? सोच समझ कर जल्दी ही राजा को उत्तर दो। पन्चो के कहने से निडर हो यमदण्ड बोला– भाई पंचों जब राजा मन्त्री प्रोहित स्वयं ही चोर हों और खजाने में जाकर चोरी करें तो बतलाओ मैं शहर में चोर को कहा से ढूंढ कर लाऊं। यमदण्ड की बात सुनकर राजा बोला–अरे मूर्ख क्या हम ही

अब राजा मन्त्री और प्रोहित अपने पापों का पश्चाताप करते हुये शहर से बाहर जा रहे थे कि उनको देखकर लोग बाग बोले कि विनाश के समय बुद्धि नष्ट हो ही जाया करती है। रास्ते में राजा जी मन्त्री और प्रोहित मे बोला—मैं तो यह चाहता था कि यमदण्ड को मारकर सुख से राज्य करूंगा। किन्तु यहा तो सारा ही काम उल्टा हो गया। उसका पुण्य तेज था इसलिये उसकी जीत हो गई, पुण्य मे दुश्मन भी दब जता है। जैसा हमने पाप कर्म किया [यमदण्ड को मारना चाहा] था वह पाप अब हमारे उदय हो आया है-

श्लोक—ग्राहा रोगा .वषा सर्पः, डाकिन्यो राक्षसा स्तथा।
पाडयः त नरं पश .त्, प डितं पूर्व कर्मणा ॥ ९२ ॥

भा० मनुष्य को ग्रह रोग विष सर्प डाकिनी शाकिनी राक्षस आदि तीं पीड़ा पीछे देते हैं पहिले तो पाप कर्म ही दुःख देते हैं।

श्लोक—यादृशं क्रियते कर्मः, तादृशं भुज्यतेफलम्।
यादृशम्रुप्यते ब.जं, तादृश प्राप्यते फलम् ॥ ९३ ॥

भा० जो जैसा, कर्म करेगा वैसा फल पायगा, जो जैसा बीज बोवेगा सको वैसा ही फल प्राप्त होगा।

श्लोक—रंकं करोति राज नं, राजानं रंकमेवच।
धनिनं निर्धनं चैव, निर्धनं धनिनंविधि ॥ ९४ ॥

किये हुए कर्म राजा को रक और रक को राजा बना देते है नवान को निर्धन और निर्धन को धनवान बना देते है। कर्मों की बडी चित्र माया है राजा मन्त्री प्रोहित रोते पीटते चले गये। यह कथा भिन्न मन्त्री ने (पद्मोदय राजा को सुनाइ और साथ में यह भी बतला

चोर हैं यमदण्ड ने उसी समय पंचों के सामने राजा की खडाऊं मन्त्री की अंगूठी प्रोहित की जनेऊ रखदी और बोला–कि यह तीनों ही चोर हैं इन तीनों ने ही मिलकर खजाने मे चोरी करी है। जब मालिक ही चोरी करने लग जावे तो नगर वासियों को चाहिये कि ऐसे पापी राजाकी बस्ती को छोडकर कहीं जङ्गल में जाकर बस जायें। इसमें ही भला है जब रक्षक ही भक्षक बन जावे तो बतलाओ फिर किसकी शरण मे जाकर रहें इसलिये पच भाइयो तुम मेरा कहा मानो और अधर्मी राजा को छोड़दो यदि इस पापी राजा को न छोड़ोगे तो आप लोग भी पाप के भागी बनोगे। शत्रु से मिले हुये मित्र को, व्यभिचारिणी स्त्री को, कुल नष्ट करने वाले पुत्र को, मूर्ख मन्त्री को न्याय नीति रहित राजा को, आलसी [प्रमादि] वैद्य को, सरागी देव को, दया रहित धर्म को जो मोह ममता के वश होकर नहीं छोड़ता है उसका कभी कल्याण [भला] नहीं होता। यमदण्ड की बात को सुनकर राजा मन्त्री और प्रोहित के होश हवाश उड़ गये। पच लोगों ने तथा समस्त सभा के लोगों ने खडाऊ अंगूठी जनेऊ, से जान लिया कि बस ये तीनों ही चोर हैं। यह राजा यमदण्ड को मारना चाहता है और यमदण्ड का इसमें कुछ भी अपराध नही है। आज तो यह इस पर दोषारोपण करके मारना चाहता है और फिर धीरे२ यह हम सबों को मार देगा। इसलिये प्रजा को ऐसे अन्यायी राजा की आवश्यकता नहीं जो स्वार्थ वश हो अन्याय करने लग जावे वह राज ह न्या है। इसलिये राजा को गद्दी से उतार देना ही उचित है, प्रजा पंची जनों ने आपस मे सङ्गठन बल बढाकर राजा को गद्दीसे उतार दिया और गद्दी खाली करवाली, राजा मन्त्री प्रोहित को धक्का देकर शहर से बाहर निकाल दिये। राजगद्दी पर राजपुत्र 'गुणपाल' को बैठाया, मन्त्री–पुत्र 'धनपाल' को मन्त्री बनाया और प्रोहित पुत्र 'सुशर्मा' को प्रोहित बनाया

अब राजा मन्त्री और प्रोहित अपने पापों का पश्चाताप करते हुये शहर से बाहर ना रहे थे कि उनको देखकर लोग बाग बोले कि विनाश के समय बुद्धि नष्ट हो ही जाया करती है। रास्ते में राजा जी मन्त्री और प्रोहित मे बोला—मैं तो यह चाहता था कि यमदण्ड को मारकर सुख से राज्य करूगा। किन्तु यहा तो सारा ही काम उल्टा हो गया। उसका पुण्य तेज था इसलिये उसकी जीत हो गई, पुण्य मे दुश्मन भी दब जता है। जैसा हमने पाप कर्म किया [यमदण्ड को मारना चाहा] था वह पाप अब हमारे उदय हो आया है-

श्लोक—ग्राहा रोगा .वपा सर्पः, डाकिन्यो राक्षसा स्तथा।
पाडया त नरं पश .त्, प डितं पूर्व कर्मणा ॥ ९२ ॥

भा०मनुष्य को ग्रह रोग विष सर्प डाकिनी शाकिनी राक्षस आदि तीं पीड़ा पीछे देते हैं पहिले तो पाप कर्म ही दुःख देते हैं।

श्लोक—यादृशं क्रियते कर्मः, तादृशं भुज्यतेफलम्।
यादृशमुप्यते ब.जं, तादृश प्राप्यते फलम् ॥ ९३ ॥

भा० जो जैसा, कर्म करेगा वैसा फल पायगा, जो जैसा बीज बोवेगा सको वैसा ही फल प्राप्त होगा।

श्लोक—रंकं करोति राज नं,राजानं रंकमैवच।
धनिनं निर्धनं चैव,निर्धनं धनिनंविधि ॥ ९४ ॥

किये हुए कर्म राजा को रक और रक को राजा बना देते है नवान को निर्धन और निर्धन को धनवान बना देते है। कर्मों की बडी चित्र माया है राजा मन्त्री प्रोहित रोते पीटते चले गये। यह कथा भिन्न मन्त्री ने (पद्मोदय राजा को सुनाइ और साथ में यह भी बतला

-या कि जो धर्मात्मा संघ से द्वेष करता है वह अपमान का भाजन बनता है जैसे सुयोधन राजा ने धर्मात्मा यमदंड को दंड देना चाहा उसका फल यह हुआ कि वह बडपन (राज्य गद्दी) से हाथ धो बैठा ऐसे ही यदि आप भी अति बात खीचोगे तो सुयोधन की तरह दुःख पावोगे। सभिन्न मंत्री की बात कों सुनकर राजा का हृदय काप उठा और मन म विचारने लगा कि मंत्री जी ने मेरे को बचा लिया। राजा ने सभिन्न मन्त्री का बडा आदर सत्कार किया और कुछ दिन ससार में रह संसार से विरक्त हो (उदितोदय) कुवर को राज्य दे जिनचन्द्र गुरु के पास जा दीक्षा धारण करी इधर मत्री ने भी (सुबुद्धि) कुवर कों मन्त्री पद पर स्थापन कर आप भी जिनचन्द्र गुरु के पास जा दीक्षा धारण करी राजा और मन्त्री साधु बन तपस्या कर कर्म क्षय कर केवल ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष को पहुँच गये। इधर उदितोदय राजा अखण्ड राज्य करता हुआ आनन्द पूर्वक रहने लगा। कार्तिकशुदि सप्तमी को नगर सेठ अरहदास जी बहुकिमती भेंट लेकर राजा के पास पहूँचा और भेंट धर के हाथ जोड सामने खडा हो गया सेठ की भेंट को स्वीकार कर राजा बोला कहिये सेठ जी आपका कैसे शुभागमन हुआ सेठ हाथ जोड कर विनय पुर्वक बोला पृथ्वीनाथ मैंने और मेरी घर वालियोंने कार्तिकचौमासी की अठाई तपस्या करनी है यह धर्म का कार्य है इसमेंमैं आपकी आज्ञा चाहता हूँ कि आठ दिन तक मैं और मेरी घरवालियों घरवाले स्थानकजी मे बैठकर प्रभु भक्ति मे [तपस्याऔर धर्म ध्यान मे] अपना समय बितावें। यह सुन कर राजा विचारने लगा कि इस सेठ की धर्म मे श्रद्धा है जो आठ दिन के लिये भोग विलासों के ठोकर मारकर धर्म में अपना समय वितावेगा ऐसे पुन्यात्माओं से ही मेरी नगरी की शोभा है राजा बोला-सेठजी आप धन्यवाद के पात्र हो आप का ही मनुष्य जन्म सफल है जो धर्म के लिये

इतना उद्यम कर रहे हो। आप जैसे धर्मात्माओं से मेरी औरमेरे राज्यकी शोभा है। मेरी आज्ञा है तुम जाओ अपना धर्म कार्य में समय विताओ [धर्म ध्यान करो] राजा की आज्ञा प्राप्त होतेही सेठ अपने घरपर आया और आठ दिन का अठाई तप महोच्छवशुरु करवाया ऐसे करतेहुए जब कार्तिक शुक्ला पूर्णमासी का दिन आया तो सेठ जी व्रत पोशा करने के लिये धरवाले उपाश्रय (थानक) जी मे आया सेठ जी की आठों स्त्रिया भी व्रत पोसा के लिये थानक में आई, स्त्रयों की धर्म दृढता देखने के लिये सेठजी बोला—मैं तो यहां स्थानक में पक्खी पोशा करुगा और तुम सब वन मे जाओ और वहा नाच कूद खेल तमासे मे सारा दिन रात विताओ वहाँ राजा जी की आज्ञा से नगर की समस्त स्त्रिया भी कार्तिक पूर्ण मासी कामहोत्स्व मनाने के लिये जावें गीं आठों स्त्रिया बोली हे पतिदेव-आज हमारे आठमा व्रत [उपवास] है और फिर कार्तिक पूर्ण मासी का दिन है यानी चोमासे का अन्तिम दिन है आज भला हम सम्वर के दिन आश्रव कैसे करे हम तो आप के पास ही रहकर अठपहरी पोसा करेगीं और धर्म ध्यानमे अपना समय वितावेंगी। अब सेठने और आठों स्त्रियों ने वही थानकमे पोसा कर लिया और प्रभु भक्तिमें लीन हो गये। इधर राजा की आज्ञा से रानिया और शहर की सब स्त्रिया कार्तिक पूर्ण मासी महात्शव मनाने के लिये शहर के बाहर वन में गई। रात्रि के समय राजा ने मन्त्री को बुलाया और अपनी राज्य समबन्धी बातें करने लगा जब आधी रात हो गई राजा बोला मन्त्री जी मेरा विचार है कि आप दोनों चलके रात्रि विताने और मनोरंजनके लिये नगरीमें घूम फिर आवे नगरी का कुतुहल देख आवें उत्तम और समझदार का समय तो

श्लोक—काव्य शास्त्र विनोदेन, कालो गच्छति धी मताम्।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा ॥ ६५ ॥

पठन पाठन व धर्म चर्चा आदि मनोविनोद मे बीतता है और मूर्ख लोगों का वक्त खाने पीने सोने क्लेश (दगा-फिसाद) में बीतता है मन्त्री बोला श्री महाराज मैं तो आपका आज्ञाकारी सेवक हूँ जहा कहोगे वहीं चलने को तैयार हूँ चलिये। अब राजा और मन्त्री हथियार पेटी से सुसज्जित हो चुप चाप नगरी निरक्षण के लिये चल दिये कि देखें हमारी नगर मे कौन दुखी और कौन सुखी है। आगे कुछ दूर चल कर चन्द्र देव के प्रकाश मे एक छाया दिखाई दी। राजा बोला—मन्त्रीजी यहा स्त्री पुरुष तो कोई दिखाई नही देता फिर यह छाया किसकी है। मन्त्री बोला—अन्नदाता यह अजन गुटिका आदि विद्या मे निपुण 'सुवर्णखुर' नामक चोर की परछाई है। इस के पास आखों में घालने का अजन है जिस के आजने से यह किसी को दिखाई नहीं दिया करता, हा इसकी चादनी (रोशनी-प्रकाश)में पर छाया अवश्य दिखाइ देती है इसने शहर वालो के धन को खूब लुटा है। राजा बोला—चलो देखे यह कहा जाता है जहा भी जावे वही से इस को पकड़ना चाहिये। इधर चोरने भी देख लिया कि राजा और मन्त्री मेरे पीछे २ आ रहे है कभी ऐसा न हो कि ये मेरे को गिरफ्तार करले अपनी रक्षा के लिये चोर झट से जिस मकान मे सेठ अरहदास पोसा करे बैठा था उसके पास वाले विशाल वड वृक्ष पर चढ गया और वड के पत्तों म अपने अग को छुपा कर बैठ गया। राजा और मन्त्री भी उसके पीछे वड पर चढ गये और विचारने लगे कभी तो यह नीचे उतरेगा तब उतरेगा पकडेगें। सेठ अरहदास और उसकी आठों स्त्रिया सन्ध्या समय देवसिक प्रतिक्रमण करके आपस मे धार्मिक चरचा करने लगे ज्ञान चर्चा करते २ सेठ जी अपनी स्त्रियों से बोले तुमको सम्यक्त्व रत्न की कैसे प्राप्ती हुई। तब स्त्रिया बोली स्वामीनाथ आप हमारे पति देव हैं ससार में स्त्रियों को पति ही आराध्य देव एव पूजनीय माना गया

है इसलिये सब से पहिले आप ही अपने दृढ सम्यक्त्व रत्न प्राप्त होने की कथा हमें सुनाइये। स्त्रियों के अधिक अनुरोध से अर्हदास कहने लगा इस ही मथुरा नगरी में पद्मोदय नाम के एक अति विख्यात राजा था उनकी रा नी का नामयशोमती था इनके सुपुत्र वर्तमान राज,विराज श्रीमान् उदितोदय हैं। जिनका अखड शाशन चल रहा है पद्मोदय के राज मन्त्री का नामसभिन्नमती था उस की स्त्री का नाम सुप्रभा था और पुत्र का नाम सुबुद्धि है जा वर्तमान नरेश उदितोदय का महामन्त्री है। इसही नगरी मे एक रुपखूरा नाम का चोर रहा करता था उसकी स्त्री का नाम रूपखुरी था और उसके एक पुत्र था जिसका नाम सुवर्णखुरा था। इसी नगरी में मेरे परम पूज्यनीय पिता जिनदत्त जी रहा करते थे उनका मैं एक लाडला पुत्र हुं। मेरे पिता जी बड़े धर्मतमा एव पुन्यात्मा थे उनके भाग्योदय से सब बातों के ठाठ लग रहे थे अब भी उनके पुन्योप्रताप से सब बातों का ठाठ लग रहा है।

सवैया—पूरण सम्पत्ति हो घर में, तन रोग रहित हो सुन्दर काया। पुत्र सु पुत्र सु लच्छणीनार हो, धर्म के रंग में खूब रंगाया। दान,पुण्य करे निशिवासर, कौशल बैन बदे मन भाया। ये सहु बोल मिले जिनके घर, कृष्ण कहे तस भाग सवाया॥६६॥

राजा और मन्त्री ने जब अपने माता पिता का नाम सुना तो उनको यह उत्कठा हो गई कि देखें अब आगे सेठ जी क्या कहते हैं—इधर 'सुवरण खुरा, भी सोचने लगा कि जबकि सेठ जी अपनी आखों देखी और कानों सुनी बात कहता है तो क्यों न इनकी बात सुनों यदि आज

चोरी न करूंगा तो मेरा क्या घट जाएगा चोरी तो मैं हर रोज ही करता हूं। राजा मन्त्री और चोर ने सेठ की बात को सुन ने के लिये वहां कान लगा दिये। अर्हदास बोला मेरे अनुभव में जो बात आई है वह मैं तुम से कहता हूं कि उसको सावधान हो कर सुनो, स्त्रियां बोली स्वामी नाथ हम आपकी बात को ध्यान से सुनेंगी आप कृपा कर कहिये। अर्ह-दास कथा कहने लगा।

❀ अर्हदास का कथा कहना ❀

हमारी इस ही मथुरा नगरी मे जो 'रूपखुरा' चोर रहता था वह सातों कुव्यसनों का सेवन वाला था किन्तु जुवा खेलने मे बहुत प्रेम रखता था, एक दिन उसने जुवे में बहुत सा धन प्राप्त किया और उस धन को उसी समय याचको (मगतो) को बाट दिया, मध्यान के समय जब उसको जोर की भूख लगी तो वह रसोई जीमनेके लिये अपने घर को चल दिया, रास्ते मे राजमहल आया, उधर राजमहल में नाना प्रकार के भोजन राजा के लिये बन रहे थे उसको बहुत अच्छी और सुहावनी सुगंध उसके मन को भा गई और विचार किया कि पद्मोदय राजा के साथ ही थाल मे बैठ मैं भी भोजन जीमूगा। यह विचार कर वह उसी समय आंखो मे अञ्जन अदृश्य बन राज महल मे जा राजा के साथ बैठ भोजन जीम घर को चला गया, उस ने एक दिन के जीमने से सन्तोष न कर प्रति दिन आंखों में अञ्जन डाल निडर बन अदृश्य हो थाल में बैठ भोजन जीम अपने रास्ते लगता, राजा के

पहले एक थाल जीमने के लिये मंगाता था अब चार पाच थालभी तो भी मेरा पेट नहीं भरता । क्या मेरे कहीं भस्म रोग तो न लग गया इसका क्या प्रतिकार होना चाहिये राजा तो इस विचार में बैठा ही था कि इतने में सभिन्न मन्त्री भी आ गया और राजा को चीन्ताग्रस्त एवं दुबला पतला देखकर बोला—श्री महाराज क्या आपको अन्न नहीं मिलता जो इतने दुवले पतले हो रहे हो मेरे विचार से तो आपको पूरा अन्न न मिलने से ही आपकी ऐसी दशा हो गई है । आंखों के विना मुख की, न्याय के विना राजा की, नमक के विना भोजन की, धर्म के विना जीव की,चन्द्रमा के विना रात्रि की शोभा नहीं है ठीक इसही प्रकार विना अन्न के शरीर की कोई शोभा नहीं रहती अन्न के विना शरीर की शोभा क्रान्ति सब नष्ट हो जाती है। आप को किसी प्रकार की चिन्ता तो नहीं है शरीरके दुवले होनेका कारण यहीहै अन्न का अभाव चिन्ता का व्यापना सो आप अपने दुवले पतले होने का कारण कहिये । राजा बोला —तेरे जैसे सुयोग्य मन्त्री के होते हुए मेरे पास चिन्ता का क्या काम । पर आश्चर्य इस बात है कि हैं पहले खाने के लिये एक थाल पुरसवाया करता था, उसही से मेरा पेट भर जाता था अब मैं चार पाच भी थाल पुरसवा लेता हूं तब भी मेरा पेट नही भरता । थाली में परोसे हुये अन्न को तो देखता हूं, फिर मालूम नहीं होता कि उस अन्न को कोन खाता है

दोहा—परोसता देखुं प्रगट , थाली में न दो से अन्न ।
क्या कोई खावे देवता,के माणस प्रच्छन्न ॥ १ ॥
दुगुणा तिगुणा चौगुणा, तो पिण तृप्त न थाय ।
अन्न विना ये आत्मा, कमल जेम कुमलाय ॥ २ ॥

राजा की बात को सुन कर मन्त्री ने विचारा कि हो न हो अनन सिद्धरूप

खुरा चौर का ही काम c उसके बिना ये काम और कौन कर सकता है।

जल्दी ही उस पाजी का इतजाम करना चाहिये, नही तो राजाजी औरभी कमजोर हो जायेंगे। मन्त्रि बोला—श्री महाराज मैं जल्दी ही उपाय करुगा और देखू गा कि वह दुष्ट कौन है दूसरे दिन आख के और आम के सूखे पत्ते दरवाजे में बिछवा दिये और चारों कौने में तिव्र धुम्रके घड़े मुखवन्द वा कर धरवा दिये और बड़े शूर वीरों के हाथ में तलवार भाला बर्छी दे कर उनको गुप्त रूप बैठा दिये। मन्त्री वह बन्दोबस्त करके हटा ही था कि इतने में रसोई का समय हो गयाऔर राजा जी के लियेथाल मेभोजन परोसा गया इतने मे रूपखुरा चोर भी आ गया, जब उसने दरवाजे में प्रवेश किया तो उसके पग आम और आक के पत्तों पर पड़े तो एक दम पत्ते खड़ खड़ाये उसी समय मन्त्रीने जालमिया कि अब चोर आ गयाहै, झट मन्त्रि ने दरवाजे वन्द करवा दिये ताला ठुकवा दिया और उन जहरीलेधुवों वाले घड़ोंका मुख खुलवा दिया वह जहरीलीधुवा रूपखुरा की आखो मे वड़ गया धुवा लगते ही उसने आखे मली और आँखो में से पानीनिकला, पानी निकलने के साथ ही उसकी आखों से सुरमाभी निकल गया। आखों में से सुरमा निकलते ही 'रूपखुरा' सब को दिखाई दिया और मन्त्रि के हुक्म से सुभटोंने उसी समय उसको पकड़ लिया। रूपखुर सोचने लगा कि मैने विचारा था कुछ और हो गया कुछ और ही। मने राजा के साथ बैठ कर भोजन क्या कियाअबतो मेरे प्राण ही जाते दीखते है, मेरी तो वह दशा (हालत) हुई—कि—मारे गर्मी के हाथी पानी पीने के लिये तालाब पर गया, कर्म योग से हाथी किनारे वाले कीचड़ में ही जा फंसा, अथवा यों कहिये कि—एक मगने पर एक राजपुत्री प्रसन्न हो गई कर्म योग से उस मगने को सिंहासन ही मिल गया मगते की मन की मन में ही रह गई—

श्लोक–रात्रि गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं, भास्वानुदयष्यति हसिष्यति पङ्कजश्रा । एवं विन्तियति कोशगते द्विरेफः, हा हन्त हन्त नलिनीं गज उज्जहारः ॥ ६ ॥

भा०–एक भमरा एक तालाव वाले कमल पर आकर बैठ गया, मारे लोभ के सन्ध्याके समय भी वह कमल पर से न उडसका और वहीं बैठा रहा, सूर्य अस्त के समय वहीं कमल में फंस गया पश्चात्, मन में विचारने लगा कि सूर्योदय होवेगा कमल खिलेगा और मैं फिर कमल के रस को पी करउड जाऊंगा, वहतो यह विचार कर ही रहा था कि इतने में तालाव पर पानी पीने के लिये हाथी आगया और उस भमरे वाले कमल को तोड़ पेट में धर गया भमरा काल के गाल में चला गया–

सवैया–पंकजकोष में भृंग फँस्यो अपने मन में करत मनसूवो,
होयगो प्रभात उगेंगे दिवाकर जाऊंगो धाम पराग ले खूबो.
रैन बीच ये औरही भईनहीं जानत काल को ख्यालअजूबो,
आय गयन्द चबायलियो रहिगो मन को मन में मन सूबो ।

इत्सितं मनसः सर्वं कस्य संपद्यते सुखम्

मन चाहा काम किस का होता है अर्थात् किसो का नहीं होता । अब बस मेरी भी मृत्यु आ गई है राज्य पुरुषो ने रूपखुरा कोपकड़ लिया और मस्के वाध राजा के सामने ला कर खड़ा कर दिया । राजा ने शुभटों को आज्ञा दी कि इस दुष्ट को शूली पर चढा दो और शूली के चारो तरफ पहरेदार बैठा दो, जो इस चोरटे से वात करने के लिये आवेगा या इस से सुख दुःख के समाचार पूछने आवेगा वही राजद्रोही समझा जावेगा और

चोरी का सारा माल भी समझो कि उस के पास ही निकलेगा, उस दुष्ट से ही सारा माल लिया जावेगा और चोर की जो सजा होनी चाहिये वह उस को दी जावेगी। राजा की आज्ञा से शुभटों ने उसी समय चोर को गधे पर बैठा मस्तक पर पाच चोटी रख टूटी हुई जुत्तियों का मनोहर हार गले मे पहना आगे फुटा ढोल बजवाते हुये शूली पर चढानेके लिये चलदिये। मार्ग में जाते हुये चोर को देखकर शहर के लोग बाग आपस में कहने लगे कि एक चोरी के व्यशन मे पड़कर आज रूपखुरा मरने के लिये बध भूमि में जा रहा है। जुवा खेलने से पाचों पाडव मास भक्षण से बक दाना, मन्दिर के पीने से यादव वेश्यगमन से चारुदत्त सेठ, चोरी करने से अभगसैन चोर, शिकार खेलने से ब्रह्मदत्त राजा, स्त्री के कारण दैत्य रावणने दुःख उठाया, एक २ व्यशन के कारण उन्होंने इतना दुःख पाय जो सातों के वस मे पड़ जाते हैं उनका तो न मालूम क्या हाल होगा और व व्यशन के सेवन वाले न मालूम कौनसी नरक में जाकर पड़ेंगे अब राज्य पुरुषों ये चोर को लेजा कर शूली पर चढ़ा दि। और उस के चारों तर्फ गुप्त रूप से पहरेदार बैठा दिये। जिस समय उसको शूली दी गई थी उस से पहले मेरे पिता जी मेरे को साथ लेकर गृह कार्य के लिये बाहर गाम में गये थे, कार्य कर के जब वापिस नगर को आ रहे थे कि रास्ते मे रूपखुरा को शूली पर लटके देखा, जिसके शरीर से खून टपाटप पड़ने लग रहा था। मारे प्यास के उस के प्राण निकलना ही चाहते थे कि उसकी यह दशा देखकर मैंने अपने पूज्यनीय पिताजीसे उसको शूली चढानेका कारण पूछा तो पिताजी ने उत्तर दिया कि—भाई इसने नगरी के लोगों को खूब लुटा और खसोटा बहुतों को निर्धन बनाया और रहा सह राजा जी के साथ थाल में बैठ कर उनके खाने का भोजन खाया जिस से इसको शूली चढाना गया लिये हुये कर्म कभी पीछा नही छोड़ा कर

रूपखुरा हम को देखकर बोला—सेठजी आप दया के सागर हैं धर्मात्मा हैं मरी भी दयानेवे देखो गिदड़ों ने तो मेरे पग खालिये हैं कौओं ने टोंगे मार २ कर मेरे सिरमे से खून निकाल दिया और जहां नहां (जगह २) से मेरेको खा डाला एक तो मैं शूली पर लटका हुआ महाघोर दुःख पा रहा हूँ और दूसरे ये जगली जीव जानवर मेरेको दुखी कर रहे हैं, इतने पर भी मेरे प्राण नहीं निकलते और तीन दिन से वैसे प्यास के मारे .. महा दुख भोग रहा हूं, ये पापी प्राण भी तो नहीं निकलते सेठजी ? जो पाप ही एसे कर रखे है उनका फल मै न भोगु गा तो और मेरे बदले कौन भोगेगा । आप मेरे पर दयाकर पानी पिलानेकी कृपा करें अब आप यह ख्याल न करें कि यह चोर है कुपात्र है मैं क्यों पानी पिलाऊ मसार में दयाधर्म ही प्रधानधर्म है ये दया धर्म मोक्षादि सुखों का देनेवाला है।

श्लोक— लावण्य रहितं रूपं, विद्यया वर्जितं वपुः ।
जल त्यक्तं सरो भाति, तथा धर्मो दयाँ विना ॥ ५॥

भा०—चतुराई (अकल] के विना रूप की, विद्या के विना शरीर की जलके विना सरोवर की कोई शोभा नहीं होती ठीक इस ही प्रकार दया रहित धर्मकी भी कोई शोभा नही' जिसके चित मे दया बस रही है और दया से ही जिसका हृदय भीग रहा है वही ज्ञानी ध्यानी और वही मोक्ष का अधिकारी है।

श्लोक—**परोपकाराय फलन्तिवृक्षाः, परोपकारायवहन्ति नद्यः।**
परोपकाय दुहन्ति गावः, परोपकारार्थ मिदं शरीरं ॥ ६ ॥

भा०—परोपकार के लिये वृक्ष धूप मे खड़े रहते और खाने-को फल फूल देते हैं, गाय भी परोपकार के लिये दूध देती है और नदिया भी परोपकारके लिये बहती हैं, धर्मात्मा पुरुषों का शरीर भी परोपकार

लिये ही होता है। सेठजी ? आप बड़े परोपकारी हो, और परोपकार के लिये ही आप का शुभ जन्म हुआ है, मेरे उपर कृपा कर पानी लाकर पिलावें मैं आपका बडा भारी उपकार मानूंगा। यद्यपि चोर को पानी पिलानादि राजा की आज्ञा के विरूद्ध था तो भी दया (अनुकम्पा) से मेरे पिता का हृदय पिघल गया और चोर को बोले-प्यारे बन्धु म अभी तेरे लिये जा कर पानी लाता हुँ किन्तु मेरे गुरूदेव ने बारा बर्ष की सेवा से प्रसन्न हो कर ही आज मेरे को महा पति तो द्धारक स्वर्ग और मोक्ष का देने वाला मत्र बतलाया है, जबतक मैं पानी लेकर वापिस न आऊ तब तक तू इस महापवित्र श्रेष्ठ मन्त्र को मुख ढक के पढते रहना, इस से तेरे को महासुख की प्राप्ती होगी। अब मेरे पिता जी रूपखुरा को नौकार महा मन्त्र बतला के मेरे को साथ ले पानी लाने के लिये चल दिये और रूपखुरा महामन्त्र का शुद्ध मन से मुख के आगे हाथ लगा कर ध्यान करने लगा, उस नवकार मन्त्र के ध्यान में ही उसके प्राण पखेरू उड़गये प्राणान्त होने पर वह उस महामन्त्रके प्रभाव से पहले देवलोक में जाकर देव पने उत्पन्न हुआ, वहाँ उसमे छोटे अनेक देवी देवता इसकी सेवा में आ उपस्थित हुये। इधर मेरे पिता जी जल लेकर शमशाण भूमि मेंआये और चोरको मरापाया, मुखके आगे हाथ लगा देख कर दिल में विचार किया कि मालूम होता है यह महामन्त्र के ध्यान में मर कर अवश्य देव लोक में गया होगा मने अपने पिता जी से कहा कि—

श्लोक—महाजनस्य संसर्गः, कस्यनोन्नति कारकः।
पद्म,पत्रस्थितं वारि, धत्ते मुक्ता फलं फलं श्रियम् ॥ ७ ॥

[illegible]—महाजनोंकी संगति से किसकी उन्नति नहीं होती अर्थात् सब ही

जैसे चमकने लगती है।

श्लोक—महानु भाव संसर्गः, कस्यनोन्नति कारकः।
रथ्याम्बु जान्हवीसंगात्, त्रिदशैरपि वन्द्यते ॥ ८ ॥८

भा०—उत्तम की संगति से सब ही उन्नति (तर्की) को प्राप्त होते हैं. जैसे गलियों और मोरियों का गन्दा पानी गंगा जी मे मिलने से देव द्वारा भी पूज्यनीय हो जाताहै।

श्लोक—कीटोऽपि सुमनः संगाद्, आरोहति सतांशिरः।
अस्मापि याति देवत्वं,महद्भिः सुप्रतिष्ठतः ॥ ९ ॥

भा०—कीड़ा भी फूलों की संगति से [फूलों में बैठकर] राजा महा राजाओं के मस्तक पर जा विराजित होता है, पत्थर भी कारीगर की संगत से देव कहाने लग जाता है, काठ के संग से लोहा भी तिर जाता है, ऐसे ही जो सत्पुरुषों की संगति में आवे तो क्यों न उसका उद्धार होवे अर्थात् अवश्य उद्धार होता है। वहा से चल के हम गुरु श्री जिनचन्द्र के पास गये और सब समाचार कह सुनाये और फिर घर के पास वाले थानक में जा कर पिता जी व्रत पोसा ले कर बैठ गये और मैं घर को चला आया। इधर राजा के सिपाहीयो ने मेरे पिताजी को चोर के साथ बात चीत करते देखकर वह भागे हुये राजा के पास गये और कहा कि सेठ जिनदत्त चोर से बाते करी है राजा ने कहा यह सेठ राज्य द्रोही है [राजा की आज्ञा का भंग करने वाला है] जरूर इस के पास ही चोरी का माल होगा, चोरी का माल ले कर ही यह इतना बड़ा धनाढ्य होगया है, दूसरे के माल को ले कर [दाव २ कर] ही सेठ बनते हैं मार के पराया धन सेठजी कहावे है, क्रोध में भर कर राजा ने सिपाहियों को आज्ञा दी कि जहा भी सेठ हो वहीं से उसने उस को पकड़ लाओ और शूली पर चढ़ा दो सिपाही सेठ

जी को पकड़ने के लिये चल दिये, उधर वह जो देवता स्वर्ग में जा कर देव पने उत्पन्न हुआ था उस ने उसी समत अवधिज्ञान के द्वारा देखा कि मेरे को पहले जन्मके धर्मगुरू सेठ जिनदत्त ने धर्म का शरण दिया और नवकार महा मन्त्र का पाठ बतलाया उस महामन्त्र के प्रभाव से ही मैं यहा देवलोक में आकर देवता हुआ हूँ अब उन के ऊपर मेरे कारण से ही शकट आने वाला है इसलिये मेरे को भी उचित है कि मनुष्य लोक में चल कर उन का शकट मेटू, यदि ऐसे शकट के समय में भी मैं उनकी सेवा न करू गा तो फिर मेरे जैसा भी कोई पामर (नीच) न होगा, यह विचार कर उपसर्ग निवारण के लिये वह वैक्रय रूप बना स्वर्ग से चल जहा सेठजी पौषधव्रत मे बैठे थे वहा मनुष्य का रूप बना हाथ में डडा ले दरवाजे के ऊपर आ पहरेदार बन के बैठ गया। सेठ को पकड़ने के लिये यमराज जैसे क्रूर स्वभाव वाले सिपाही आये। सिपाहियों से देवता बोला अरे मुर्खों तुम कहा आगे बढे चले जा रहे हो जहा से आ येहो बस वहीं वापिस चले जाओ मैं तुम को सेठके पास तक नहीं पहुँचने दू गा। द्वारपाल के इस कटुक वचन को सुनकर सिपाही बोले अरे अज्ञानी तू क्यों व्यर्थ बकवाद करता है रास्ता छोड़ एक तर्फ को होजा नहीं त सब से पहिले हमतेरे को ही मारेंगे देख तू एक है और हम कितने हैं दूसरे यहा तेरा कोई सहायक भी नहीं है जो तेरे को आकर छुडा देगा और हम इतने हैं कि तेरे शरीर का खडो खंड करदेंगे। देवता बोला तुम बहुत भी हो और मोटे ताजे भी हो पर इस से होगा क्या—

श्लोक—हस्तिस्थूलतनुः सचांकुशवशः किंहस्ति मात्रांकुशो।
वज्रे णाभि हताः पतन्ति गिरयः किंशैल मात्रः नगः।
दीपे प्रज्वलिते विनश्यतितमः किंदीप मात्रं तमः ।

तेजो यस्य विराजते सबलवान स्थूलेपुकः, प्रत्ययः ॥ १०॥

भा०—हाथी कितना बड़ा मोटा ताजा औरऊंचा होता है किन्तु वह एक जरा से अंकुश के बस में आ जाता है तो क्या अकुश हाथी के बराबर है पवि [बज्र] शैलों (पहाड़ों) का चूरा बना देता है तो क्या बज्र बड़ विशाल कायपहाड़ों के सदृश्य है दीपक से घर का सब अन्धकार नष्ट हो जाता है तो क्या अन्धकार दीपक के बराबर है, ससार में वही बड़ा है जिस में तेज हो फिर वह चाहे छोटा ही क्यों न हो वही बलवान है अधिक मोटे ताजे और विशाल काय हैं, और हैं वह शक्ति हीन तो फिर भला वे बिचारे क्या कर सकते हैं। जगल में रहने वाला सिंह चाहे कितना भी दुबला पतला क्यो नहो किन्तु जब वह गरजता है कि बडे २ हाथियों का मद जाता रहता है इसलिये तुम मेरा कहा मानो यहा से चले जाओ नहीं तो मैं तुम्हारे मे बहुत बुरी करूंगा। द्वारपाल के वचन सुन कर क्रोध में भर कर सिपाही आपस में बोले अरे देखते क्या हो पहले इस पाजी को ही क्यों नहीं मारलेते। एक दम सिपाही पहरेदार पर टूट पड़े उधर देवता ने हाथ मे ले कर उनको मारना शुरु किया कितनेक तो मार खा कर मूर्छित हो भूमि पर गिरपड़े और कितनेक मरगये और कितनेकों ने मुख मेतृण ले लिया और कहा हम तेरी कालीगाय हैं हमें छोड अभय दान दो कितनेक भागे हुए राजा के पास गये और सारे समाचार कह सुनाये अब राजा ने और भी बहुत सख्या मेंसिपाही भेजे इनकी भी देवता ने वही दशा (हालत) की खबर लगने पर राजाजी को बड़ा क्रोध आया और चार प्रकार की सेना ले स्वय चढ खड़ा हुआ, देवता ने भी देव माया से अपनी सेना बनाली दूर से ही राजा ने वह सेना देखी और मन्त्री से बोला यह सेना किस की है मन्त्रि बोला—श्री महाराज यह सामने कोई

देवता है और सेना भी इसकी ही मालूम होती है आपके येसिपाहियों को जो मारा पीटा है यह देवता का ही काम है मनुष्यका काम नहीं है देखो तो सही वह कितना तेज और प्रभाव शाली है इसलिये आप मेरा कहा मानो और वापिस अपने स्थान को चले चलो नही तो महा दुःख सागर में गोतेखाने पड़ेंगे राजाने मन्त्रीका कहा नहीं माना और सेना वड़ाई राज देवता में घोर संग्राम हुआ अन्त में देवताकी जय हुई और राजा की सेना कुछ तो मरगई और जो कुछ बची वह प्राण लेकर भाग गई अब सामने [मुकाबले पर] राजा रहगया वहभी देवताके भयानक रूपको देख कर मारे डरके शहर की तर्फ भाग निकला, देवता भी उस के पीछे २ दौड़ लिया और निकट (पास) आकर बोला अरे मूर्ख शिरोमणी अब मेरे हाथ से बचके कहा जावेगा जहा भी तू जावेगा मैं वही तेरेको मार कर और तेरी नगरी को उजाड़ कर ही दम लूगा देवताके कथन को सुन कर राजा भयभीत हो गया और मुख मे तृण लेकर बोला मैं तेरी शरण हूँ मेरी रक्षा कर। देवता बोला यदि तू थानकमे पोषध-व्रत लिये हुए जिनदत्त सेठकी शरण लेवेगा तो मैं तेरे को छोडदूंगा नही तोअब मै तेरे खण्ड२ करे बिना नही रहुगा। यह सुन राजा सेठजीके पासआया और एक चरण से खड़ा हो हाथ जोड़कर बोला सेठजी इस दैत्य से मेरे को बचाओ मेरी रक्षा करो मै अब आप की शरण में हूं आप बचओगे मै बच सकता हूं नहीं तो मेरे को और कोई बचाने वाला नहीं है

श्लोक—नश्वरास्तता अमि प्राणाः, विश्व कीर्तिश्च शाश्वते
यशोर्थी प्राण नाशे ऽपि, तद्रक्षेच्छरणा गतम् ॥११॥

[illegible]—आवक जी ने प्राण नाश मान है संसार मे एक कीर्तिही अचल है, यश के चाहने वालों का धर्म है कि शरण मे आये हुए की तो प्राण

देकर भी आवश्यक रक्षा करें ।

गथा–विहलं जो अवलम्बई, आवइ पडियंच जो समुद्धरइ शरणागयंच रक्खइ तिसु तेसु अलंकिया पुहवी ॥ १२ ॥

भा०–जो दुःख से घबराये प्राणी को सहारा देता धैर्यबन्धाता है, दुःख में पडे हुये का उद्धार करता है तथा जो शरणमें आये हुओं की रक्षा करता है ऐसे धर्मात्मा पुरुषो से ही यह पृथ्वी शोभा को प्राप्त हो रही है। श्रावक जी? आपभी मेरे को अभय दान दो दाणाण सेठं अभय पयाण सब दानों मे अभय दान ही श्रेष्ठ दान बतलाया गया है –

श्लोक–न गो प्रदानम् न मही प्रदानम्, नचान्न दानंहि तथा प्रधानम् । यथावदन्तीह बुधाः प्रधानं सर्वदानेष्वभयं प्रदानम् ॥ १३ ॥

भा०–गो दान, पृथ्वी दान अन्न दान आदि सब दानों से अभय दानही श्रेष्ठ दान है –

श्लोक— हेम धेनु धरादीनां, दातारः सुलभ भुवि । दुर्लभः पुरुषो लोके, यः प्राणिष्वभय प्रदः ॥ १४ ॥

भा०–चादी सोना गाय पृथ्वी आदि के दान करने वाले तो बहुत हैं किन्तु भय भीत प्राणी को अभय दान के देने वाले तो कोई विरले ही होते हैं–

श्लोक– एकतः काँचनो मेरु, बहु रत्ना वसुधरा । एकतो भय भीतस्य, प्राणिनः प्राण रक्षणम् ॥ १५ ॥

भा०–एक मनुष्य तो सोने का मेरु पर्वत और एक रतनों से भरी हुई पृथ्वी का दान करने लग रहा और एक भय भीत प्राणी "जीव" को

देवता है और सेना भी इसकी ही मालूम होती है आपके येसिपाहियों को जो मारा पीटा है यह देवता का ही काम है मनुष्य का काम नहीं है देखो तो सही वह कितना तेज और प्रभाव शाली है इसलिये आप मेरा कहा मानो और वापिस अपने स्थान को चले चलो नहीं तो महा दुःख सागर में गोतेखाने पड़ेंगे राजाने मन्त्रीका कहा नहीं माना और सेना वडा़ई राज देवता में घोर संग्राम हुआ अन्त में देवताकी जय हुई और राजा की सेना कुछ तो मरगई और जो कुछ बची वह प्राण लेकर भाग गई अब सामने [मुकाबले पर] राजा रहगया वहभी देवताके भयानक रूपको देख कर मारे डरके शहर की तर्फ भाग निकला, देवता भी उस के पीछे २ दौड़ लिया और निकट (पास) आकर बोला अरे मूर्ख शिरोमणी अब मेरे हाथ मे बचके कहां जावेगा जहां भी तू जावेगा मैं वही तेरेको मार कर और तेरी नगरी को उजाड़ कर ही दम लूंगा देवताके कथन को सुन कर राजा भयभीत हो गया और मुख मे तृण लेकर बोला मैं तेरी शरण हूं मेरी रक्षा कर। देवता बोला यदि तू धानकर्म पौषध-व्रत लिये हुए जिनदत्त सेठकी शरण लेवेगा तो मैं तेरे को छोड़दूंगा नहीं तोअब मैं तेरे खण्डर करे विना नहीं रहूंगा। यह सुन राजा सेठजीके पासआया और एक चरण से खड़ा हो हाथ जोड़कर बोला सेठजी इस दैत्य से मेरे को बचाओ मेरी रक्षा करो मैं अब आप की शरण मे हूं आप बचाओगे मैं बच सकता हूं नहीं तो मेरे को और कोई बचाने वाला नहीं है

श्लोक—प्रशान्तता क्षमि प्राणाः, विरव कीर्तिश्च शाश्वते
धर्मार्थी प्राप्त नाशे ऽपि, तद्रक्षोच्छ्ररणा गतम् ॥११॥

देकर भी आवश्यक रक्षा करें।

गथा—विहलं जो अवलम्बई, आवइ पड़ियंच जो समुद्धरइ शरणागयंच रक्खइ तिसु तेसु अलंकिया पुहवी ॥ १२ ॥

भा०—जो दुःख से घबराये प्राणी को सहारा देता धैर्यबन्धाता है, दुःख में पडे हुये का उद्धार करता है तथा जो शरणमें आये हुओं की रक्षा करता है ऐसे धर्मात्मा पुरुषो से ही यह पृथ्वी शोभा को प्राप्त हो रही है। श्रावक जी? आपभी-मेरे को अभय दान दो दाणाण सेट्ठ अभय पयाण सब दानों में अभय दान ही श्रेष्ठ दान बतलाया गया है—

श्लोक—न गो प्रदानम् न मही प्रदानम्, नचांन्न दानंहि तथा प्रधानम् । यथावदन्तीह बुधाः प्रधानं सर्वदानेष्वभयं प्रदानम् ॥ १३ ॥

भा०—गो दान, पृथ्वी दान अन्न दान आदि सब दानों से अभय दानही श्रेष्ठ दान है—

श्लोक— हेम धेनु धरादीनां, दातारः सुलभ भुवि। दुर्लभः पुरुषो लोके, यः प्राणिष्वभय प्रदः ॥ १४ ॥

भा०—चांदी सोना गाय पृथ्वी आदि के दान करने वाले तो बहुत हैं किन्तु भय भीत प्राणी को अभय दान के देने वाले तो कोई बिरले ही होते हैं—

श्लोक— एकतः काँचनो मेरु, बहु रत्ना वसुधरा। एकतो भय भीतस्य, प्राणिनः प्राण रक्षणम् ॥ १५ ॥

भा०—एक मनुष्य तो सोने का मेरु पर्वत और एक रतनों से भरी हुई पृथ्वी का दान करने लग रहा और एक भय भीत प्राणी "जीव"

देने लग रहा है, इन में अभय दान देने वाला मरते हुए-
जीव को बचाने वाला ही श्रेष्ठ है-

श्लोक - महता पि दाननां, कालेन क्षीयते फलम् ।
भीताऽभय, प्रदानस्य, क्षय एव न विद्यते ॥ १६ ॥

भा०-बड़े भारी दान का फल तो किसी समय क्षय भी हो जाता है किन्तु
अभय दान का फल तो कभी क्षय होता ही नही हैं ।

श्लोक—क्षीयन्ते सर्व दानानि, यज्ञ होम बलि क्रिया ।
न क्षीयते पात्र दान—मभंयं सर्व देहिनाम् ॥ १७ ॥

भा०-सब दानो का यज्ञ होम बलिका फल भी नष्ट हो जाता है किन्तु
सत् पात्र को दिया हुआ दान तथा भय भीत जीव को अभय दान देने
का फल कभी नष्ट नहीं होता इसलिये' आप मेरे को इस दैत्य मे बचावें ।
भय भीत हुए राजा के वचन सुनकर मेरे पिता जी ने विचार किया कि
हो न हो यह जो राजा के पीछे पड़ रहा है सो यह कोई देवता है जो
वैक्रयसे अपना ऐसा भयंकर रूप धारण कर रखा है देवता के विना ऐसा

बिना कारण ही चोर को धर्म का शरण दिया। धर्मात्मा पुरूष ही परोप ककार किया करते हैं।

पिबन्तिनद्यः स्वमेवनाम्भः, स्वयं नखदन्ति फलानिवृक्षाः। नादन्ति सस्यं खलु वारीबाहाः परोपकाराय सतां विभूतय

नदियां जल की भरी हुई चलती हैं किन्तु वह स्वय जल नही पीती वृक्ष के फल लगते हैं किन्तु उन फलों को वृक्ष नही खाते। मेघ बरसता है हरी घास उगाता है किन्तु हरे हरे घास को स्वय नही खाता है। नदी परोपकार के लिये बहती। वृक्षभी परोपकार्थ ही फल देने हैं और मेघराज भी परोपकार के लिये बरसता है परोपकारीयो का जीवन परोपकार में ही व्यतीत होता है

पद्माकरं दिन करो विकची करोति चन्द्रो विकाशयति कैरव चक्र वालम्। नाभ्यर्थितो जलधरो ऽपि जलं ददाति।सन्तः स्वयं परहिते सुकृताभि योगाः॥ १६॥

सूर्य से हाथ जोडकर कौन कहता है तुम अन्धकार को मेट कर उजा ला करो और सूर्य विकाशी कमल को विकशित करो चन्द्रमा को कौन कहता है कि तुम चन्द्रविकाशी कमल को विकशित करो और रोशनी करो मेंघ भी बिना प्रार्थना के ही जल बरसाता है। वृक्ष भी परोपकार के लिये ही छाया करते हैं। ऐसे ही सज्जन पुरुष भी स्वभाव से परोपकार के लिये हर समय कमर कसे रहते हैं किन्तु

दृश्यन्ते भुवि भूरिनिम्ब तरवः कुत्रापिते चन्दनः, पाषाणैः परि पूरिता वसुमति वज्रो मणि दुर्लभः। श्रुयन्ते करटारवा श्च सततं चैत्रे कुहु कुजितं ' तन्मन्य खल संकुल ज

द्वित्रां त्रित्रौ सज्जनाः॥ २० ॥

पृथ्वी पर नीम्बादि के वृक्ष तो बहुत देखने में आते हैं किन्तु चन्दन के वृक्ष तो कहीं कहीं ही पाते हैं पत्थरों से तो भूमि भरी पडी है किन्तु वज्रमण तो कहीं कहीं ही उपलब्ध होती है। काग तो हर जगह बोलते हुए देखे जाते हैं किन्तु कोयल तो चैत्रादि मासों में कूक सुनाती देखी जाती है किन्तु धर्मातमा और सज्जन पुरुष तो कही २ पर देखने को मिलते हैं। हमारी नगरी मे भी यह सेठ एक ही ऐसा परोपकारी एवं धर्मात्मा है जो कि एसे पापी चोर का भी एक छिन में उद्धार कर दिया ये परोपकार की शिक्षायें इसको जैन गुरु से ही प्राप्त हुई हैं यह सोचकर राजा भी बार २ सेठजी के चरणों मे पडा और बोला–सेठजी मालूम होता है कि सब धर्मों मे जैन ही सर्वोत्कृष्ट धर्म है सेठजी बोले कि

जैनो धर्मः प्रकट विभवःसंगति साधुलोके,विद्व दुर्गोष्ठि र्वचन पटुता कौशलं सत्क्रियासु साध्वी लक्ष्मीश्चरण कमलो पास नं सद्गुरुणां, शुद्धं शीलं सुमति रमला प्राप्यते नाल्प पुण्यैः

जैन धर्म भारी पुण्योदय से प्राप्त होता है मैंने भी पहले जन्म में

दिया था फिर भी आपने स्वार्थ बुद्धि से मेरे उपर असीम उपकार किया आपकी कृपा से ही मेरे को यह देवत्व प्राप्त हुआ आपका में अत्यन्त भुकृतज्ञ हुं जब तक इस देवपने में रहूँगा तबतक आपके उपकार को नही भूलूंगा इस रचनाको देखकर राजा कोवैराग्य हो आया और कहाकि देख धर्म की महिमा बडी विचित्र है। धर्मात्मा पुरुषको देवताभी नमस्कोार करते हैं–

श्लोक–तस्याग्निर्जलं अर्णवः स्थल मरि मित्रंसुराः किंकराः कान्तारं नगरं गिरि गृह महिर्माल्यं मृगारि मृगः ॥ पातालं बिषमस्त्र मुत्पल दलं व्यालः शृगालो विषं, पीयूषं विषमं समंच वचनं सत्यॉचितं वक्रियः ॥ २२ ॥

सत्य वक्ता धर्मात्मा सज्जन पुरुषो के लिये अग्निनो पानी, समुद्र पृथ्वी के तुल्य, दुश्मन मित्र के समान, देवता नौकर के तुल्य' जगल–नगर, पहाड–घर सर्प–फूलों की माला, सिंह–मृग, पाताल समस्थल, तलवार कमलसा भगेरा गिदड विष– अमृत रसायण के समान हो जाता है और तो कहा तक कहा जावे धर्मात्मा पुरुष के लिये देवता आकाश से रतनों तथा पुरुषों की भी वृष्टि तक करते हैं वह देवता सेठ जी को नमस्कार कर स्वर्ग लोक को चला गया धर्म की महिमा देखकर राजाजी को तो वैराग्य हो ही गया था कि अब साथ में मंत्री जी को भी वैराग्य हो आया राजा जी ने अपने पुत्र उदितोदय कुवरको राज्य दें मन्त्री के श्री जिनचन्द्र सूरी के पास दीक्षा धारण करली और मेरे बहुत पुरुषों के साथ ससार समुद्र से पार उतारने वाले मुनि अर्थात् ससार को छोड साधू बन गये ससार में वही कुटुम्ब वार को छोड के दीक्षा लेली हो और मोह माया त्याग एकान्त मे रहने लग गये हों।

श्लोक–नचेन्द्रस्य सुखं किंचित्, नचापि चक्रवर्तिनः
सुखमस्ति विरक्तस्य मुनेरेकान्त जीविनः ॥ २३ ॥

भा०–जैसा उन संसार विरक्त ऐकान्त स्थान सेवी साधू सन्त को सुख है वैसा सुख है न तो स्वर्ग लोक के इन्द्र को ही है और न पृथ्वी पति चक्रवर्ती बलदेव वासुदेव आदि राजाओं को है। राजा मन्त्रि और सेठ के साथ जब बहुत-से पुरुषों ने दीक्षा ली तब शहर वाले और भी बहुत से भद्र परणामी सरल स्वभावी स्त्री पुरुषों ने एक से लेकर बारह व्रत धारण किये और जैनधर्म के पक्के श्रद्धालु भक्त बन गये।

अर्हदास अपनी स्त्रियों से बोला कि–हे वल्लभाओ यह सब मैंने प्रत्यक्ष अपनी आखों से देखा और कानो से सुना इस कारण से ही मेरे को दृढ सम्यक्त्व रत्न की प्राप्ती हुई है। यह सुनकर स्त्रिया बोली हे नाथ यह जो बात आपने सुनाई वह आखो देखी कानो सुनी अनुभव मे आई हुई सुनाई है, हम भी आपकी बात का श्रद्धान करती हैं और हमारी भी आपकी बात मे रुचि है। अर्हदास की सब मे छोटी स्त्री कुन्दलता थी बोल उठी यह जो आपने कहा सब झूठ है इसलिये मैं न इनका श्रद्धान

स्वभाव है जिसकी कृपा से यह अपना सुख पूर्वजीवन व्यतीत कर रही है उसकी ही बातो का अनादर करती है मैं अब इसकी कुछ कारण मान कर इसका नुकसान करू गा । सेठ अर्हद्दास अपनी पहली स्त्री मित्र श्री से बोला–हे भद्रे तुम अपने दृढ सम्यकत्व रत्न प्राप्त होने का कारण कहो पति देन के बचन सुनकर मित्र श्री बोली स्वामी जी नाथ सुनिये -

❀ मित्र श्री का कथा कहना ❀

हे पति देव मगध देश की राजगृही नगरी मे मेरा जन्म हुआ था वहा का सग्रामशूर ना। का राजा था उसके कनक माला नाम की रानी थी और सिहशूर नाम का पुत्र था उसही नगरी में ऋृषिभदास नाम का एक सेठ रहता था वह सम्यक्त्व रत्न का धारक एवं बड़ा धर्मात्मा था और जैन धर्म में उसका अतिसमय 'बहुत जादह, राग था पात्र को 'दान देना गुणी जनों में प्रेम रखना सब के साथ बैठ कर सुखोपभोग करना शास्त्रों का स्वाध्याय का करना यह उसका नित्य का कर्म था । सेठ की स्त्री का नाम जिनदत्ता वस भी श्राविका के व्रतों का पूर्ण रूप से पालन किया करती थी और सम्यक्त्वरत्न में अति सुदृढ थी । पतिकी आज्ञा को सर्वोत्कृष्ट समझा कर ी थी जो स्त्री पति की आज्ञा में चलने वाली हो सन्तोष बृति वालीहो पति व्रता हो और समझदार हो वह साक्षात् लक्ष्मी ही है इस में कुछ भी सन्देह नहीं है वह पति देव की सब इच्छाओं को पूर्ण करने मे कल्पवृक्ष के तुल्य थी किन्तु उसमें बाझ पने का, एक बडा अव गुण था अर्थात् उसके कोई सन्तान नहीं होती थी पुत्रोत्पत्ति के लिये अनेक उपाय किये किन्तु वे सब निष्फल गये एक दिन जिनदत्ता समय

देखकर अपने पति देव से बोली हे स्वामी नाथ पुत्र के बिना कुल की शोभा नहीं होती है पुत्र न होने से वंश नष्ट हो जाता है इसलिये आप मेरा कहा मानो और पुत्रत्पत्ति के लिये दूसरा विवाह करलो। नीति शास्त्र में कहा हेकि हाथी की मद से सरोवर की कमलों से, रात्रि की पूर्णिमा के चन्द्रमा से वाणी की व्याकरण से नदी व मान सरोवर की हंस हंसनी के जोडे से सभा की पंडितो से स्त्रियों की शील से, घोड़े की वेग दौडने से सोभा होती है।

श्लोक—पृथ्वि सत्पुरुषं विना न रुचिरा चन्द्रं विनाशर्वरी
लक्ष्मीर्दान गुणं विना वनलता पुष्पं फलंवा विना।
आदित्येन विना दिनं सुखकरं पुत्रं विना सत्कुलम्
धर्मोनैव धृतः सदाश्रुतधरैः शीलं विना शोभाते ॥ १ ॥

भा०—सत्पुरुष राजा के बिना पृथ्वी की चन्द्रमा के बिना रात्रि की दान के बिना लक्ष्मी की फल फूल के बिना बेल की सूर्य के बिना दिन की धैर्य के बिन धर्म की, शील बिना श्रुत सिद्धान्त का जैसे कोई शोभा नहीं है ठीक इस ही प्रकार पुत्र के बिना घर की सोभा नहीं है।

श्लोक—शर्वरी दीपकश्चन्द्रः, प्रभाते रवि दीपकः।
त्रिलोक्य दीपको धर्मः, सत्पुत्रः कुल दीपकः ॥ २ ॥

भा०—रात्रि का दीपक चन्द्रमा हैं प्रातः काल का दीपक सूर्य है तीन लोक का दीपक धर्म है ठीक इसही प्रकार कुलका दीपक सुपुत्र है।

श्लोक—अपुत्रस्य गृहं शून्यं दिशः शून्यास्त्व बान्धवाः

मूर्खस्य हृदयं शून्यं सर्वं शून्या दरिद्रता ॥ ३ ॥

भा०—बिना भाई वन्धुओं के दिशाये शूनी हैं मूर्ख का हृदय शूना है दरिद्र सर्व प्रकार से शून्य है और बिना पुत्र के घर शूनशान है शैव·शास्त्रो में लिखा कि अपुत्रस्य गति र्नास्ति बिना पुत्र वाले की गात नही होती इसलिये में आप से हाथ जोड़ कर कहती हुँ कि आप अपना दूसरा विवाह करवालें। जिनदत्ता के कथन को सुनकर सेठ जी बोले—हे सुभगे ये भोग विला शादी सब अनित्य एव नासमान है जो भागों को भोगता है वह अज्ञानी (ज्ञान रहित होता है और अनना पाप से पिंड़ भरता है और दूसरी बात यह है कि पुत्र की क्या ताकत है जो पिता की गति कर दे माता पिता पुत्र पुत्री भाई वन्धु सब अपने किये हुये शुभा शुभ कर्म के अनुसार गति को प्राप्त होते हैं और अब मैं बुढा भी हो चला हूँ मेरी यह अवस्था अब धर्मा राधन की है न कि विषय वासना में फसने की यदि मैं ऐसी हालत मे विवाह करवा लू गा तो लोग बाग मेंरी हसी उड़ायेंगे और इस अवस्था मे बिवाह करवाना लोक विरुद्ध भी है अब मैं विवाह नहिं करा ऊगा सेठ का निश्चय देख कर सेठानी बोली हे पति देव राग और मोह के बस में हो जो ऐसा करता है तो लोग उस की अवश्य दिल्लगी (हसी उडाया करते हैं किन्तु जो पुत्रोत्पत्ति के लिये विवाह करता है ससार में वह हसी का पात्र नहीं बनता इस विवाद मे सेठानी की जीत हुई और सेठ को हार माननी पडी जैसे तैसे कर के सेठा नी ने विवाह स्वीकार करवा लिया अब जिनदत्ता चली हुई अपने पिता के घर पर गई और अपनी सोतेली माता बन्धु श्री तथा पिता के आगे गोद बिछा कर ऋषभ दास के लिये अपनी वहन कनकश्री की मागनी की तब

उन्होंने उत्तर दिया कि बाई तू राय समझदार है एक के होते हुये हम दूसरी लड़की कैसे दे सकते हैं शोक सम्बन्धी नाता बड़ा दुःख दाई होता है जिनदत्ता बोली माता पिताओं आप मेरी कोई चिन्ता न करे मैं सपथ पूर्वक (सोगन्ध खाकर) कहती हूँ कि एक बार तो भोजन जीमने के लिये घर पर आया जाया करूंगी और बाकी दिन रात थानक में रह कर धर्म ध्यान किया करूंगी घर बार से मैं अपना कुछ भी मतलब न रखूंगी कनक श्री ही घर की मालिकिनी बन के रहेगी माता पिता ने जिन दत्ता का कहा मान लिया और शुभ महुरत मे कनक श्री का विवाह ऋषभदास के साथ कर दिया कनक श्री के घर आते जिनदत्ता थानक में रहकर धर्म ध्यान करती हुई समय बिताने लगी सेठ जी अपनी नव वधु कनक श्री के साथ आनन्द पूर्वक घर में रहने लगे किन्तु सेठ जी ने तीनों समय जिनदत्ता के पा बैठ कर धर्म ध्यान करने में किसी प्रकार की कमी न आने दी सेठ जी जिनदत्ता के पास बैठकर धर्म ध्यान करते देखकर कनक श्री शोक रूपी दाह मे जल उठी और अपने मन से कहने लगी कि सेठ जी का मेरे से प्यार नहीं है जो भी कुछ प्यार महो-ब्बत जिनदत्ता से ही है एक दिन कनक श्री अपनी माता के पास मिलने को गई तो उसकी माता ने पूछा कहो पुत्री तू सुख से तो रहती है न कनक श्री कपट पूर्वक बोली माता जी मेरे पति तो मेरे से बात तक भी नहीं करते वह तो हर वक्त मेरी शोक के पास पड़े रहते हैं आपने कुछ भी विचार नही किया जो कि शोक के होते हुये आपने मेरे को उस से व्याहदी और अब आप मेरी सुख की बात पूछती हो मूड मुडाकर ज्यो-तिषी से जाकर तिथि वार नक्षत्र पूछना जैसे व्यर्थ है ठीक उसही प्रकार आप का भी मेरे से कुशलता के समाचार पूछने व्यर्थ हैं जिनदत्ता ने मेरे

पति देव को अपने पर लुभा रक्खा है हर तरह से उस पापिनी ने सेठ को अपने वस में कर रखा है वे दोनों हर समय थानक मे ही पडे रहते हैं एव भोजन जीमने के लिये तो वह घर पर आते हैं और मैं रात को भी अकेली घर पर पड़ी रहती हूँ। कनकश्री ने झूठी बातें बनाकर अपनी माता को बहकादी। बन्धु श्री अपने मन मे कहने लगी देखो जिनदत्ता ने मेरे से कैसा दगा किया मेरे को उसने ठगली मै उसके बहकाव मे आकर अपनी बेटी का ब्याह बुढे से कर किया मेरी पुत्री कनकश्री रति के समान सुन्दरी को छोडकर वह बुढा खुसड उस काली कुदर्शनी जिनदत्ता पर मुग्ध हो रहा है उस बुढे को बिलकुल भी तो लाज नहीं आती सच है कि यह सब काम की ही बिटम्बना है ।

श्योक–कामेन विजितो ब्रह्मा कामेन विजितो हरि· ।
कामेन विजितो शम्भु शक्र·, कामेन निर्जित· ॥ ९ ॥

भा०–इस काम देवने ब्रह्मा विष्णु महादेव इन्द्र को भी जीत लिया मनुष्य चाहे चतुरता कौशल मे कितनाही निपुण क्यों न हो उसको भी यह क्षण भर मे ही विकल बना देता है पण्डितों की विम्बना कर डालता है धीरको अधीर बना देता है इस काम देव ने ही सेठ को विकल बना रक्खा है । बन्धुश्री बोली पुत्री अब तू किसी प्रकार की चिन्ता न कर मै वही उपाय करूंगी जिस से तेरी शोक मर जाय शोक के मरने के बाद फिर तू निश्-चिन्त हो कर रहना, ऐसे सन्तोष मय वचन कह कर पुत्रीको ससुरे भेजदी और आप पुन्य पाप को कुछ भी न गिनती हुई जिनदत्ता को मारने का उपाय ढूढने लगी एक दिन बहुत सी स्त्रियों को साथ लिये शरीर मे हाड के गहने पहने हुये महा भयकर रूप धारण किये हुये एक कपालिक योगी

भीक्षा के लिये बन्धुश्री के घर पर आया योगी को देखकर बन्धुश्री मन मे सोचने लगी कि मने योगी तो बहुत देखे है किन्तु सब इस [illegible] है यह चमत्कारी पुरुष है इस से ही मेरा कार्य सिद्ध होगा ये सोचकर अन्दर घर मेसे बहुत बढिया २ मेवा मिठाई ला योगी को भिक्षा मे दी और कह दिया कि अब तुम नित्य प्रति हर रोज मेरे घर आकर मनोज्ञ भोजन जीमा करना। अब योगी हर रोज बन्धु श्री के घर पर [illegible] कर मन चाहा भोजन जीमने लगा बन्धु श्री की सेवा भक्ति को देखकर एक दिन योगी बोल उठा—माता जी मेरे एक नही अनेक विद्या सिध्द है जो कोई तुम्हारा कार्य हो वह मुझसे कह देना में उसी समय तेरा कार्य कर दूगा जिसको कुछ दिया जावे भला वह सेवक रूप क्योंन बने कहा भी है कि—

श्लोक—को न याति वसं लोके, मुखेपिडेन पूरित· ।
मृदंगो मुख लेपेन करोति मधुर ध्वनिम् ॥ ५ ॥

भा०—मुख भरने 'खाने, को देने से कौन वस मेंनही होता देखोमृद गढोल के मुख पर आटा लगाने ढोल का मुख भरने से देखो कैसा मधुर शब्दो च्चारण करता है बन्धुश्री ने आखों में पानी भर कर कनकश्री और जिन दत्ता का सारा हाल कह सुनाया और कहा कि जैसे भी बने तुम अपनी शक्तिसे जिनदत्ताको मार दो वह पापात्मा योगी बोला माता जीतुम जरा धैर्य धारण करोमैं इस कृष्ण पक्षकी चतुर्दशी को मशाण भूमि मे जाकर विद्या सिध्द कर के जिनदत्ता को मार डालूगा मेरे इस कथन का विश्वास करो रेमे को जीव हिंसा का कुछभी [किंचित मात्रभी] भय नहीं है और न मै जीव के मारने में कुछ पाप ही मानता हू। यदि मैं तेरे इस काम को न कर सका तो स्वय अग्नि में कूदकर अपने प्राण खो दूगा

उतरने वाली जैन मुनि की दीक्षा लेने को गुरु देव के पास आये और गुरू श्री के चरण कमलों में मस्तक झुका नमस्कार कर मुनि व्रत धारण कर लिया दीक्षा देने के बाद गुरु जी ने कहा प्यारे सज्जनों जिस वैराग्य भावों से तुमने दीक्षाली है अन्त समय तक तुम उस वैराग्य को साथ रखना अर्थात् आखिर समय तक वैराग्य रूपी झुले में झूलते रहना ये वैराग्य ही ससार समुन्द्र से पार उतारने वाला है और निर्भय अविचल मोक्षपद का देने वाला है ।

श्लोक-भोगे रोग भयं कुले च्युति भयं वित्ते नृपालाद्भयम्
मौने दैन्य भयं बलेरिपु भयं रूपे जराया भयम् ।
शास्त्रेवाद-भयं गुणेखलभयं काये कृतान्ताद्भयं सर्व
वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्य मेवाऽभयम् ।। ७ ।।

भा०-भोगों में रोगों का भय कुल में दुष्टा व्यभ चारिणी स्त्री से कुल के पतित होने का भय धन होने पर राजा और चोर डाकु आदि का भय नोकर (सेवक) होकर मालिक की तरफ से भय शत्रुओं के जीत ने पर भी दुश्मनों से भय, सुन्दर सुहावने रूप को बुढापे से भय शास्त्र में वाद विवाद का भय, गुणों मे दुष्ट का भय देह में यमराज का भय कहा तक कहा जाय सबही वस्तु भय सहित हैं किन्तु निर्भय है तो एक वैराग्य है जो कि सर्व भयों से रहित है । गुरु के वचन को श्रवण कर नव दीक्षित मुनि राज बोले-

श्लोक-आयु विनश्यति यथा ऽऽम घट स्थतोयं विद्युत्प्रभेव चपलावत् यौवन श्री । वृद्धा प्रधावति यथा मृगराज पत्नी तस्मात् त्वमद्य शरणं ममदीन बन्धो ।। ८ ।।

जिनदत्ता को नमस्कार कर सन्मुख वैठ गया और दं नो से अ ाने अपराध की क्षमा माग कर सतगुरू समाधीगुप्त के पास आया और हाथ जोड़ कर कहने लगा कि हे गुरूदेव आज धर्म के प्रभाव से ही ऋ पभदास और जिनदत्ता का उपसर्ग दूर हुआ गुरु बोले हे राजन् धर्म वह चीज है जिस से सब मनोर्थ सिद्ध होजाते हैं, ससार में धर्म ही सार वस्तु है इस लिये तुम भी धर्म का शरण लो देखिये-

श्लोक-अर्थाः पाद रजो पमा गिरि नदी वेगोपमं जीवनँ आयुष्यं जल लोल विन्दु चपलं फेनोपमं ज वितम् । धर्म यो न करोति निन्दित मतिः स्वर्गार्गलोद् घाटनम् पश्चा-ताप युतो जरा परिगतः शोकाग्निना दह्यते ॥ ६ ॥

भा०-हे राजन् धन तो पैरों की धूल के समान है यौवन(जवानी पहाड़ो से बहकर उतरने वाली नदी के पानी के समान है, मनुष्यायु पानी के स-मान चचल है और जीवन पानी के बूल बुले के सदृश्य क्षण विनाशिक है, कोई ऐसी हालत दशा में युवा अवस्था में स्थिर में मन होकर स्वर्ग और मोक्ष के देने वाले धर्म को नही करते वह केवल बुढापे में पश्चाताप ही किया करते हैं और फिर शोक [चिन्ता रूपी अग्नि में जला करते हैं। राजाने कहा हे गुरू देव जिस धर्म के लिये आप कह रहे हैं वह धर्म किस प्रकार का है गुरु बोले-अहिंसा सुनृतास्तेय ब्रह्माकिंचन-तामयः,' किसी भी प्राणी मात्र को को दु ख नहीं देना झूठ नहीं बोलना चोरी नहीं करना पराई स्त्री को माता बहन व पुत्री की दृष्टी से देखना परि ग्रह का परिमाण करना रागद्वेषादि पापों से अलग रहना' इत्यादि धर्मो पदेश को सुनकर राजा को वैराग्य हो आया और घर पर आकर अपने संग्राम शूर पुत्र को राज्ज दे सैकडों स्त्री पुरुषों के साथ ससार सागर सेपार

गर्दभानां। अन्धस्य दीपो बधिरस्य गीतं मूर्खस्य किं धर्म कथा प्रसंगः ॥ ॥ ६ ॥

भा०—मृग आदि को मोती देना गधे को खाने के लिये मिठा अन्न देना अन्धे को दीपक दीखाना बहरे को खुश करने के लिये सुन्दर बढ़िया २ गीत सुनाना जैसे व्यर्थ है ठीक उसही प्रकार मूर्खो के आगे धार्मिक कथा का कहना व्यर्थ है विवेकहीन मनुष्य गुण को ग्रहण न कर दोषों को ही ग्रहण किया करके हैं जैसे स्तनो थनों पर लगी हुई जौंक दूध को न पीकर खून को ही चूसा करती है। अर्हद्दासने अपनी दूसरी स्त्री चन्दनश्री से कहा प्रिये तुम भी अपनेदृढ सम्यक्त्व रत्न प्राप्ती की कथा सुनाओ। पतिदेव के बचन सुनकर चन्दन श्री कहने लगी—

❀ २ चन्दन श्री का—कथा कहना ❀

कुरुदेश में हस्तिना पुर एक अति रमणिक नगर है वह मेरी जन्म भूमि का नगर है उस नगरी में सुभागी नाम का राजा था उसकी राणी का नाम भोग वती थाउस नगरी में गुण पाल नामका सेठ रहताथा बड़ा ही धर्मात्मा एवं सम्यक्त्व रत्न का धारक था उसकी घर वाली का नाम गुण वती था सेठानी पतिदेव की आज्ञा में चलने वाली और वह स्त्री के सर्व गुणों से युक्त थी उसी नगरी में एक सोमदत्त नाम का महा दरिद्री ब्राह्मण रहा करता था उसकी ब्राह्मणी का नाम सोमिला था और उसके एक पुत्री थी जिसका नाम सोमा देवी था एक समय सोमिला बिमार हो गई और उस बिमारी में ही वह काल के गाल में चली गई ब्राह्मणी

भा०-हे गुरू देव हमारी आयु ऐसे नष्ट होती जा रही है जैसे कि कच्चे घड़े मे डाला हुआ पानी यौवन जवानी की शोभा हमारी बिजली के तथा चपलाके समान क्षणिक (नाशमान, है वृद्धावस्था हमारे सामने ऐसे दौड़ी हुई आरही है जैसी सिंहनी हो इन भयों से डर कर हा हमने आपका शरणा लिया है अथवा यों कहिये कि संसार के भयों से त्रसित हो यानी डर कर ही हमने वैराग्य का आश्रय लिया है राजा मन्त्रि सेठ सेठानी और बहुतसे नगर निवासियों के सुनलेने और धर्म के अपूर्व चमत्कार को देखकर बहुत से भव्य जीवों ने श्रावक श्राविका के व्रत धारण किये तथा कितने कों तो सम्यक्त्व रत्न प्राप्त किया मित्रश्री सेठ अर्हदास जी से बोली स्वामी नाथ यह दृश्य मैंने अपने नेत्रों से देखा था इसलिये ही मेरे को दृढ सम्यक्त्वरत्न की प्राप्ती हुई है। अर्हदास बोला-भद्रे जो तूने आखों से देखा है मैं उसका विश्वास करता हूं उसको चहता हूं और उस मैं रुचि करता हूं सेठ की अन्य स्त्रियोंने भी मित्रश्री की बात की प्रशंसा की किन्तु छोटी स्त्री कुन्दलता कहने लगी कि यह सब झूठ है मैं इस पर श्रद्धा नहीं करती और न बहन मित्र श्री का बात काही आदर करती हू यह तो यों ही झूठी सची बात बना २ कर अपना लबाड़ पना नाम सार्थक करना चाहती है कुन्दलता की बात राजा मन्त्रि और चोर ने भी वृक्षपर छुपे हुये ने भी सुनली। राजा ने मन में विचारा कि देखो यहकैसी पापनी है जो सत्य को भी असत्य कह रही हैप्रातः काल होते ही इसे गधे पर चढवा कर शहर से बाहिर निकल वादूंगा यह किसी कीएक बात भी सची नहीं मानती चोर अपने मन मैं कहने लगा कि दुष्ट गुणों को छोडकर अब गुणों की तरफ ही दौडा करते है अर्थात् अब गुण ही ग्रहण किया करते हैं-

श्लोक—मुक्ताफलैः किं मृग पक्षिणांच मिष्टान्न पानंकिमु

माधवदास कहाँ लगं बखाण करूं सब का इलाज है, पर एक इलाज नही काल का ॥ ३ ॥

दूसरे तुमने पहले जन्म मे कुछ ऐसे पाप कर रक्खे है जिसके कारन दरिद्रताने भी तेरे घर में डेरे जमा रक्खे हैं संसार में बिना धन के ममुष्य दुखी रहता है।बिना धन के मनुष्य कहीं भी जाओ बस उसको कोई बात भी नहीं पूछता—

सवैया—दामही मे आठोंयाम, बुद्धि का प्रकाश होत दामही से सब ठोर होंत बडो नाम है दाम ही से भैय्या बन्धु आप सब रजु होत, दाम ही से बन हूं में होत सब काम है। दाम ही से सभा माहीं आदर को पावत है, दाम ही सों घर माही होत विराम है। कहे कवि हेम यह नीके के विचार देखो मेरे भाई बीसों बिश्वा दामही में राम है

प्यारे बन्धु पाप और दरिद्रता से छुटकारा पाने का उपाय बस यही कि तुम इस लोक और पर लोक मे सुख देने वाले धर्म को करो इस धर्मसे ही तुम्हारा बेडा पारहो जावेगा और तुम्हारे सब दुःख मिटजावेंगे

श्लोक—यौवनमं जीवितं चित्तं छाया लक्ष्मीश्च स्वामिता चंचलानि षडेतानि, ज्ञात्व धर्म रतो भवेत् ॥ ५ ॥

भा०—यौवन जीवन चित छायालक्ष्मी स्वामी पना ये छऊ चंचल समझ कर सज्जन पुरुष का कर्तव्य है कि धर्म मे अपने चित को लगावे

के मरजाने से ब्राह्मण देवता बड़े दुःखी हुए पहले तो घरवाली पर ही पुत्री के पालन पोषण का भार था अब सारा भार सोमदत्त पर ही आगया एक दिन वह दुखित ब्राह्मण वन [जंगल] की ओर चल दिया तो वहा जगल मे वृक्ष के नीचे बैठे उसकी एक मुनिराज से भेंट होगई उसके उदास चेहरे को देखकर साधुजी बोले —प्यारे भाई तू इतना दुखित क्यो दीख रहा है? सोमदत्त ने अपने दुःख की सब राम कहानी गुरुदेव को आद्यो पान्त कह सुनाई गुरु बोले भाई—

दोहा— राजा राणा छत्र पति' हाथी के असवार। मरना सब को एक दिन, अपनी २ बार ॥१॥ जाया ते मरसी सही, फुले सो कुमलाय। ऊगे सो ही आथमे चिणे सो ढय जाय ॥ २ ॥

भाई जो पैदा उत्पन्न होगा वह एक न एक दिन अवश्य मृत्यु के गाले में जावेगा चाहे कितना भी प्रयत्न करो किन्तु इस पापी काल को तो टाल है ही नही सबको इस का ग्रास बनना पड़ता है ससार में हरएक रोग की औषधिया हैं किन्तु काल बली की तो कोई औषधी है ही नही

सवैया—दरद का इलाज कीजे वैद्य को बुलाय लीजे रोगी का इलाज कीजे दीजे पाणी दाल का राड़ का इलाज कीजे झगड़ा मिटाय दीजे राजा का इलाज कीजे दीजे लोभ मालका। भाई का इलाज कीजे मिठा बैन बोल लीजे दुर्जन का इलाज कीजे, दीजे ओट ढाल का कहे कवि

जब नालों खालों नदियों द्वारा गंगाजी में जाकर मिल जाता है तो उस जल को बड़े से बड़े आदमी भी मस्तक पर चढ़ाने लग जाते हैं। सोमदत्त आपभी धर्मात्मा बन गया और अपनी पुत्री सोमा को भी धर्म के रंग में रंगदी एक दिन सोमदत्त ने अपनी आयु निकट आई जान कर बोला सेठ जी ? आपकी छत्र छाया में रहकर मैंने अपने जीवन को सुधारलिया अब मेरी परलोक यात्रा निकटही है इसलिये आप मेरे को अन्तिम समय तक धर्म का शरण देते रहना और मेरी पुत्री सोमा का विवाह किसी श्रावक व्रतधारी ब्राह्मण के साथ करना वैसे ब्राह्मण के साथ . . .

सेठ बोला पण्डितजी? आप कोई चिन्ता नकरें मैं आपकी आज्ञा का पूरण रूप से पालन करूंगा यह कह सेठ ने पण्डितजी को धर्म का शरण देना शुरुकिया पण्डितजी भी समाधी सहित बाल पण्डित मरण को प्राप्त हो स्वर्ग लोक को गया सोमदत्त के मरने के बाद सेठने सोमा का निज पुत्री से भी अधिक स्नेह के साथ पालन पोषन किया जब सोमा वर योग्य हो गई तो सेठजी किसी श्रावक व्रत धारी ब्रह्मण के लड़के की तालास में रहने लगे क्यों कि श्रावक धर्म का धारी सद् गृहस्थ स्वर्ग और मोक्ष का अधिकारी होता है –

सवैया—जीव अजीव को जानत हैं पुनि बन्ध के भेद में सपूरण ज्ञाता। आश्रव पापको त्यागे सदां और पुन्य की रीत में विज्ञ कहाता। सम्बर निरजरा मोक्ष को धारत, धर्म के रंग में रंगा रहे दिन राता। कृष्ण कहे जिनराज के श्रावक ऐसे गुण अमरापद पाता॥ ७॥

श्लोक–धर्मोऽयं धन वल्लभेषु धनदः कामार्थिनां कामदः,
सौभाग्यार्थिषु तत्प्रदः किपरम् पुत्रार्थिनां पुत्रदः।
राज्यार्थिष्वपि राज्यदः किमथवा नाना विकल्पैर्नृणाम्
तत्किम् यन्नददाति वांछित फलं स्वर्गापवर्गावधि ॥ ९ ॥

भा०–धर्म के प्रभाव से धन चाहने वालों को धन की प्राप्ती होती है काम पुरुषार्थ के चाहने वाले को काम पुरुषार्थ की प्राप्ती होती है सौभाग्य के अभिलाषियों को सौभग्यता की पुत्र के इच्छुकों को पुत्र की, तथा राज्य के चाहनेवालों को राज्य की प्राप्ती होती है, धर्मात्मा पुरुषों को जबकि धर्म के करने से स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ती हो जाती है तो और वस्तुओं का पाजाना कौनसी कठिन बात है गुरु देव के उपदेश को श्रवण कर सोमदत्त ने श्रावक के बारा व्रत धारण करलिये और सप्ततत्त्व का ज्ञान सीख लिया अब सोमदत्त प्रति दिन सम्यक्त्व रत्न को उज्वल बनाने वाली धार्मिक कथा सुनने लगा। एक दिन नगर सेठ गुणपाल ने सोमदत्त को धर्म करते देख लिया सेठने उसको अपना स्वधर्मी भाई समझ कर अपने घर ले गया और भोजन जीमाकर रहने के लिये मकान दिया और खाने खरचने के लिये इतना धन दिता कि पंडित खूब बैठा खावे और मौज उड़ावे। सामयिक सम्वर दया पोसे में अपने अमूल्य समय को बिताता हुआ अपनी पुत्री सोमा की पालना करता हुआ आनन्द से रहने लगा महा पुरुषों के संसर्ग से कौन मनुष्य गुणी और पूज्यनीय नहीं होता गुरु देव के उपदेश से सोमदत्त को धर्म का लाभ मिला गुण वान बना जिस से सेठने उसको आश्रय दिया सच है कि धर्मात्मा पुरुषों की संगति से सब कोई महत्व को प्राप्त होते हैं गलियों मोरियों का गन्दे से गन्दा पानी भी

, मृग की मृग छाला पर बैठकर ब्रह्मचारी जोग भगवत् भक्ति मे लौलीन हो जाते हैं योगीजन मृग के सींग को लेकर गली २ मे बजाते फिरते रहते हैं सुशिला स्त्री को मृग के नेत्रों की उपमा दीजाती है—

सवैया—कहत कुरंग बैन खाल हूं मैं कस्तुरी की, करत तिलक होत सुगंध भारी है। लोचन की उपमा सो लागत हमारो शुभ, बाजत हैं सिगी तब नाद होत प्यार है मॉस ही सो काम आवे रहूं मै अटवी बीच, खाल को सन्यासी योगी बिछावे जहारी हैं। और भीअनेक गुण मोय में गणा धिपति निगुणी को उपमा न लगत हमारी है ॥ ६ ॥

तेरे जैसे बुद्धि और गुणहीन मनुष्य को गऊमाता की उपमा भी नहीं दी जा सकती दूसरा बोला "मानुष्य रूपेण वेनुश्चरन्ति,, जैसे गाय जगल मे जाकर जगल का घास फूस खाकर अपना पेट भर लेती है ठीक इसही प्रकार यह मूर्ख भी धर्म कर्म से रहित अपने पेट भरने के सिवाय और कुछ नहीं जानता। तीसरा बोला भाई ? गाय मे तो बहुत गुण हैं किन्तु इस में तो एक भी गुण नहीं जरा गऊ माता के गुण तो सुनिये—

श्लोक—तृणमवि दुग्धं धवलं, छगणं गेह मंडनं।
रोगा प्रहारी मूत्रं, पुच्छंसुर कोटि संस्थानम् ॥ १० ॥

भा०—गऊ जंगल का हरा सुखा घास फुस खाकर मालिक को अमृत के समान उज्वल दूध देती है जिस दूध में से इन्द्रियों को पुष्ट करने वाला (ताकत का देने वाला) दही मक्खन और घृत निकलता है गऊ के

के सतीर और कड़िया लगाई जाते है, किन्तु इस मूर्ख का तो कोई भी अंग किसी के भी उपकार के काम नही आता । पाचवा बोला मनुष्य रूपेण भवन्ति धुलिश्च पुंज यह मिट्टी (धूल) के समान है छठा बोला भाई ? तुम मट्टी के गुण को नही जानते जो झट से इस अज्ञानी अधर्मी को मिट्टी की उपमा दे रहे हो जरा मिट्टी के गुण तो सुनिये—

श्लोक—कारयामि शिशु क्रिड़ाँ, पंखना शंकरे मिवा ।
मतो जनो निरज पवों,लेखे चित्र फलं प्रदः ॥ १३ ॥

भा०— धुल मे खेलकर बालक अपना मनोरंजन करते है, मिट्टी से बड़ीर हवेलिया बनती हैं वही पानड़े पर लिखने के बाद धुल को गेर कर उनसे अक्षरों को सुखाते है और मिट्टी अनेक काम आती है किन्तु यह यह मूर्ख तो किसी धर्म कर्म के काम का है ही नही सातमा बोलउठा—अरे भाइयो मनुष्य रूपेण भवन्ति श्वानम् यहतो मनुष्य रूप मे एक तरह का कुत्ता है आठमाबोला—भाई तू कुत्ते के गुण को नहीं जानता जो तूने इस अज्ञानी अधर्मी को कुत्ते की उपमा दे दी । जरा कुत्ते के गुण सुनो तो सही—

श्लोक—बह्वाशी स्वल्प संतुष्टः सु निद्रो लघु चेतनः ।
स्वामी भक्तश्चशूरश्च षडेते शुनो गुणाः ॥ १४ ॥

भा०—कुत्ता बहुत खाने वाला होने परभी चार अंगुल के टुकड़े का खाकर अपनापेट भरलेता है जोर की निद्रा आ रही हो जरासा खुटका को सुनकर फौरन जाग जाता है चोर को घर मे नही घुसने देता मालिक वफादार स्वामी का सच्चा सेवक एवं परम भक्त होता है और शूरवीर ऐसा होता है कि मालिक के एक जरा से इशारेपर सिंह की छाती पर भी जा चढ़ता है

गोबर से घर लीप पोत के शुद्ध किया जाता है गौ मूत्र मे शरीर के अनेक रोग मिटते हैं गो पुत्र (बैल) खेती बाड़ी के काम आते हैं और एक नदो सैंकड़ों मन बोझा ढोते हैं , कहा यह अधर्मी और कहा गौ माता जिसमें एक नहीं अनेक गुण भरे पड़े हैं –

सवैया–सुरभी कहत तृण खाय के मैं पेट भरूं मालिक को देऊं खीर,अमृत जहारी है दधी लूणिघृत और होत है अनेक रस, पंचइन्द्रिय पुष्ट होय खावे नर नारी है छाण हीते होत हेर ताहिते लीपे घर पुत्र मुझ खेती करे भार पाड़े भारी है। और भी अनेक गुण मोय में गणाधिप, निगुणी को उपमा न लगत हमारी है ॥ ११ ॥

इस गुण धर्म बुद्धि हीन को तो वृक्ष की भी उपमा नही दी जा सकती चौथा बोला–भाई यह तो मनुष्य रूपेण भवन्ति वृक्षः मनुष्य देह पाकर जंगल में उगनेवाले वृक्ष के समान है पाचवा बोला भाई–तुमने वृक्ष के गुण ही नही जाने जो तुमने झटपटही इसकी वृक्ष के साथ तुलना की जरा वृक्ष के गुण तो सुनिये–

श्लोक–छाया कुर्मो वयं लोके, फलं पुष्पाणि ददाम्यऽहं। पक्षिणां मर्न्दाधारा, गृह द्वारं च हेतवे ॥ १२ ॥

भा०– वृक्ष गर्मी के सताये हुए को छाया देकर मार्ग की सब थकावट दूर कर देता है, अनेको सुमधुर मीठे रसदार फल फूल देता है, पक्षियों का जीवना धार होता है बड़े २ ऊंचे महल महलायतों मे वृक्षों की लकड़िया

भा०– इस संसार में धनियों के दूसरे जन भी आकर दास बन जाते हैं और दरिद्रों (कगालों)के अपने भी हों वह भी दुश्मन बन जाया करते हैं

श्लोक—यस्यार्थास्तस्य मित्राणि, यस्यार्थास्तस्य बाँधवाः
यस्यार्थाः स पुमाँ लोके, यस्यास्र्थाः सच पँडितः ॥१७॥

भा०–ससार मे धन वानों के ही मित्र भाई बन्धु हुआ करते हैं और धन वान ही पडित चतुर माने जाते हैं रूद्रदत्त प्रति दिन थानक में आकर सामायिक किया करता था एक दिन उसको थानक में बैठा हुआ सेठ गुणपाल मिल गया तो पूछने लगा कि भाई आप कहा के रहने वाले हो और कौन से गुरू से आपने धार्मिक क्रियायें सिखी है वह कूड़ कपट का भडार रूद्रदत्त बोला सेठ जी आपकी इसही नगरी का रहने वाला एक सोम शर्मा नाम का ब्राह्मण रहता था मैं उसका पुत्र और सोमिला क अग जात हूं मैं अपने माता पिता का बड़ा प्यारा पुत्र था माता पित्ता की मृत्यु हो गई जिससे मेरा घर पर रहना कठिन होगया घर पर जी नही लगा इसलिये मैं घर बार को छोड कर परदेशमे निकल गया था बनारसी नगरी मे अठाई २ [आठ २ दिन के उपवास से पारणाक रने वाले ' श्री जिनचन्द्र, गुरू से मेरी भेंट होगई, उनके पासही मैंने जैनधर्म की शिक्षाये पाती है और उनके पासही मैंने कुछ कालके लिये ब्रह्मचर्य व्रत भी धारण कर लिया था वहा गुरू देवोंकी कृपासे मैंने खूब धन पैदा किया और अब मैं अपने घरको आगया हूं त्रिकाल शुद्ध सामायिक करता हूं। गुणपाल रुद्रदत्त के कपट को न समझ बोला भाई ब्रह्मचारीजी ? मेरे यहा एक ब्राह्मणकी एक बड़ी सुयोग्य कन्या है जिसका नाम सोमा देवी है. मैं यह चाहताथा कि कोई जैनी पडित मिले और मैं उस कन्या का बिवाह

इत्यादि और भी बहुत से गुण कुत्ते में भरे पड़े हैं–

सवैया–श्वानतो कहत भक्त स्वामी को हूं निशदिन निद्रा आवे अल्प मोय अधिक हुंश्यारी है। चारहीं अंगुल टूक रोटी खाय काढु दिन संतोष करूं मैं मन, चोर करूं जहारी है। उद्यमी हूं निश दिन, आलश्यन अंग मुझ पहूंच देखी काम करु अधिक लाचारी है। और भी अनेक गुण मोय मैं भरे पड़े निगुणी को उपमान लागत हमारी है

रुद्रदत्त बोला भाइयो तुमने तो मेरी पेट भर खूब निन्दा करली पर मूर्खों तुमको क्या मालूम है कि मेरे में कितने गुण भरे पड़े हैं तुम मेरी बुद्धि का चमत्कार देखना कि मैं सोमा से ही विवाह करके ही दम लूंगा यह कह रुद्रदत्त उसी समय धन कुमाने के लिये पर देश को चला गय और काशी देश बनारसी नगरी मे जाकर खूब धनोपार्जन किया और वहीं जिनचन्द्र गुरु के पास जाकर बनावटी श्रावक बन गया जैन धर्म की सब क्रिया कर्म सीख लिये अब रूद्रदत्त धन माल लेकर अपनी नगरी को आगया पास में धन होने से सारी नगरी मे वह प्रसिद्ध हो गया उसके कुटुम्ब के सब लोग बाग हर समय उसके पास पडे रहने लगे ससार में जिसके पास धनहो जाता है उसके सबदास बन जाते हैं इस ससार में धन की इज्जत है मनुष्य की नही–

श्लोक–इहलोके हिधनिनां परोऽपि स्वजानायते।
स्वजनोऽपि दरिद्राणां सर्वदा दुर्जनायते ॥१६॥

रूपी विष को ग्रहण नहीं करना चाहता बिवाह करने से संसार में रुलना पड़ता हैऐसे दुःव दायक बिवाह के जालमें मैं भला क्यों फंसु। गुणपाल कहने लगा मैं तुमको श्रावक समझकर आग्रह पूर्वक कहता हू कि तुम मेरी बातको मानलो और सोमा से बिवाह करवालो रुद्रदत्त बोला–सेठजी स्त्री के ससर्ग से मेरी सिद्धि अजन मन्त्र तन्त्र कला कौशल आदि सब नष्ट हो जायेंगे। निदान सेठ गुण पालने बडे आग्रह के साथ सोमा का विवाह बड़े महोच्छ्व पूर्बक रुद्र दत्त के साथ कर ही दिया, कन्या दान में दिल खोलकर माल दिया। अब रुद्रदत्त सोमा को लेकर घर पर आया और घर आते ही सब कर्म धर्म को खू टी पर टाग दूसरे दिन ही विवाह कगन पहने हुए अपने मित्र जुवारियों के पास गया और कहा देखो मैंने जो तुम्हारे सामने सोमा से विवाह करने की प्रतिज्ञा की थी वह पूरी करदी है अर्थात् अब मैंने सोमा से विवाह कर लिया है। सब जुवारी मित्रों ने मिलकर रुद्रदत्त की पेट भर प्रशसा की। यह वह बात हुई कि जैसे ऊट के ब्याह मे गधा गीत गाने के लिये आया तो गीत द्वारा ऊट के रूप की सराहना की। गधे के गीत को सुनकर ऊट ने कहा देखो भाई यह गर्दभराज कितने सुन्दर सुहावने गीतों से आकाश मण्डल को गु जा रहा है। जुवा खाने से चलकर वह अपनी पहली प्यारी वल्लभा, वसुमित्रा, वैश्या की पुत्री [कामलता] के पास पहुँचा। वह वैश्या कामी पुरुषों को वश करने मे अति चतुर थी वह रुद्रदत्त कामान्ध बना हुआ प्रतिदिन कामलता वैश्या के घर आने जाने लगा और जो घर मे धन था वह लुटाने लगा। गहना गू ठी भी ले जाकर देने लगा कहा तक कहिये कि खान पान भी वह सब वहीं करने लगा। रात दिन वेश्या के घर पर ही पडा रहने लगा–

उस मे करदू सो अब आप बतलावें कि आप ब्याह करना चाहते हो य नहीं या सारी उम्र ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहते हो रुद्रदत्त बोला सेठजी मेरा विवाह कराने का विचार नहीं है क्यों कि मैं स्त्रियों को महा भयकर विष के समान समझता हूँ–

श्लोक— स्त्रियो हि मूलं निधनस्यपुंसः, स्त्रियो हि मूलं व्यसनस्य पुंसः। स्त्रीं हि मूलं नरकस्य पुंसः, स्त्रियो हि मूलंकल्हस्य पुंसः ॥ १८ ॥

भा०–पुरुषों को स्त्रिया ही मृत्यु का द्वार दिखाती है व्यसनो में फसाती है नरक मे पहूँचाती है स्त्री ही नाना प्रकार के कलेश का कारण है, ऐसा कौनसा दुःख है जों पुरुषों को स्त्रियों से प्राप्ती न हो–

श्लोक–स्त्रियांहि निन्द्यां लोके, स्त्रियः प्रीति विनाशिकाः पाप बीजं कले मुलं, धर्मस्य नाशिका स्त्रियः ॥ १९ ॥

भा०–स्त्रिया निन्दा पात्रहै प्रीति का नाश करने वाली पाप का बीज, कल्ह का मूल हैं यह सब धर्म कर्म को नष्ट करनेवाली है–

श्लोक–विलीयते घृतं यद्व–दग्नेः ससर्गस्तथा।
नारी ससर्गतः पुंसोःधैर्य नश्यति सर्वथा ॥२०॥

भा–जैसे अग्नि मे ससर्ग से घृत नष्ट होजाता है ठीक उसही प्रकार स्त्री की सगति से पुरुष का वन धैर्य सब नष्ट हो जाता है जिसके गले मे कालकूट विष भराहूआ है वह महादेवभी उस विषसे विचलित नहुये नहीं हुये किन्तु स्त्रियों के सामने तो उनको भी हार माननी पड़ी इसलिये मस्त्र

कर्मों का फल है जो मैंने पूर्व जन्म में अशुभ कर्म कर रखे थे भला वह बिना फल दिये कैसे छूट सकते हैं। सेठ कहने लगा पुत्री ! अब तू धैर्य का ही आश्रय ले और समता से अपने दिन पूरे कर अब यह कलियुग निकट आया ही समझ कि जिसके कारण से रुद्रदत्त ने मेरे से इतना कपट किया। इस कलियुग मे जो न हो जाय वही थोड़ा है कलियुग मे क्या २ बातें होती हैं उनको सुन—

श्लोक—लक्ष्मीः लक्षण हीनेषु, कुलहीने सरस्वती। कुपात्रे
रमते नारी, गिरौ वर्षति माधव ॥२३॥

भा०-मूर्ख से लक्ष्मी प्रसन्न होती है और कुल हीन नीच जाति] से सरस्वती प्रसन्न रहती है। दुष्टों से स्त्रिया प्रेम करती हैं मेघराज खेती वाडी मे न बरस कर पहाड़ों मे बरसता है।

श्लोक—सीदन्ति सन्तो विलसन्त्यसन्त पुत्रा म्रियन्ते जनक-
श्चिरायुः। परेषु मैत्री स्वजनेषु वैरं, पश्यन्तु लीलाः
कलि कौतुकानि ॥२४॥

भा०—इस कलियुग मे सज्जन तो दु:ख भोगते है और पापी सुख पाते हैं पिता चिरायु [बड़ी उम्र वाला] होता है और पुत्र पिता के मुखके आगे मर जाता है। घर वालों से द्वेष दूसरों से प्रेम करते हैं—

श्लोक—निर्वीर्या पृथ्वी निरौषधीरसानीचा महत्वं गत'
भूपाला निज कर्म धर्म रहिता विप्रा· कुमार्गेरता।
भार्या भर्तृ विरोधिनी पर रता पुत्रा पितुर्द्वेषिणो,

श्लोक—जननी जनको भ्राता, तनय स्तनया स्वसा। न सन्ति वल्लभास्तस्य, गणिका यस्य वल्लभा।२१।

भा०—वेश्यागामी को माता पिता बहन भाई बन्धु स्त्री पुत्र पुत्री इतने प्यारे नहीं होते जितनी कि उनको वेश्या प्यारी होती है।

श्लोक—लोभ युक्ता गुणैर्मुक्ता, रक्तऽसौ जीवहारिणी। त्याज्या वेश्या बुधै र्निन्द्या, विष मिश्रं जलं तथा॥२१॥

भा० बिद्वानों द्वारा निन्दनीय लोभादि अनेक अवगुणों की खान ज्ञानादी गुण रहित खूनके चूसने वाली जीवन को नष्ट करने वाली वेश्या चतुर मनुष्य ऐसे छोड देता है जैसे जहर मिले हुए पानी को किन्तु जो कामान्ध हो जाते हैं उनसे वह नही छोडी नाती। सोमा को भी मालूम हो गया कि रुद्रदत्त सातों व्यसनो का सेवन करने वाला है सोमा मन में सोंचने लगी कि मेरे लिये ही इसने कपट से श्रावक की क्रिया सिखी थी यदि मेरे धर्म पिता सेठ गुणपाल को इस का कपट मालूम हो जाता तो वह मेरा विवाह इसके साथ न करते अब क्या होंता है। सोमासती रुद्र दत्त के घर को छोडकर अपने पिता गुणपाल के घर पहुॅची और माता पिता [गुणपाल और गुणवती] के सामने खूब फूट २ कर रोने लगी अब उस बेचारी के पास रोने के सिवाय और था भी क्या? सेठ सेठानी ने धैर्य [तसल्ली] देकर पूछा पुत्री क्या बात है तू रोती क्यों है तेरे पर यह एक दम विपत्ति का पहाड़ कैसे टूट पड़ा और प्रथम दिन तेरे साथ उस रुद्र दत्त ने क्या वर्ताव किया? सोमा ने रुद्रदत्त का सब समाचार कह सुनाया और साथ में यह भी यह भी कहा कि पिता जी यह सब मेरे

जुवा आदि व्यशनों का सेवने वाला था चोर में सत्यता नीच में पवित्रता मद्य पीने वाले मे हृदय की पवित्रता नही होती किन्तु जुवारियों में तो इन तीनो बातों में से एक बात भी नही पाती न तो उन में सचाई और न शुद्धता और न वह हृदय के पवित्र ही होते हैं दुष्ट मनुष्यों मे यह कुलीन है यह गुणवान है ऐसा समझ कर एक दम विश्वास कर लेना उचित नही है

श्लोक—दुर्जन प्रिय वादीच, नै तद्विश्वास कारणम् ।
मधु तिष्ठति जिह्वाग्रे हृदि हाला हल विषम् ॥ २७ ॥

दुर्जन चाहे कितना ही मिठा बोले किन्तु उसका विश्वास नही करना चाहिये दुर्जन मुख के मिठे और हृदय के बड़े दुष्ट होते हैं यानी उनके हृदय में जहर भरा हुआ है अग्नि चाहे मलया गिरी की ही क्यों न हो वह तो जलाकर ही छोडती है सेट बोला सोमा ! यह मेरे अज्ञानता ने जो कुछ हो गया तू इसको समता पूर्वक सहलेना अज्ञानता मे मनुष्य ने क्या नहीं हो जाता पुत्री तू यह धन माल ले और इसको गरीबों को बाट दान पुन्य कर दान पुन्यके प्रभाव मे तेरे को सद्‌गतिकी प्राप्ति होगी

श्लोक— गौरवं प्राप्यते दानात्, नतु वित्तस्य संचयात् ।
स्थिति रूचैः पयोदानां, पयोधी नामधः स्थितिः ॥ २८ ॥

भा०—दान देने से मनुष्य गोरव को प्राप्त होता है धन के सचय करने से नहीं देख मेघ कितने ऊंचे हैं और समुद्र कितना नीचे है समुद्र जल का संग्रह करने वाला हैं और मेघराज जल का दानी है इस-लिये समुद्र ने मेघ की कहीं हजारों लाखों गुणी अधिक प्रतिष्ठा है इस लिये पुत्री तू अन्न और पानी आदिका दान कर—

हा कष्टं खलु वर्तते कलियुगे धन्यानरा: ये मृत: ॥२५॥

भा०—पृथ्वी बीज हीन हो गई औषधियों मे गुण नहीं रहा, नीच नीचेकार्यों को करके बडप्पन को पाते हैं। राजा लोग अपने कर्म धर्म से रहित हो गये, ब्राह्मण अपने ब्रह्म तेज के घमण्ड में आकर कुमार्गगामी हो गये, स्त्री पतिदेव से द्वेष करने वाली तथा पर पुरुषों में रमण करने वाली हो गई, पुत्र पिता से दुश्मनाई करने वाला हो गया, धन्य है उन महा पुरुषों को जिन्होंने इस कलियुग की लीला को न देखकर काल के गाल में सुख से जाकर सो गये।

श्लोक—शशीनी खलु कलङ्क कंटकं पद्मनाले, जलधि जल—मपेयं पंडिते निर्धनत्वं। दयित जन वियोगं दुर्भागत्वं स्वरूपे, धनपति कृपणत्वं रत्न दोषै कृतान्त: ॥२६॥

भा०—चन्द्रमा में कलङ्क, कमल नाल में काटे, समुद्र का पानी खारा, पण्डितों मे निर्धनता, इष्ट [प्यारे] जनका वियोग, सुन्दरता में दुर्भाग्य पना, धनाढ्यो मे कृपनता, येउपरोक्त रत्न के समान गुण वाली वस्तु है किन्तु सब दूषण युक्त हैं ये सब काल की ही लीला है। शुभ कार्यों मे महान् पुरुषो को अनेक कष्ट बाधाये उठानी पड़ती हैं। पुत्री तुम अपने धर्म कर्म मे सावधान रहना। गुणपाल के कथन को सुनकर सोमाबोली—पिता जी मेरे मन मे अब जरा भी दु:ख नहीं रहा आपकी छत्र छाया मे ही रहकर मै अपना सुख से जीवन बिताऊगी। यह तो सदा से ही

दातारो दान शब्देन, श्रूयन्ते सचरा चरे ॥ ३१ ॥

भा०--भेरी का शब्द यानी आवाज तो अधिक से अधिक एक योजन[चार कोस] तक ही सुनाई दे सकती है और मेघ का गर्जारव बारह योजन तक सुनाई दे सकता है किन्तु दातार महादय का नामतो सब चराचरके कानों तक पहुंचता है अब रुद्रदत्त को मालूम हुआ कि सोमा तो घर बार को छो-कर गुण पाल के घर को चली गई है और वहा दान शाला खोल कर अपना नाम कर'रहीं है सोमा की शोभा को मिटने के लिये तथा यों कहिये कि ससार में अपना मुख उज्वल करनेके लिये वेश्या कामलता की दासी को सोमाके पास भेजी। दासी ने जाकर कहा सोमा ? रुद्रदत्तने तेरे को बुलाई है और कहा है कि अपने घर को सम्भाल ले और घर पर आ कर तेरे को यह काम करने पड़ेंगे क्या कि कामलता के और उसकी माताके पैर दबाने पड़ेंगे मेरे और उनके झूठे वर्तन भी माजने पड़ेगे और मेरी तथा उन सब की भली और बुरी गालिया सहनी होंगी सोमा बोली रुद्रदत्त से कहदेना कि सोमा जब तेरे घर पर आवेगी जबही न ये काम करने पड़ेंगे न मैं तेरे घर आऊगी और न तेरे ये काम मुझे करने पडेगे मैं तो अपने पिता गुणपालके घरपर रहकर अपने सत शील सतोष से दिन पूरा करूगी कल्पवृक्ष के समान मैं इस घर को छोड कर रुद्रदत्त जैसे अधर्मी चंडाल के घर जाकर क्या करना है, मैं नही चाहती कि ऐसे चडाल के मेरे को दर्शन हों। दासी ने जाकर रुद्रदत्त को सारे समाचार कह सुनाये। रुद्रदत्त सुनकर क्रोध मे भर गया और जहाँ तहा बैठकर सेठ की और सोमा की बुराई करने लगा दूर्जन एव पापात्माओं का स्वभावही ऐसा होता है कि--

श्लोक—त्यक्त्वा मौक्तिक संहति करटिनो गृणन्ति काकाः
पलंः त्यक्त्वा चन्दनमाश्रयन्ति• कुथितं योनि व्रतं मक्षिकाः
हित्वान्नं विविधं मनोहर रसँ श्वानो मलं भुंजते,
यद्वन्नान्ति गुणं विहाय सततं दोषं तथा दुर्जनाः ॥ ३२ ॥

भा०—जैसे काग मोती को छोंडकर मास खाने दौडता है मक्खी घीसे हुए चन्दन के कटोरे को छोडर घाव [जखम] पर
जाकर बैठती है सुन्दर मनोहर भोजन को लात मार कर कुत्ता भिष्ठा [गन्दगी] खाता है ठीक इसही प्रकार दुष्ट भी सज्जनों के गुण न ग्रहण कर औगुण को ही गाते फिरते हैं जुं जु रुद्रदत्त सेठ की और सोमा की लोगों के सामने बुराई करे त्यों त्यों नगर वासी नर नारी सब उनकी प्रसंसा करें जैसे अगर आदि कोआग में गेर देने से खूब ही सुगन्ध फैलजाती है ठीक इस ही प्रकार उनके महत्व में जरा भी फरक नही आया दिन दुना रात चौगुणा की तरह उनका यश फैलने लगा सेठको और सोमा को जब यह मालूम हुआ तो सेठ सेठानी कहने लगे पुत्री घबराना मत ये घरबार सब तेरा है किसी बात की चिन्ता फिकर मत करना हम तेर सहायक हैं। सेठ सेठानी और सोमाकी बड़ाई सुन २कर बान्दर की तरह मुख फेर कर चले और लोगों के सामने कहता फिरे कि सोमा दूसरों के धन से अपना नाम करती है, भला दूसरे के धन से भी कुछ हुआ है। इस बात की खबर सोमा के पास भी पहुँची, कुछ परवाह न कर सोमा वैसे ही दान पुण्य करती रही। एक दिन रुद्रदत्त के दिल में सुमति देवी ने आकर वास किया और दौडा हुआ सेठ गुणपाल के पास आकर अपने अपराध की क्षमा मागने लगा, सरल स्वभावी धर्मात्मा सेठने उसको क्षमा प्रदान की फिर घर पर जा कर सोमा से मिला और उससे भी कृत अपराध की

क्षमा मागी, भद्र प्रणाम से सोमा ने उसको खिमा लिया, अब रुद्रदत्त प्रति दिन सेठ के घर आने जाने लगा, सज्जन जो होते हैं वह दुष्टों की बातेपर ध्यान न रख कर अपने सुन्दर स्वभाव में ही रमण किया करते हैं। एक दिन बुढी वसुमित्रा भी सोमा के घर जा निकली, सोमा ने भी उसको बड़े प्रेम के साथ अपने पास बैठाली, उसके (दिव्य प्रभाव श्याली)रूप को देखकर वसुमित्रा अपने दिलमें सोचने लगी कि अब तो रुद्रदत्त सोमा के पास हर रोज आने जाने लग गया है ऐसे रोजके आने जाने से इसको सोमा में मोह हो गया तो हमारा जीवन निर्वाह ही कठिन हो जायगा, इस लिये इस पापनी को किसी दाय उपाय से मार डालना ही उचित है, यह विचार कर वह अपने घर आई और अपनी पुत्री कामलता को उसके रूप का हाल कह सुनाया और अपना विचार भी कह दिया अब माता और पुत्री सोमा के मारने का उपाय ढूढने लगी, एक समय का जिकर है कि सोमा ने सारी नगरी का जीमणवार किया और सबको यथा योग्य वस्त्राभूषण पहना कर बिदा किये उधर वसुमित्रा और कामलता को भी बुलाई। वेश्या ने देखा कि अब मेरा दाव लग जायगा, उसी समय उसने सपेला से कहकर एक बड़ा भारी जहरीला काला साप जंगल से पकडवा मंगवाया और उसको घड़े में बन्द करउस घड़े को साथ ले सोमा के घर पहुँची सोमाने भी उनका यथा शक्ति [अच्छा] सत्कार किया सच है कि–

श्लोक–निर्गुणेष्वपि सत्वेषु, दया कुर्वन्ति साधवः।
न हो संहरते ज्योत्स्नां, चन्द्रश्चण्डाल वेश्मनि ॥३३॥

भा०—सज्जन मनुष्य निर्गुणियों पर भी दया किया ही कर हैं जैसे कि चंडाल के घर पर भी चन्द्रमा तो अपना प्रकाश डालता ही है। सोमा ने

वसुमित्रा और कामलाता को भोजन जीमाकर बहुत बढिया बढिया वस्त्रा भूषण पहनाये, अब वह दोनों मा बेटी सोमा के पास बैठकर मिठी मिठी बातें बनाने लगी किन्तु सोमा उनके कपट को न समझ सकी और सरल स्वभाव से ही बातें करती रही। वसुमित्रा सोमा से बोली—मेरे जैसे कामलता पुत्री है ऐसे ही तू हैं मैं तेरे और इसमें कुछ अन्तर [फरक [नहीं समझती, मेरा कहना है कि आज से तुम दोनों धर्म बहन बन जाओ और ले मैं तेरे लिये कितना बढिया फूलों का हार लाई हूं तू इस फूलों के हार को गले में पहन ले इस फूल माला के पहरने से तेरे सब दुःख शंकट टल जायेंगे और तेरे को किसी प्रकार का दु.ख नहीं रहेगा। सती सोमा कुटनी का कुछ भी कपट न समझ सकी फूल माला काढने के लिये झट घड़े में हाथ डाला–ह थ डालने की देरी थी कि सती सोमा के सत शील के प्रभाव से सर्प झट फूलों की माला बन गई और वह माला पहन के सन्मुख खड़ी हो गई। सती के शील की महिमा न्यारी है कहाभी है कि

श्लोक—वह्निस्तस्य जलायते जलनिधिः कुल्यायतेतत्क्षणात् मेरुः स्वल्प शिलायते मृगपतिः सद्यः कुरंगायते ।व्यालो–माल्य गुणायते विषरसः पीयूषं वर्षायते यस्यांगेऽखिल लोक वल्लभतमं शीलं समुन्मीलति ॥ ३४ ॥

भा०—शीलवान स्त्री पुरुष के लिये अग्नि पाणी सा, समुद्र एक छोटी नदी सी, मेरु पर्वत एक छोटा सा पत्थर का टुकड़ा सा, सिंह हिरण सा और सर्प फूलों की माला हो जाता है वह कौनसा कठिन कार्य है जो शीलवान के शील के आगे टीक न हो जाय। फूलों की माला देखकर

वेश्या बडी सोच में पड गई कि मने तो इस घड़े में काला नाग रखा था और उसकी फूलमाला कैसे बन गई यह धर्मात्मा है, इसके शील के प्रभाव से ही यह विषधर फूलमालाके रूप में परणित हो गया और कोई बात नहीं है। अब वनुमित्रा और कामलता अपने घर को जाने लगी कि सोमा उनको पहुँचाने के लिये घर से बाहिर तक साथ आई और कामलता ने बोली—लो बहन जी यह फूलों का हार मैं अपने हाथ से तेरे को पहनाती हूँ, यह कहकर सोमा ने वह माला कामलता के गले में डाल दी माला का गले में डालना था कि वैसा ही काला साप बन गया और कामलता को डस लिया, वेश्या एक दम मूर्छा खाकर जमीन पर पड गई अपनी पुत्री का यह हाल देखकर बुढिया ने अपनी छाती कूटनी पिटनी शुरु करदी और खूब जोर से हल्ला गुल्ला मचाना शुरु किया। अब वह अपनी कुटनी लोकों में खड़ी होकर जोर जोरसे पुकारने लगी कि सोमा ने मेरी पुत्री को फूलमाला का नाम लेकर काला नाग गले में डाल कर मार दी इस गुणपाल की लाडली ने मेरे को विश्वास देकर घर पर बुला इस कालीं कंकाली ने मेरी पुत्री को मार डाली, इस पापनी ने सारे शहर को ठग लिया और भी वेश्या ने अनेक कलक वाली बातें कही। सोमा भी इस चरित्र को देख कर बड़ी आश्चर्य में पड़ी और अपने मनमें कहने लगी कि मैंने पूर्व (पहले) जन्म मे ऐसा क्या पाप किया था जो इस भव में मेरे उदय में आया। सेठ गुणपाल रुद्रदत्त ने भी सोमा के कलंक का बहुत दुःख माना, वेश्या ने साप को पकड़वा कर घड़े में घाल मुह बन्द कर रोती पीटती दौडी हुई राजा के पास गई और कहा श्री महाराज गुणपाल की लाडली पुत्री सोमा ने मेरी पुत्री कामलता को मार डाली कामलता का मरना सुनकर राजा को बड़ा क्रोध आया और सिपाइयों के

वही सोमा को कचहेरी में बुलाई सोमा के साथ गुणपाल और रुद्र दत्त भी आया, राजा ने सोमा से पूछा कि तैंने गले में फूल माला डालकर कामलता को क्यों मार डाली। सोमा बोली—श्री महाराज मैंने इसको नहीं मारी मैं जन धर्म के मानने वाली हूँ, हमारा जैन धर्म जो है वह दयामय है, जो जीव हिंसा करेगा वह नरक में जाकर पड़ेगा और जो जीव रक्षा करेगा वह स्वर्ग और मोक्षके सुख पावेगा। सुखाभिलाषी कभी जीव हिंसा ही नहीं किया करते। राजा कहने लगा–तो सोमा ?क्या फूल माला से भी कोई मरा है, यदि फूलमाला के पहरने से ही आदमी मरने लग जावेंगे तो भला फिर उनका जीना कैसे होगा, सोमा ने आदि से अन्त तक वेश्या का सारा चरित्र कह सुनाया, वसुमित्रा से न रहा गया वह भागी हुई सोमा के घर के बाहिर पड़ी हुई अपनी पुत्री को लाई और कहा देखो श्रीमहाराज सोमा ने इसको अपनी शोक समझ कर मारदी इस घड़े में वह साप है जिसने मेरी पुत्री को खा लई राजा की आज्ञा से सोमा ने सब लोगों के सामने घड़े में हाथ डाला और उस साप को खींच बाहर निकाला उसी समय वह फूलों की माला बन गया और वह हार अपने गलेमें पहन लिया राजा ने इस बात का बड़ा अचम्भा माना और वेश्या से कहा अब तू भी इसको हाथ में पकड़। सोमा ने उस हार को गले से निकाल जमीन पर धर दिया, वेश्या जब उसको उठाने को चली तो वह फिर साप के रूप में हो गया और जोर २ से फुकार मारने लग गया, सोमा ने कई बार उस नाग को उठा २ कर अपने गले मे डाला और वह फूल माला बनी हुई पाइ। राजा बोला—बुढिया तू क्यों नही इस को पकड़ती, वेश्या बोली- अन्नदाता ये सोमा तो मन्त्र तन्त्र जादू जानती है और उस के द्वारा ही यह साप फूल की माला हो जाता है, मन्त्र के

प्रभाव से तो विष भी अमृत हो जाया करता है राजा बोला तो तू भी कुछ अपना मन्त्र चला और मंत्र से सोमा को जीत। बुढ़िया बोली—मैं मन्त्र तन्त्र जादू वगैरह कुछ भी नहीं जानती यदि सोमा मेरी पुत्री को जीवित करदे तो न सोमा को निर्दोष और शुद्ध कह सकती हूँ। राजा बोला—सोमा तू कामलता को जीवित करके अपने इस कलंक को उतार सोमा बोली—श्रीमहाराज मेरा जिन धर्म दयामय है देखो मैं इसको धर्म की कृपा से कैसे सचेतन करती हूं, यह कह कर सोमा ने चौदह पूर्व का सार महा रत्न णमोकार मन्त्र को पढ़ कर कामलता के शरीर के हाथ लगाया, हाथ लगाते ही कामलता का विष उसी समय उतर गया और वह उस मूर्छित अवस्था से जाग उठी और सोमा को देख कर थर २ कांपने लग गई।

राजा बुढ़िया से बोला—पापनी तैंने मेरे सामने आकर यह इतना बड़ा झूठ क्यों बोला, अब मैं तेरे को मृत्यु का दण्ड दूंगा और मरने के बाद तेरे को नर्कादि के दु:ख न्यारे भोगने पड़ेंगे। राजा ने सिपाहियों को आज्ञा दी कि जल्दी ही इस पापनी को पकड़ो और इसको तलवार से मौत के घाट उतारो। राजा के हुक्म को सुनते ही सोमा हाथ जोड़ कर बोली अन्नदाता आप मेरे कहने से इसको अभय दान दो [इसके अपराध को क्षमा करो] सोमा के बहुत कहने पर बुढ़िया को अभयदान दिया, वसुमित्रा ने भी अपना अपराध स्वीकार किया राजा ने आप सोमा से अपने अपराध की क्षमा मांगी, धर्म के प्रभाव को देखकर नगर के लोगों ने तथा रुद्रदत्त वसुमित्रा और कामलता ने सोमा के चरणों में बार बार अपना मस्तक झुकाया, देवताओं ने पंच दिव्य प्रकट किये, स्वर्ग लोकमें

सोमा के सुयश का डङ्का बजा स्वयं देवराज 'इन्द्र' ने सोमा की महिमा गाई यह तो क्या बड़ी बात है धर्मात्मा जो भी चाहवे वही हो सकता है, धर्म के प्रभाव से प्रभावित होकर राजा सुभागी सेठ गुणपाल और नगरी के बहुत से धर्मात्मा पुरुष वन में जाकर जिनचन्द्र गुरु के पास मुनिदीक्षा धारण करली और रानी भोगवती सेठानी गुणवती सती सोमा ने नगरी की बहुत स्त्रियों के साथ गुरनी श्रीमत के पास जाकर जैन साध्वी की दीक्षा धारण की, वसुमित्रा कामलता और रुद्रदत्त आदि ने श्रावक के व्रत धारण किये जैन धर्म की खूब ही महिमा फैली। चन्दन श्री की यह वार्ता राजा मंत्री और चोर को बड़ी प्यारी लगी। चन्दन श्री इस कथा को सुना कर बोली स्वामीनाथ यह दृश्य मैंने प्रत्यक्ष अपने नेत्रों द्वारा देखा है इस को देख कर ही मेरे को दृढ सम्यक्त्व रत्न की प्राप्ती हुई है अर्हदास बोला जो तुमने आखों से देखो मैं भी उसका श्रद्धान करता हूँ और उसे चाहता हूँ और उस परही रुची व प्रेम करता हूँ सेठ की अन्य स्त्रियों ने भी उपरोक्त प्रकार कहा किन्तु छोटी स्त्री कुन्दलता बोल उठी— तेरी ये सब बातें झूठी हैं बहन चन्दन श्री तू क्यों इनको बालकों वाली बातें सुना २ कर बहका रही है, दृढ सम्यक्त्व रत्न क्या यों प्राप्त हुआ करता है, जो संसार में फसा रहे और फिर कहे कि मैं दृढ सम्यक्त्वी हू यह कितनी अज्ञानता की बात है 'कथनी के शूरे घणे, थोथे बान्धे तीर। जिनके चोट प्रेम की उनके विरले शरी.' राजा मंत्री अपने अपने मन में कहने लगे कि देखो यह कैसी पापनी है कि चन्दन श्री की आँखें देखी हुई बात को भी झूठ बतला रही है, इसको प्रातः काल ही गधे पर चढा कर शहर से बाहिर निकलवा दूंगा। चोर सोचने लगा

सोमा के सुयश का डङ्का बजा स्वयं देवराज 'इन्द्र' ने सोमा की महिमा गाई यह तो क्या बड़ी बात है धर्मात्मा जो भी चाहवे वही हो सकता है,, धर्म के प्रभाव से प्रभावित होकर राजा सुभागी सेठ गुणपाल और नगरी के बहुत से धर्मात्मा पुरुष वन मे जाकर जिनचन्द्र गुरु के पास मुनिदीक्षा धारण करली और रानी भोगवती सेठानी गुणवती सती सोमा ने नगरी की बहुत स्त्रियों के साथ गुरनी श्रीमत के पास जाकर जैन साध्वी की दीक्षा धारण की, वसूमित्रा कामलता और रुद्रदत्त आदि ने श्रावक के व्रत धारण किये जैन धर्म की खूब ही महिमा फैली। चन्दन श्री की यह वार्ता राजा मन्त्री और चोर को बड़ी प्यारी लगी। चन्दन श्री इस कथा को सुना कर बोली स्वामीनाथ यह दृश्य मैने प्रत्यक्ष अपने नेत्रों द्वारा देखा है इस को देख कर ही मेरे को दृढ सम्यक्त्व रत्न की प्राप्ति हुई है अर्हदास बोला जो तुमने आखों से देखो मैं भी उसका श्रद्धा और उसे चाहता हूँ और उस परही रुची व प्रेम करता हूँ स्त्रियों ने भी उपरोक्त प्रकार कहा किन्तु छोटी स्त्री कुन्दलता री ये सब बाते झूठी हैं बहन चन्दन श्री तू क्यों इनको बातें सुना २ कर बहका रही है, दृढ सम्यक्त्व रत्न हुआ करता है, जो संसार में फंसा रहे और फिर सम्यक्त्वी हू यह कितनी अज्ञानता की बात है 'कथनी के शूरा बान्धे तीर। जिनके चोट प्रेम की उनके विरले शरीर'। अपने मन में कहने लगे कि देखो यह कैसी पापनी है कि आँखें देखी हुई बात को भी झूठ बतला रही है, इसको ने पर चढा कर शहर से बाहिर निकलवा दूगा। चोर

कि यह बड़ी पापनी है, पाप जो होते हैं वह दूसरे के गुण लिया नहीं करते और न दूसरे की बड़ाई को सुनकर खुश होते हैं। अर्हदास अपनी स्त्रियों से बोले विष्णु श्री ने बोला—अहो तुम भी अपने दृढ़ सम्यक्त्व रत्न प्राप्त होने की कथा सुनाओ। विष्णु श्री बोली स्वामी नाथ जी सुनिये

❀ ४ विष्णु श्री का—कथा कहना ❀

भरत क्षेत्र के वच्छ देश में कौशाम्बी पुरी नाम की एक अति विख्यात नगरी है उस नगरी में ही मेरा जन्म हुआ था उस नगरी का 'अजीतजय' नाम का राजा था उसकी रानी का नाम 'सुप्रभा' था, राजा के मन्त्री का नाम 'सोमशर्मा' था और उसकी पत्नी का नाम 'सोमश्री' था मन्त्री को दान देने का बड़ा चाव था उसका विचार था कि हाथ से कुछ न कुछ अवश्य देते रहना चाहिये, हाथ का दिया अवश्य फल लायगा।

सवैया—दीन को दीजिये होत दयामन, मीत को दीजिये प्रीत बढाये। सेवक को दीजिये काम करे ... को दीजिये आदर पावे। शत्रु को ... नहीं, भाट को दीजिये कीर्ति ग... दीजिये सोच के कारण, हाथ को ... जाये। १।

किन्तु मन्त्री का दान अधिकतर कुपात्रों को ही ... सुपात्र का तो मिलना भी बहुत कठिन है हां यह जरूर ... कुपात्रों को दान देगा तो वह कभी न कभी सुपात्र को

एक समय का जिकर है कि कोसम्बी नगरी के बाहिर सूखे हुये बाग़ में एक 'समाधिगुप्त, नाम के मुनिराज एक महिना का व्रत (उपवास) लेकर बैठ गये उन गुरुदेव के तपके प्रभाव से आम निम्बू जामन खजूर आदि के सूखे वृक्ष एक दम से हरे हो गये और उनमें फल फूल पत्ते निकल आये वृक्ष सब हरे हो गये बाग में कोयल पचम स्वर से बोलने लगी सूखीं बावडियों में पानी भर आया कमल खिल उठे फुलों पर भवरे गु जारव करने लगे, जूही चम्पा चमेली मालती आदि के भी फूल खिल उठे। महात्माओं के तपोबल के आगे ऐसा कौनसा कार्य है जो कठिन हो। मुनियों में जो गुण शास्त्रों में बतलाये हैं वह सब गुण उन महात्मा में विद्यमान थे सन्त महात्मा के गुण—सत्यवक्ता हो धैर्यवान हो, पवित्र आचार विचार वाले हों, परम सतोषी हों, समता का भडार हों, इन्द्रियों का दमन करने वाला हो, विद्या शास्त्र मत्र यत्र तत्र आदि का जानने वाला हो। जब गुरु देव की महिने की तपस्या पूरी हो गई तो वह भिक्षा के लिये शहर को चल दिये, रास्ते में मंत्री का घर आ गया तो वह आहार के लिये उसके घर में प्रवेश कर गये, दातार में श्रद्धा भक्ति अलोभ दया शक्ति क्षमा ज्ञान आदि का जो गुण हुआ करते हैं वे सब गुण मंत्री में थे। मंत्री गुरु को आता देख कर चित में बड़ा प्रसन्न हुआ और हाथ जोड़ चरणों में मस्तक झुका शुद्ध भावों से भोजन दान दिया आहार दान के प्रभाव से देवताओं ने मंत्री के घर देव दुंदभी बजाई पंचदिव्य प्रघट किये 'अहो दान अहो दान' आदि शब्दों द्वारा मंत्री की प्रसंसा की इस दान की महिमा को देखकर मत्री विचारने लग कि मैंने अपनी उमर मे सोना चादी तिल हाथी रथ दास दासी भूमि घर कन्या कबीला गाय आदि नाना प्रकार का दान दिया, किन्तु ऐसी दान

की अतिसय तो कहीं भी देखने मे ही नहीं आई। गुरु भोजन लेकर बाग में चले आये और वहा एकान्त मे बैठकर उस आहार को चुका लिया (खा पी लिया) अब मन्त्री भी बाग मे आया और हाथ जोड नमस्कार कर गुरु के सामने बैठ कर विनय सहित बोला-हे गुरु देव आप मेरे को बतलावें कि दान कितने प्रकार का है, गुरु बोले मन्त्री जी दान मुख्यत चार प्रकार का है-

श्लोक-अभया चौषध ज्ञान, भेदतस्त चतुर्विधम्
दानं निगद्यते सद्भिः, प्राणिना मुपकारकम् ॥२॥

भा०—अभयदान, भोजन दान, औषध दान, विद्यादान। अभयदान देने वाला कही भी चला जाओ उसको कहीं भी किसी प्रकार का भय प्राप्त नहीं होता भोजन दान से उत्तमोत्तम सुख भोगों की प्राप्ती होती है औषध दान से शरीर निरोग रहता है विद्या दान से मतिश्रुत तथा केवल ज्ञान तक प्राप्त हो जाता है प्यारे मन्त्री जहा तक हो सके दान सुपात्र को ही देना चाहिये। [पाराशर स्मृति मुरादाबाद वाले शिवलाल गणेशी लाल ने अपने लक्ष्मीनारायण प्रेस में सन् १९०५ ई० के छपे प्रथम अध्याय श्लोक ६५ पृ० ६ मे लिखा है कि---

श्लोक-सुक्षेत्रे वापय द्बीजं, सुपात्रे निक्षिपेद्धनम्। सुक्षेत्रे च सुपात्रे च, ह्युप्तं तन्न विनश्यति ॥३॥

भा०—बीज को अच्छे खेत में बोवे और सुपात्र को दान देवे अच्छे खेत में बोया हुआ बीज और सुपात्र को दिया हुआ दान कभी निष्फल नहीं होता। कुपात्र जो खा पी कर पाप करे उसे कुपात्र कहते हैं कुपात्र को दान देना ऐसा व्यर्थ है जेस साप को दूध पिलाना]

श्लोक–सुपात्र दानाच्च भवेद्धनाढ्यो, धन प्रभावेण करोति पुण्यम् । पुण्य प्रभावात् सुरलोकवासी, पुनर्धनाढ्यः पुन रेव भोगो ॥४॥

भा०—सुपात्र को दान देने से व्यक्ति धनवान होता है धन होने से वह पुण्य करता है पुण्य के प्रभाव से स्वर्ग लोक के जाकर सुख भोगता है स्वर्ग के सुख भोगकर मनुष्य भव को प्राप्त कर सर्व सुखों का भोक्ता बनता है।

श्लोक–कुपात्रदानाच्च भवेद्दरिद्रो' दारिद्र दोषेण करोति पापम् । पाप प्रभावान्नरकं प्रयाति, पुनर्दरिद्र पुनरेव पापी ॥५॥

भा०—कुपात्र को दान देने से मनुष्य दरिद्री होता है दरिद्री होने से वह पाप करता है पाप करके नरक में जा पड़ता है नरक से निकल कर मनुष्य भवमे आकर दीरिद्री होता है दरिद्र वस हो पाप कर फिर नरकको जा दुःख भोगता है।

मन्त्रि हाथ जोड़ कर बोला–हे गुरु देव जैसा दान का प्रभाव आज मैंने प्रत्येक्ष आखों से देखा और फल प्राप्त किया क्या ऐसा दान का फल और भी किसी को मिला है। गुरु कहने लगे कि हा भाई 'वैनातट' नगरी के 'विश्वभूति- नाम के ब्राह्मण को दान का फल प्राप्त हुआ था उसकी कथा मैं तेरे को कहता हू।

दक्षिण दिशा में एक वैनातट नाम की नगरी थी उस नगरी का राजा सेनाप्रभ था और उस की रानी का नाम सोमप्रभा था। वह राजा ब्राह्मण

देशों का दरन करता। एक दिन राजा ने अपने मन में विचार किया मैंने न्यायनीति से बहुत सा धन उपार्जन किया अब इस धन को दान पुन्य में लगाना चाहिये नहीं तो इसको नष्ट होते देर नहीं लगे गी यह विचार कर राजा ने "बहु सुवर्ण,, नाम का यज्ञ रचवाया यज्ञ के आदि में बीच में ार अन्त में ब्राह्मणों को खूब ही दिल खोल कर दान दिया यज्ञशाला पासही एक विश्वभूति नाम के ब्राह्मण का घर था, वह ब्राह्मण देवता पने नियम धर्म में बड़ा पक्का तथा बड़ा सतोषी था और दान देने में ह बड़ी श्रद्धा रखता, उसकी पत्नी का नाम "सती" था वह पतिव्रता दगुणों से युक्त थी) पंडित प्रति दिन स्वय जंगल में जाकर जव गेहूँ चने आदि के दाने चुग कर लावे और उनको भूनकर उसके चार लड्डु बनावे। एक लड्डु अग्नि देव की भेट करे दूसरा आप खावे और तीसरा अपनी घरवाली को देवे चौथा अतिथि को देवे। थोड़ासा दान देनाभी अच्छा है दान यह न विचारेकी जब मेरे पास मन चाहा धन हो जायगा तबही म कुछ दान पुण्य करू। थोड़ेसे धन को क्या दान पुन्य में लगाऊ मनकी इच्छा नुसार तो किसी को धन मिला ही नहीं करता दान पुन्य करना विश्वभूति का नित्य का काम था एक दिन विश्वभूति के घर "पिहिताश्रव,, नाम के मुनि भिक्षा के लिये आगये, गुरु को आते देख पंडित जी सात आठ पग सामने सेवा में गया और हाथ जोड़ चरणों में पड़ा उनको बड़े भाव भक्ति पूर्वक घर लाकर अतिथि के निमित्त का ो लड्डु था वह वहराया दिया और अपने खानेका भी दे दिया और फिर अपनी घरवालीकी तर्फ देखने लगा सती साध्वी ब्राह्मणीने भी भक्ति पूर्वक झट खड़ी हो अपने खाने का लड्डु महात्मा जी को दे दिया इससे ब्राह्मण देवता बड़े प्रसन्न हुये। आहार दानसे देवताओंने आकाश

मार्ग से रतनों तथा फुलों की वृष्टी ी सुगन्धित पवन चलाई देव दुन्दमी बजाई, जय हो विश्वभूति ब्राह्मण की ऐसे जय २ का। शब्दों से आकाश मण्डल को गुजा दिया मुनि दान से ब्राह्मणने सन्सार परत किया और पुन्य का बन्धन किया देवताओं ने जो आकाश मार्ग से रत्न वर्षाये थे उन में-से कई रत्न पासवाले यज्ञ मण्डप में जा पड़े यह देखकर ब्राह्मण राजा से कहने लगे श्री महाराज ये देखिये-यह आपके यज्ञ के प्रभावा से खिचे हुये देवता आ रहे हैं यही आपके यज्ञ मण्डप पर रत्न वर्षा रहे हैं यह आपके यज्ञ का ही फल है यह सुनकर राजा बड़ा प्रसन्न हुआ और ब्राह्मणों से बोला-तुम इन रतनों को उठाकर मेरे पास लाओ राजा की आज्ञा को सिरो धार्य कर के जोंही पण्डित लोग रतनों को उठाने लगे कि रत्न उन्हों को आग के अङ्गारेसे भी अधिक गर्म मालूम हुये हाथ जल जानेके भयसे वह उनका न उठा सके पास में खड़े हुये एक विद्वान ब्राह्मण देवता ने राजा से कहा श्री महाराज यह आपके यज्ञ का फलनहीं है किन्तु यह है विश्वभूति ने जो निग्रन्थ महात्मा को दान दिया उसका फल यह सुनकर हलु कर्मी राजा सोमप्रभने दिल मे विचारा कि विश्वभूति तो बड़ा ही गरीब ब्राह्मण है इसने कैसे आहार दाम दिया जैसे बन्ध्या के पुत्रहोना असम्भव है ठीक इसही प्रकार ऐसी गरीबी हालत में दानका देना भी कठिन है अब राजा विश्वभूति के पास गया आ. हाथ जोड़कर बोला पण्डित जी मुनिदान का जो फल आपको मिला है उसका आधा [illegible] कृपा कर मेरे को देदो विश्वभूत बोला-श्री महाराज आप मेरे को इस के बदले मे क्या दोगे राजा बोला मैं आपको अपने बहु सुवर्ण यज्ञ का आधा फल और खाने खरचनेको बहुत सा धन दूंगा यह सुनकर पण्डित जी कहने लगा स्वर्ग और मोक्ष का देने वाला जो दान

है भक्त! मैं उसका फल आपको कैसे दे सकता हूं और भला! आप विचार के देखें कि क्या कभी ऐसे देने से किसी को कुछ फल मिला है जो हाथ से दानपुन्य करेगा वही उस दानपुन्य के फल को पावेगा अभय दान आहार दान औषध दान विद्या दान इन चारो दान दान का फल किसी ने बेचा नहीं है आर न कोई अब बेच सकता है और न कोई भविष्य काल मे बेचेगा ही। पडित देव का यह कोरा सा उत्तर सुनकर राजा वहा से चलकर जगल मे पिहिताश्रव गुरु के पास जा हाथ जोड़ सामने बैठकर बोला हे गुरुदेव-आप मेरे को चारो प्रकार के दान का महात्म्य सुनाने की कृपा करें। गुरु बोले-हे राजन् सब दानो में अभयदान ही सब मे चढ बढ के है जो मरते हुए जीव को बचादे अथवा भयभीत को निर्भय करदे तो वह हमेशा के लिये निर्भय हो जाता है जिसका सब प्राणियों की रक्षा मे चित है या मरतेहुए जीवो को जो बचाता है अथवा भयभीत का भय मिटाता है उसका तो कहना ही क्या है। दया लाकर जो जीवो को अभयदान देता है वह सब तरह के भयों से छूट जाता है अभयदान देने वाला दूसरे जन्म में निर्भय होता है। इस ससार में अपनी बड़ाई के लिये तथा स्वर्ग के लिये लोग अनेक प्रकार के दान करते हैं किन्तु जीवों की रक्षा करने वाले तो कोई विरले ही होते हैं बड़े बड़े यज्ञो का फल तो समय पाकर क्षय भी हो जाता है किन्तु अभयदान का फल तो कभी क्षय होता ही नहीं। जो मनुष्य समर्थ होकर भी मरते हुये जीव की रक्षा नहीं करता वह नरक का अधिकारी हो जाता है जो मनुष्य अपने शरीर को जीव रक्षा और परोपकार मे नही लगाता उसका शरीर पालन पोषण करना व्यर्थ है। अभयदान पर सिंहरथ राजा की सिंगारदेवी सौभाग्य मजरी विपुलादेवी और अनुपमदेवी की कथा समजना

मेघरथ राजा ने कबूतर की रक्षा के लिये अपने प्राणों तक की कुछ परवाह न की, जिसका फल यह हुआ कि वह वहा तीर्थं कर गोत्र उपार्जन कर छब्बीसवें देवलोक मे जाकर देवता हुआ और देवायु भोग कर 'हथिनापुर में विश्वसेन राजा की पटरानी अचलादेवी की कुक्षी मे आकर अवतार लिया गर्भ में आते ही देश भर मे जो मृगी का रोग फैल रहा था वह एक दम से मिट गया जन्म होते ही ससार भर में शान्ति का राज्य छा गया शान्ती कर्ता होने से भगवान का नाम शान्ति कु वर रखा गया वह शान्ति कु वर मडलिक चक्रवर्ती के पद को भोग कर दीक्षाले केवल ज्ञान प्राप्त कर तीर्थंकर पद दीपाकर अन्त मे मोक्ष मे जा विराजमान हुए। दूसरा अन्नदान है जिसने आहार दान दिया समझो कि उसने सब कुछ दिया। गृहस्थों का कर्तव्य है कि वह स्वय श्रद्धा भक्ति पूर्वक अपने हाथ से दान करे जिसको दान देवे दातार उसके कुशलता के समाचार पूछे, जाते समय दूर तक पहुँचाने के लिये जावे। एक महा प्रतापी 'रन्तिदेव' नाम का राजा था, वह ब-1 दयालु और धर्मात्मा था, उसने अपना धन माल राज्यपाट सब गरीबों को बाट दिया यहा तक कि वह अपने परिवार को साथ ले जगल मे चला गया। जंगल में भी वह स्वयं भूखा रहकर जो कुछ मिलता वह भूखों को बाट दिया करता था। कहते हैं कि रन्तिदेव को अड़तालीस दिन तक भोजन तो कहा पीने को पानी तक नहीं मिला भूख प्यास मे पीड़ित हो राजा बलहीन होगया मारे भूख के उसका शरीर कापने लग गया, उनचास (४९) वें दिन प्रात काल ही राजा को भोजन मिला, अड़तालीस दिन के व्रत के कारण राजा परिवार सहित दुर्बल हो गया था रोटी की कीमत भूखा मनुष्य ही जान सकताहै, जिसके सामने मेवा मिठाइयों के आगे से आगे ढेर लगेरहते हो

उनके बिचारे गरीबों के भूखे पेट की ज्वाला का क्या पता । कभी वह सेठ साहूकार राजा महाराजा भूखा रहकर देखे तब उनको मालूम हो सकता है । राजा रन्तिदेव परिवार सहित जीमने के लिये बैठना ही चाहता था कि इतने में एक भूखा आ गया उसको देखकर राजा ने उसको भोजन में से हिस्सा दिया और बाकी बचे हुये अन्न को खाने लगे तो दूसरा भूखा आ गया आदर और भाव भक्ति से उसको भी भोजन खिला दिया अब राजा और उसका परिवार भूखा रह गया बस पास में प्यास मिटाने के लिये जरा सा पानी बच गया था इतने में एक प्यासा आ गया और बोला मारे प्यास के मेरे प्राण निकलने को तैयार हो रहे हैं कृपा कर मेरे को जल पिलावें । राजा ने अपनी और अपने परिवार के दुख की कुछ परवाह न की दया भाव ला वह जल भी उस प्यासे को पिला दिया जिसके पास एक क्रोड़ रुपया हो यदि वह एक क्रोड में से एक लाख का दान करदे तो कोई कठिन बात नहीं है क्योंकि निन्याणवें (६६) लाख तो फिर भी उसके पास बचे रहेंगे, कठिन काम तो भूखे का है जो भूखे को अन्नजल मिले वही आगे से आगे भूखे को बाट दे । रन्तिदेव के इस कठिन त्याग को देख कर देवताओं ने आकाश मार्ग से फूल बरसाये पंच दिव्य प्रकट किये जय २ शब्दो से राजा के त्याग और दान की प्रसंसा की और उसके सब दु:ख मेट दिये ।

तीसरा औषध दान है, औषध दान से शरीर निरोग रहता है । कहा भी है कि 'पहला सुख निरोगी काया' रोगियो को औषध न मिलने से रोगी का शरीर नष्ट हो जाता है, शरीर नष्ट होने से ज्ञान नही रहता ज्ञान न रहने से मुक्ति भी नहीं मिलती, चतुर पुरुषों का कर्तव्य है कि औषधी दान द्वारा अपने जन्म को सफल बनावें । रेवती सेठानी ने

भगवान श्रीमहावीरदेव को औषध दान दिया था जिससे उसने तीर्थंकर गोत्र काउपार्जन किया। चौथा विद्यादन है—विद्या आप पढ़े और दूसरे को पढ़ावे भगवान की पवित्र वाणी का घर २ में प्रचार करे विद्यादान से मोक्ष के अविचल सुखो की प्राप्ती होती है भय से तथा प्रत्युपकार की इच्छासे दान नहीं देना चाहिये नाचने गाने वालो तथा हसी दिल्लगी करने वालेभाड आदि को जो देता है वह दान नहीं कहलाता और भी दान दो प्रकार का सुपात्र दान दूसरा अनुकम्पा दान भवगत भक्ति में जो अपना समय बितावें एसे धर्मात्मा को जो दिया जावे वह सुपात्र दान कहलाता है, अन्धे पागुले अपाहिज को जो दिया जावे वह अनुकम्पा दान कहा जात है।

स गुरु के उपदेश को श्रवण कर राजा ने मुनि श्री जी के पास श्रावक के बारा व्रत धारण कर लिये और चारो प्रकार का दान खूब दिल खोल कर दिया कुछ वर्षों के बाद राजा इस असार संसार को त्याग के संयम धारण कर उग्र (घोर] तपकर अन्त में केवल प्राप्त कर मोक्ष को गया।

मन्त्री सोम शर्मा ने गुरु के मुख से बहु सुवर्ण यज्ञ,, की कथा को सुनकर श्रावक के बार व्रत धारण कर लिये और जाते समय गुरु के सामने यह प्रतिज्ञा भी करली कि मै आज से लोहे का कोई भी शस्त्र अपने पास नहीं रखू गा मेरा तो रक्षक वही जिनेन्द्र देव होगा जोकि सब का रक्षक है। यह कह मंत्री घर पर आ काष्ठ की तलवार बनवा म्यान में रख राज दरबार में आने जाने लगा। ऐसे रहते हुए मन्त्री जी को वर्षो के वर्ष बीत गये किन्तु राजा को इस बात का पता न लग सका कि मन्त्री के पास काष्ठ की तलवार है। एक दिन मन्त्रि के किसी दुश्मन को इस

वह काष्ठ की तलवार ही अपने पास क्यों रखता। आप तो उसका विश्वास करते हो और वह वक्त पर आपको धोखा देगा इस बात को सुनकर राजा को क्रोध हो आया समय देख राजा ने मंत्री को, शुभटों को और राज पुत्रों को दरबार में बुलवाया। मन्त्री राज पुत्रों तथा शुभटों के सामने अपनी म्यान में से तलवार निकाल कर दिखाई सबने एक स्वर से राज की तलवार की प्रसंसा की अब राजा ने एक तरफ से सब राज पुत्रों और शुभटों की तलवार देखनी शुरू करदी सबने अपनी २ तलवार दिखलादी, तलवारों देखकर राजा अति प्रसन्न हुआ और सब को यथा योग्य इनाम दिया। अब राजा ने मन्त्री से कहा मन्त्री जी आप भी अपनी तलवार मेरे को दिखलाओ, मैं भी देखूं कि आपकी तलवार कितनी बढ़िया है। राजा की बात को सुनते ही मंत्री जान गया कि किसी मेरे दुश्मन ने राजा से मेरी काष्ठ की तलवार की बात कहदी हैं यदि सबके सामने राजा मेरी काष्ठ की तलवार देख लेगा तो न मालूम सबके सामने मेरे को क्या कहेगा यह सोचकर मन्त्री अपने देव गुरु धर्म का स्मरण कर अपने दिल में कहने लगा कि यदि मेरे दिल में देव गुरु धर्म की पक्की श्रद्धान होती यह काष्ठ की तलवार इसी समय लोहे की बन जावें यह कह झट से उसने म्यान में से काष्ठ की तलवार खैंची-वह सूर्य के समान तेज वाली हो गई अथवा यों कहिये कि बिजली की तरह चमकती हुई लोह मयी दिखाई दी। मन्त्री की तलवार को देख कर सब आश्चर्य में पड गये। कचहरी में बैठे हुये चुगल खोर पर राजा की दृष्टि पडी और बोला-अरे दुष्ट तू तो कहता था मंत्री के पास काष्ठ की तलवार है। मेरे सामने भी तैंने इतनी बड़ी भारी झूठ बोली, चुगलखोर देखता का देखता रह गया। मन्त्री हाथ जोड़कर बोला-श्री महाराज -सज्जन पुरुष

लता ने भले ही उत्तम घर में जन्म भीले लिया और ब्याही भी यह अच्छे घर मे आई किन्तु पूर्व कर्म के उदय ने इसको अच्छी बात भी बुरी लगती है अर्हदास नाग श्री ने बोला–भद्रे अब तुम भी अपने दृढ सम्यक्त्व रत्न प्राप्ती की कथा सुनाओ–नाग श्री बोली स्वामीनाथ जी सुनिये–

❀ ५ नाग श्री का...कथा कहना ❀

काशी देश में एक बनारसी नाम की अति प्रख्यात नगरी है उस नगरी में ही मेरा जन्म हुआ था बनारसी नगरी में एक चन्द्र वंशीय, "जितारी" नाम का राजा था उसकी रानी का नाम" कनक चित्रा था रानी के उदर से उत्पन्न हुई एक पुत्री थी जिसका नाम मु डिका देवी था मु डिका को एक बड़ी भारी आदत पड़गईथी कि वह हर रोज मिट्टी खाया करती थी मिट्टी खाने से उसके शरीर को रोगने घेर लिया, रोग से वह हर समय पीड़ित रहने लगी।

राजा के मन्त्री का नाम सुदर्शना था और उसकी धर्म पत्नी का नाम सुदर्शना था। एक दिन राज पुत्री मु डिका के पुन्योदय से सुपभश्री नाम की जैन साध्वी बनारसीनगरी में पधारी नगरी के नर नारी सब गुरनी के दर्शनों व उपदेश सुनने को आये और मुंडिका भी अपनी माता जी के साथ गुरनी के पास आई गुरनी के महा प्रभाव शाली

मंत्री की स्त्री सोमश्री और शहरकी वहुतसी स्त्रियोंने "श्रीमती" आर्या के पास दीक्षा लेली वहुतसे शहर के नर नारियोंने श्रावकके व्रतधारण किये

विष्णुश्री अर्हदास से कहने लगी सेठ जी यह धर्म का प्रभाव मैंने

· देखा है इस से ही मेरे को दृढ सम्यक्त्व रत्न की प्राप्ती हुई सेठ अर्हदास बोला–प्रिये जो तूने आखों से देखा है, में भी उसका श्रद्धान करता हू उसे चाहता हूँ और उस में रुचि करता हू जिन धर्म की महिमा ही ऐसी है। सेठ की अन्य स्त्रियों ने भी विष्णुश्री की कही हुई बात की सराहना की किन्तु छोटी स्त्री कुन्दलता बोला–जो तैंने कहा सो सब भूठ है, ऐसी भूठी बात को सच्ची बना के सुनाने में न मालूम तेरे को शर्म क्यों नहीं आती मैंतेरी इस बातका न श्रद्धान करती हू, और न मे चहाती हूँ और न मेरेको तेरी इनबातो में रुचिहै। राजा मन्त्रि विचारने लगे कि देखो यह कैसी दुष्टा नारी है, विष्णुश्री की प्रत्यक्ष आखों देखी हुई बात को भी यह भूठ बतला रही है बस प्रातः काल होते ही इसको गधे पर चढवाकर शहर से बाहर निकलवा दू गा। चोर सोचने लगा कि यह सत्य है कि ऊची जाती का होकर भी दुष्ट अपने स्वभाव को नहींछोडता यदि अग्नि चन्दनकी लकडी की भी हो तो वह अवश्य जलावैगी जो जिसका स्वभाव होता है वह भला कैसे बदल सकता है कहा भी है कि–

श्लोक–काकस्य गात्रं यदि कांचनस्य, माणिक्य रत्नं यदि चंचु देशे। एकैक पक्षे ग्रथित मणिनां, तथापि काकोनतु राज हंसः॥ ९॥

भा०–यदि कोई सज्जन मनुष्य काग के शरीर को सोने का बना देवे चूंच में मोती और पाखों में मणियाजड़ देवे तो भी काग जो है वह काग ही रहेगा वह कभी राज हंस बनही नहीं सकता ऐसेही इस कुन्द

अच्छे कुल के राजा व राजकुमारों को ही मैं अपनी पुत्री न दे सका तो भला उस जातिहीन भगदत्त को कैसे दे सकता हू। इस नीच जाति वाले भगदत्त को छोटा सा राज्य प्राप्त होने पर इतना घमण्ड हो गया कि वह अब मेरी पुत्री के लेने की भी इच्छा करने लग गया'अच्छे कुल के जो होते हैं वह दूत द्वारा ऐसे भद्दे समाचार नहीं कहलाया करते नीति शास्त्र में ठीक ही कहा है कि–

श्लोक–दिव्यं आम्र रसं पित्वा, गर्वं नो याति कोकिलः।
पित्वा कदम पानीयं, भेको टर टरायते ॥ १ ॥

भा०—कोयल बसन्तऋतु में आम्रकी मजरी (आम के रस को) पी कर भी अहकार नहीं करती किन्तु वह तुच्छ स्वभाव वाला मिडक कीचड वाले गन्दे पानी को पीकर टरड्ड टरड्ड पुकारता ही रहता है। अये दूत तेरा राजा भी मिडक की तरह ही है। दूत बोला–राजन् आप देखने में तो बड़े अच्छे मालूम होते हो किन्तु बातों से मालूम होता है कि आप बुद्धि हीन हैं। जिस भगदत्त के बड़े २ राजामहाराजा आकर चरण पूजते हैं आप ने उनको नीच कैसे बतला दिया, सज्जन वही होता है जो जन्म को न देखकर गुणों को देखता है, देखिये पद्म कमल कीच से उत्पन्न होता है तो क्या वह आदरनीय नहीं होता, इस लिये आप मेरा कहा मानो और अपनी पुत्री हमारे राजा को ब्याह दो। जितारी बोला–यदि भगदत्त युद्ध में सन्मुख आवे तो मैं उसको रणाँगण [युद्ध भूमि] में सब मनोवाछित दूंगा।

दूतने जाकर भगदत्त से सब समाचार कह सुनाये, सुनते ही राजा क्रोध में भर गया और मंत्री को बुला कर सब बातें कही और पूछा

अतिचार रहित व्रतों के प्रभाव से मुंडिका के शरीरका सब रोग जातारहा और वह निरोग हो गई एक दिन वह गुरनी के पास आकर कहने लग कि श्री गुरनी जी महाराज जिस दिन से मैं जैन धर्म के व्रत करने लगी हूँ बस तब से ही मैं तो आनन्द में हूँ और मेरी देही का रोग भी सब चला गया है गुरनी जी बोली बाई जो शुद्ध सम्यक्त्व रत्न का पालन करती है उसको स्वर्ग के सुख प्राप्त होते हैं चक्रवर्ती बलदेव वासुदेव आदि की ऋद्धि मिलती है और कहा तक कहिये वह केवल ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष तक पालेता है तो इस मालूली से रोग के मिटने की तो बात ही क्या है–

मुन्डिका घर आई—जब वह वर योग्य हुई तो जितारी राजा ने उसके विवाह केलिये स्वम्बरमडप रचावाया और बड़ेराजा महाराजा तथा उनके पुत्रों को बुलाया किन्तु मुन्डिका के एक भी वर पसन्द नहीं आया अर्थात् उसने किसी को नहीं बरा और स्वयम्बर मण्डप से अपने घर को चली आई और बाहिर से आये हुये भी सब अपने २ स्थान को चले गये। उस समय तुण्ड देश के चक्रकोट नाम के नगर में 'भगदत्त' नाम का राजा राज्य कर रहा था उसकी रानी का नाम 'लक्ष्मी मती' था उसके मंत्री का नाम 'सुबुद्धि' था उसकी घर वाली का नाम 'गुणवती' था। राजा भगदत्तरूप लावण्य (चतुराई) आदि गुणों में भर पूर था, दान देने में वह कुबेर के समान था, किन्तु था वह जातिहीन था एक दिन भगदत्त ने मुण्डिका के रूप लावण्य की प्रसंसा सुनी और विचाराकिया कि मैंअपना विवाह इस सेही कराऊंगा, उसी समय राजाने जितारी के पास दूत भेज दिया और दूत ने जा भगदत्त का सब संदेशा जितारी को कह सुनाया। उत्तर में राजा जितारी बोला–अरे दूत अच्छे

नगरी के जितारी राजा को किसी खबरदार ने खबर दी कि श्रीमहाराज भगदत्त सेना लेकर आप के ऊपर चढ़ कर आ रहा है।

आप उसको जीतने का उपाय कीजिये, ये सुनकर राजा बोला—अरे है कौन वह भगदत्त जो मेरे ऊपर चढाई कर सके। सिंह पर हिरणों ने राहु केतु पर चन्द्रमा तथा सूर्य ने घोड़े पर गधे ने, बिलाव पर मुस्सों ने गरुड़ पर सर्पों ने कुत्तों पर बिल्ली ने, काल पर प्राणियों ने और मेना पर कौओंने कभी जय पाई है, यह बात न पहले कभी हुई न और कभी होने की न यह बात देखने तथा सुनने में आई यदि भगदत्त मेरे ऊपर चढ—कर भी आजावे तो क्या बात है। जब तक सूर्योदय न हो तब तक ही अन्धकार अपने पग जमाये खड़ा रहता है किन्तु सूर्योदय होते ही जैसे अन्धेरे का खोज नहीं पाता ठीक इसही प्रकार जब मे खड़ा होऊंगा तब भगदत्त भागता ही नजर आयेगा।

यह तो बात कह ही रहा था कि इतने मे खबर लगती है कि भगदत्त ने काशी देश को घेर लिया है। ये सुनते ही जितारी सेना लेकर चढ खड़ा हुआ मार्ग मे अनेक कु सकुन हुए, ये अप सकुन क्या हुए मानों यह सूचना दे रहे थे कि राजा तुम युद्ध स्थल में मत जाओ नहा तो हार कर आओगे। सुदर्शन मन्त्री बोला—श्रीमहाराज आपको जो यह कुसकुन हो रहे हैं इनका भी तो कुछ विचार करना चाहिये। मेरे ख्याल से तो भगदत्त के साथ, 'सुण्डिका' दाई का विवाह कर देना ही अच्छा है, ऐसे करने से आपा सब सुख पूर्वक जीवन बीता सकेंगे, आप व्यर्थ के झगड़े मे पड़कर क्या लोगे। पुण्य हीन राजा बोला—मन्त्री जी घबराता क्यों है ? मेरी तलवार की चोट को सहने वाला कौन है। जैसे बज्र के प्रहार को सिर में सहना हाथों से समुद्र को तीरकर पार होना; आग की सय्या पर सुख की नीन्द सोना, हर एक ग्रास मे जहर को खाना कठिन है ठीक

अपने को अब इसके लिये क्या करना चाहिये। मन्त्री बोला—श्री महाराज सब से पहिले आप अपनी सैन्य कों संभालो' सैनकों को खूब इनाम दो जिस से इनाम पाये हुये शुभट युद्ध स्थल में दिल खोल कर लडेंगे और फिर युद्ध में आपकी जीत होगी। राजा बोला—मन्त्री तुमने जो कहा वह मेरे हित के लिये कहा।

मन्त्री के कथनानुसार राजा ने सब शुभटों को इनाम दिया अब राजा ने युद्ध के लिये तैयारी कर महल मे रानी लक्ष्मीवती के पास आया और युद्ध के लिये चढाई का समाचार कहा—रानी बोली स्वामी नाथ आप क्यों व्यर्थ हठ कर रहे हो, जहा दोंनो पक्ष वालों की सामानता होती है वहीं विवाह-और मित्रादि की बातें हुआ करती हैं। जबकि आपकी और जितारी की सामानना नहीं है तो फिर आप क्यों विवाह के लिये इतने चट पटा रहे हो, आप मेरा कहा मानो और युद्ध के विचार को छोडो। भगदत्त बोला—अरी-भोली तू इन बातों को नहीं समझती। कोई साधारण मनुष्य तो कहता तो मैं उसका कोई ख्याल नहीं करता किन्तु जितारी को अपने बल का बड़ा घमण्ड है, उसने अभीमान में आकर ही मेरे को युद्ध स्थल में बुलाया है। यदि अब मैं चुप होकर बैठ जाऊंगा तो मेरे सेवा मे रहने वाले राजा लोग मेरे को नीची निगाह से देखेंगे। ससार में शूर वीरों का जीना ही सार्थक है, झूठा अन्न खाकर तो काग कुत्ते भी जीते रहते हैं, ऐसे कायर होकर जीने में कुछ लाभ नहीं। यह कह राजा मन्त्री और सेना को साथ ले जितारी राजा पर चढ़ खड़ा हुआ

राजा के प्रयाण करते समय रानी ने कहा—प्रभू आपका मार्ग में कल्याण हो।

भगदत्त को मार्ग में अनेक शुभ सकुन हुए। उधर बनारसी

ऐसा काम करो जिस से आप भी आनन्द से जीवन विता सको और ससार में आप की कीर्ती भी जैसे की तैसी वनी रहे।

दूत के वचन सुनकर राजा को वड़ा क्रोध आया और वोला— अरे दूत क्यों धणी वक २ कर रहा है, तेरे राजा के वल को मैं युद्ध स्थल मे देखूंगा, जो न होना हो वह भला ही क्यों न हो जावे किन्तु मैं अपनी पुत्री भगदत्त को न दूंगा, महा पुरुष जिस वात की प्रतिज्ञा कर लेते हैं फिर उसको वह छोडा नही करते, उनका सर्वस्व नाश भी क्यों न हो जाए। वचन में वन्ध के हरिश्चन्द्र राजा ने चाण्डाल के घर जा कर पानी भरा, वचन में वन्धके भगवान श्रीरामचन्द्र ने वन में जाकर वास किया, मैं चन्द्रवन्शी होकर भला क्यों अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग करू। सुदर्शन मत्री वोला—श्रीमहाराज क्यों न इस वकवादी दूत को मरवा दिया जावे। राजा वोला—मत्री जी! दूत का मारना उचित नहीं। दूत के मारने से राजा और मत्री दोनों नरक के अधिकारी हो जाते हैं। राजा की आज्ञा से सिपाहियों ने दूत का काला मुख कर धक्का देकर सेना से वाहिर निकलवा दिया।

दूत भगदत्त के पास आया—राजा वोला अरे दूत यह तेरा काला मुख किसने किया। दूत वोला—अन्नदाता— ये काला मुख मेरा नहीं किया ये काला मुंह आपका ही जितारी ने किया है, जितारी अपने वाहुवल के सामने किसी को कुछ समझता ही नहीं और वह आप के साथ युद्ध के लिये तैयार है। दूत के कथन को सुनकर भगदत्त ने एक दम लड़ाई का वाजा वजवा दिया, दोनों राजाओं की सेना रणागण मे आ डटी आज्ञा पाते ही हाथी से हाथी घोड़े से घोड़ा, रथ मे मे रथ, पैदल से पैदल भिड़ गये और आपस मे मार काट होने लगी अन्त में भगदत्त की सेना ने जितारी की सेना को भगाय ही दी। सेना को भागती देखकर

इसही प्रकार मेरी तलवार की चोट को सहना है।

मंत्री बोला—अन्नदाता भगदत्त के पास सेना बहुत बड़ी है और सैनिक बड़े शूरवीर एव पूरे साहसीक हैं, भगदत्त के पास युद्ध की सामग्री भी काफी है, आप इन सब बातों को भी खूब अच्छी तरह से सोच विचार लेना।

राजा बोला—मंत्री तुमने कहा सो ठीक है किन्तु सिद्धि और जय तो प्राक्रम से ही मिला करते है केवल अधिक सामग्री से नहीं। यह कह जितारी अपनी सेना ले अपने देश की हद पर जा डेरे डाल दिये। इधर भगदत्त का मत्री बोला—श्रीमहाराज एक बार मेरे कहने से आप अपना दूत जितारी के पास भेजिये। यह युद्ध का नियम होता है कि—पहले दूत को भेजा जावे, दूत जाकर राजा को समझावे, यदि वह दूत का कहा न मानेगा तो फिर वही करना जो आप विचार कर आये हो।

मत्री की सलाह को मानकर भगदत्त ने 'दिवाकर' नाम के दूत को बुलाया, वह दूत बात कहने में बडा चतुर था बात को याद रखने वाला, बोलने में बड़ा हुशयार था, दूसरों के अभिप्राय को समझने वाला वीर धीर महा साहासीक सत्यवादी था, भगदत्त ने दूत को सारी बातें समझा दी। अब दूत जितारी के पास गया और हाथ जोड़ कर बोला—श्रीमहाराज आप अपनी पुत्री मुण्डिका का विवाह हमारे राजेश्वर भगदत्त के साथ कर के सुख से राज्य करें। यदि आप मेरी इस बात को न मानोगे तो आप के लिये अच्छा न होगा, इस बात के न मानने से आपका और आपके राज्य का सत्यानाश हो जायगा। अनुचित कार्य का प्रारम्भ करना, सज्जनों से विरोध करना, बलवानों से वैर करना, [illegible] का निरनाद करना, ये चारों मृत्यु के द्वार हैं। इस लिये बलवान [illegible] के साथ आपको युद्ध करना उचित नहीं है, राजन्

उस महलों के बीचों बीच एक सिंहासन रचकर उस पर सती को बैठा दी।

अब मुण्डिका देवी सिंहासन पर बैठी हुई ऐसे सोभा पाने लगी जैसे कि अग्निकुण्ड का पानी करने के पश्चात् सीता सती सिंहासन पर बैठी सोभा पाती थी। देवों ने देव दुन्द भी बजाई पंच दिव्य प्रकट किये धन्य सती मोटी सती ऐसे शब्दों द्वारा आकाश को गुञ्जा दिया और कहा—सती जी ? आप घबराना मत, हम भगदत्त का इन्तजाम करदेंगे अब भगदत्त के सैनिक लूट खसोट मिचाते हुये राजमहल की तरफ आने लगे तो देवताओं ने सब सैनिकों के पग स्थम्भन कर दिये उनके पग स्थम्भरूप हो गये। सैनिकों के पग स्थम्भन की तथा मुण्डिका के सत्य शील -महिमा सिपाहियों द्वारा सुनकर बड़ा आश्चर्य पाया और भागा हुआ वहा देखने के लिये आया सती के सत्य की महिमा को देख कर भगदत्त का सब गर्व जाता रहा और हाथ जोड़कर विनय पूर्वक सती के चरणों में पड़ गया और कहा सती जी आज से तू मेरी धर्म बहन और मैं तुम्हारा धर्म भाई। यह जो मैंने किया सब अज्ञान वस किया, मेरे अपराध को क्षमा कर, यह कह बार २ सती जी के चरणों में पड़ा। इधर देवताओं ने सैनिको के पग खोल दिये।

भगदत्त ने धर्म को बीच में कर (सौगन्ध खा कर) जितारी राजा को बुलाया और उसके पैरों में पड़ उस से भी क्षमा मागी। सती मुण्डिका देवी बोली—प्यारे भगदत्त भाई जिस काम वासना के वस होकर तुमने इतना घोर संग्राम किया और जीवों के प्राण लिये वह काम भोग जो हैं सो वह मधु [सहद] से लिपटी हुई तलवार के समान हैं, जैसे शहत से लिपटी हुई तलवार को कोई अज्ञानी चाटने लगे तो सहत उस को भला ही मिठा लगे किन्तु जिह्वा कटने से उसको घोर महा वेदना का

सुदर्शन मन्त्री बोला श्री महाराज देखिये अपनी सेना के पग उखड़ गये हैं सेना भाग चली है इसलिये अपने को भी चाहिये कि कूचका नगार बजवादें । जितारी बोला मन्त्री क्यो घबराता है, आप रण में मरजायेंगे ता कुछ परवाह की बात नहीं मन्त्री मरने से मत डर हार जीत तो ये हुआ ही करती है । राजा के निश्चय को देखकर मन्त्री बोला राजन् व्यर्थ के मरने से क्या लाभ है । यदि मनुष्य जीवित रहे तो एक नहीं सैकड़ों लाभ उठा सकता है मन्त्री के कथन से जितारी के दिल में कमजोरी पैदा हो गई राजाके ढीले हाथ देखकर भगदत्त बोला अरे जितारी देखता क्या है अब तेरा काल आ पहुँचा है होशियार होजा, ये कहकर भागते हुए जितारी का पीछा करने लगा तो मन्त्री बोला—श्री महाराज भागते हुए शत्रु का पीछा नहीं किया करते । आप बलवान हैं, जो बलवान होते हैं वह भागे के पीछे नहीं भागा करते । यदि भागने वाला धैर्य का अवलम्बन कर मरनेका निश्चय कर पीछा करने वाले पर वार कर दे जिससे एक ऐसे बड़े भारी अनर्थ होजाने की सम्भावना हो जाती है । मन्त्री का कहा मान कर भगदत्त वहीं रह गया । भगदत्त ने सैनिकों को आज्ञा दी कि जाओ नगरी को लूट लो हुक्म होते ही लुटेरे नगरी में प्रवेश कर गये, राज्य कर्मचारी न रहने से नगरी में एक दम भगदड़ मच गई, सेठ साहूकार अपना जान माल लेकर भागने लगे । उधर सती मुक्तिका को भी मालूम हो गया कि पिता जी हार गये हैं जिसके लिए भागदत्त ने इतना घोर संग्राम किया अब भला वह मुझ से जबरदस्ती विवाह करेगा और अपने महलों में ले जावेगा और मैं उसको नापसन्द कर चुकी हूं, अब मेरे को भी चाहिये कि मैं अपने सतीत्वकी रक्षा करूं उसने अपने सतीत्वकी रक्षा के लिये अनेक उपाय किये और सोचे, किन्तु वह सब निष्फल रहे । अब उसके पास एक ही उपाय शेष रहा वह क्या कि कूप कुवे में कूदने का । निश्चय कर सागारी संथारा कर मन में पंच परमेष्ठी महामन्त्र का ध्यान कर [illegible] वाले कुवे में जा कूदी ।

उस महलों के बीचों बीच एक सिंहासन रचकर उस पर सती को बैठा दी।

अब मुण्डिका देवी सिंहासन पर बैठी हुई ऐसे सोभा पाने लगी जैसे कि अग्निकुण्ड का पानी करने के पश्चात् सीता सती सिंहासन पर बैठी सोभा पाती थी। देवों ने देव दुन्द भी बजाई पंच दिव्य प्रकट किये धन्य सती मोटी सती ऐसे शब्दों द्वारा आकाश को गुञ्जा दिया और कहा—सती जी ? आप घबराना मत, हम भगदत्त का इन्तजाम करदेंगे अब भगदत्त के सैनिक लूट खसोट मिचाते हुये राजमहल की तरफ आने लगे तो देवताओं ने सब सैनिकों के पग स्थम्भन कर दिये उनके पग स्थम्भरूप हो गये। सैनिकों के पग स्थम्भन की तथा मुण्डिका के सत्य शील महिमा सिपाहियों द्वारा सुनकर बड़ा आश्चर्य पाया और भागा हुआ वहा देखने के लिये आया सती के सत्य की महिमा को देख कर भगदत्त का सब गर्व जाता रहा और हाथ जोड़कर विनय पूर्वक सती के चरणों मे पड़ गया और कहा सती जी आज से तू मेरी धर्म बहन और मैं तुम्हारा धर्म भाई। यह जो मैंने किया सब अज्ञान वस किया, मेरे अपराध को क्षमा कर, यह कह बार २ सती जी के चरणों में पड़ा। इधर देवताओं ने सैनिको के पग खोल दिये।

भगदत्त ने धर्म को बीच में कर (सौगन्ध खा कर) जितारी राजा को बुलाया और उसके पैरों में पड़ उस से भी क्षमा मागी। सती मुण्डिका देवी बोली—प्यारे भगदत्त भाई जिस काम वासना के वस होकर तुमने इतना घोर सग्राम किया और जीवो के प्राण लिये वह काम भोग जो हैं सो वह मधु [सहद] से लिपटी हुई तलवार के समान हैं, जैसे शहत से लिपटी हुई तलवार को कोई अज्ञानी चाटने लगे तो सहत उस को भला ही मिठा लगे किन्तु जिह्वा कटने से उसको घोर महा वेदना का

सुदर्शन मन्त्री बोला श्री महाराज देखिये अपनी सेना के पग उखड़ गये हैं सेना भाग चली है इसलिये अपने को भी चाहिये कि कूचका नगारा बजवादें। जितारी बोला मन्त्री क्यों घबराता है, आप रण में मरजायेंगे तो कुछ परवाह की बात नहीं मन्त्री मरने से मत डर हार जीत तो यों हुआ ही करती है। राजा के निश्चय को देखकर मन्त्री बोला राजन् व्यर्थ के मरने से क्या लाभ है। यदि मनुष्य जीवित रहे तो एक नहीं सेकड़ों लाभ उठा सकता है मन्त्री के कथन से जितारी के दिल में कमजोरी पैदा हो गई राजाके ढीले हाथ देखकर भगदत्त बोला अरे जितारी देखता क्या है अब तेरा काल आ पहुँचा है होशियार होजा, ये कहकर भागते हुए जितारी का पीछा करने लगा तो मन्त्री बोला—श्री महाराज भागते हुए शत्रु का पीछा नहीं किया करते। आप बलवान हैं, जो बलवान होते हैं वह भागे के पीछे नहीं भागा करते। यदि भागने वाला धैर्य का अवलम्बन कर मरनेका निश्चय कर पीछा करने वाले पर वार कर दे जिससे एक ऐसे बड़े भारी अनर्थ होजाने की सम्भावना हो जाती है। मन्त्री का कहा मान कर भगदत्त वहीं रह गया। भगदत्त ने सैनकों को आज्ञा दी कि जाओ नगरी को लूट लो हुक्म होते ही लुटेरे नगरी में प्रवेश कर गये, राज्य कर्मचारी न रहने से नगरी में एक दम भगदड़ मच गई, सेठ साहूकार अपना जान माल लेकर भागने लगे। उधर सती सु[illegible] को भी मालूम हो गया कि पिता जी हार गये हैं जिसके लिए भगदत्त ने इतना घोर संग्राम किया अब भला वह मेरे से जबरदस्ती विवाह करेगा और अपने महलों में ले जावेगा और मैं उसको नापसन्द कर चुकी हूं, अब मेरे को भी चाहिये कि मैं अपने सतीत्वकी रक्षा करूं उसने अपने सतीत्वकी रक्षा के लिये अनेक उपाय किये और सोचे, किन्तु वह सब निष्फल रहे। अब उसके पास एक ही उपाय शेष रहा वह क्या कि [illegible] [illegible] में रहने का [illegible] न दिख, सारारी मथारा कर मन में एक [illegible]

त्याग दिया है और घोरतम ब्रह्मचर्य का पालन किया अथवा ससार सागर से पार उतारने वाले ब्रह्मचर्य व्रतको जो धारण करता है वह ससार सागर से पार हो जाता हैं [मोक्ष को पहुंच जाना है] ऐसे ब्रह्मचर्य व्रत के धारण को देवदान व मान व सब नमस्कार करते हैं।

मुण्डिका सती के उपदेश को सुनकर और उस धर्म के चमत्कार को देख कर भगदत्त को बैराग्य हो आया और लोगो के सामने कहने लगा जैन धर्म से ही जीवो का हित हो सकता है। ससार मे कर्म रूपी बन को जलाने वाली अग्नि के समान है तो एक जैन धर्म है, यही सब जीवोका सच्चा हितैषी है। अपनी पुत्री मुण्डिका के इस अपूर्व चमत्कारको देख कर राजा जितारी को भी वैराग्य हो आया। राजा जितारी और भगदत्त दोनों अपने २ पुत्र को राज्य दे मत्री सुदर्शन और सुबुद्धि के साथ सतगुरु 'सत्य सागर' के पास बडे महोच्छव पूर्वक दीक्षा धारण कर ली। दोनों राजाओ की रानियों ने और दोनों मत्रियो की स्त्रियों ने मुण्डिका सती के साथ 'जिनमती' जैन साध्वी के पास साध्वी पने की दीक्षा ली, शहर के बहुत से नर नारियों ने सजम धारन किया और कितनेक स्त्री पुरुषों ने श्रावक के व्रत लिये बड़ा भारी धर्म का उद्योत हुआ।

नागश्री अर्हदास से बोली—स्वामीनाथ यह धर्म का चमत्कार मैंने आखो से देखा है, इस धर्म के चमत्कार को देखकर ह मेरे को सम्यक्त्व रत्न में दृढ रुचि हुई। अर्हदास बोला—मैं भी तेरी बात का श्रद्धान करता हूँ, तैंने जो कहा वह सत्य है, मैं भी इस में रुचि करता हूँ।

सेठ की अन्य स्त्रियों ने भी ऐसे ही कहा किन्तु कुन्दलता तो पहिले की तरह ही बोल उठी कि बहन नागश्री जो तैंने कहा वह सब झूठ है, मैं तेरी बात को नही मानती। कुन्दलता के झूठे हठ को देख कर राजा

अनुभव करना पड़ेगा ऐसे ही यह विषय भोग भोगने में तो आनन्द दायक दिखते हैं किन्तु भोगने के पश्चात् ये भोग चौरासी लाख योनी के महा दु.ख दिखाते हैं ।

गाथा—सल्लं कामा विसं कामा कामा आसी विसो वमा ।
कामेय पत्थेमाणा, अकामा जन्ति दुग्गई ॥१॥उ० अ० ६
गा० ५३

भा० अये राजन् ये काम भोग शल्य अर्थात् काटे और भाले की अणी के समान दु ख दायक हैं, ये काम भोग विष [जहर जो एक बार गालेत्र के लगते ही प्राण हरन कर लेता है] के समान है, ये काम भोग दृष्टि विष सर्प के समान हैं जो इन काम भोगों की इच्छा करेगा या बाल मृत्यु को प्राप्त होगा वह दुर्गति में जा कर पड़ेगा ।

गाथा—जहा किंपाग फलाणं, परिणामो न सुन्दरो ।
एवं भुत्ताण भोगाणं, परिणामो न सुन्दरो ॥२॥
उ० अ० १६ गा० १७

भा० किंपाक नाम के वृक्ष के फल खाने में बड़े स्वादिष्ट होते हैं, सूंघने में मधुर सुगन्ध वाले होते हैं किन्तु वह फल खाते ही [गले के नीचे [illegible]] प्राण हरण कर लेते हैं यही हाल इन काम भोगों का है ये [illegible] भोगने के पश्चात् [illegible] दुःख [illegible]

गाथा—देव दाणव गन्धव्वा, जक्ख रक्खस किन्नरा । बम्भयारि नमंसन्ति, दुक्करं जे करेन्तिते ॥३॥ उ० अ० १६ गा० १७

भा० [illegible] जिन महा पुरुषों ने इन दु ख दायक विषय भोगों को

युक्त थी। उस नगरी मे एक बोध मत का मानने वाला 'बुद्धदास' नाम का सेठ रहता था उसकी घर वाल का नाम 'बुद्धदासी' था और पुत्र का नाम 'बुद्धसिंह' था। एक दिन सेठ की पुत्री पद्मश्री उपाश्रय में गुरु दर्शन के लिये जा रही थी कि रास्ते में बुद्धसिंह ने उसके चन्द्रमा समान प्रकाश युक्त मुख को तथा शरीर की सुन्दरता को देख कर कामाध हो गया अपने मित्र से बोला—यह कन्या किस की है ? मित्र ने सब बातें बतला दी। अब बुद्धसिंह अपने घर पर आकर उदास हो खाट पर पड़ गया। पुत्र को चिंतित देख माता बोली—पुत्र? आज भोजन क्यों नहीं जीमता और पानी क्यों नहीं पीता उदास हुआ क्यों पडा है, जो तेरे को चिन्ता हो वह कह। कामी को लाज शर्म तो होती ही नहीं, वह लज्जा को तिला जली दे बोला—माता जी ? यदि तू मेरे को जीवित देखना चाहती है तो ऋषभदास सेठ की पुत्री पद्मश्री से मेरा विवाह करवादे नही तो मैं मर जाऊंगा। माता ने पुत्र का कथन अपने पतिदेव से कह दिया

बुद्धदास आकर बुद्धसिंह से बोला—देख पुत्र ? सेठ ऋषभदास जैन धर्म का मानने वाला है, जैन धर्म में मास का खाना और शराब का पीना बहुत बुरा माना गया है और अपन सब मास खाते और शराब पीते हैं वह तो अपने को चण्डाल से भी अधिक बुरा समझता है, तो भला अपनी कन्या इस घर में कैसे दे सकता है। प्यारे पुत्र ? मनुष्य को उस ही वस्तु की आशा करनी चाहिये जो मिल सके। पुत्र? तू अपने हठ को छोड़। और चलके भोजन जीमले। पुत्र बोला—पिता जी सो बातों की एक बात है, यदि आप मेरे को जीवित देखना चाहते हैं तो मेरा विवाह पद्मश्री के साथ करादें। माता पिता सोचने लगे कि अहो कामदेव की बड़ी विचित्र माया है, जिस के वस हो पुत्र इतना निर्लज्ज बन गया, यदि हम कुछ उपाय न करेंगे तो यह अवश्य मर जायगा

और मन्त्री को बड़ा गुस्सा आया और वह सोचने लगे कि कब दिन निकले और कब मिथ्यावादीनी को गधे पर चढ़वा कर शहर से निकलवाऊ। चोर विचारने लगा—जैसे उल्लू को सूर्य का प्रकाश अच्छा नहीं लगता ठीक इस ही प्रकार इस को भी धर्म की बात अच्छी नहीं लगती यह स्त्री बड़े नीच स्वभाव की है।

अब सेठ अर्हदास पद्मलता से कहने लगा—भद्रे तुम भी अपने दृढ सम्यक्त्व रत्न के प्राप्ती की कथा सुनाओ तब पद्मलता हाथ जोड़कर बोली स्वामीनाथ जी सुनिये।

❀ ६ पद्मलता का—कथा कहना ❀

अङ्ग देश मे चंपा नाम की एक अति प्रख्यात नगरी है उस नगरी में ही मेरा जन्म हुआ था। चम्पा नगरी का 'धात्री वाहन' नाम का राजा था उस राजा की रानी का नाम 'पद्मावती देवी' था राजा के पुत्र का नाम 'नय विक्रम' था। उसी नगरी में एक 'ऋषभदास' नाम का सेठ रहता था वह श्रावक सर्व गुण युक्त था सेठ गृहस्थ के षट कर्म का नित्य प्रतिपालन किया करता था।

श्लोक— **देव जाप गुरु भक्तिः, स्वाध्यायः संयमस्तपः।**
दानश्चैव गृहस्थानां, षट् कर्माणि दिने दिने ॥१॥

भा०—ईश्वर के नाम का स्मरण करना (भगवान के नामकी माला फेरना १ गुरु महाराज की सेवा भक्ति करना २ शास्त्र का स्वाध्याय करना ३ एक व्रत से लेकर बारा व्रत तक का पालन करना, ४ बारा प्रकार के तप में से कोई सा तप ग्रहण करना, ५ दान देना, ६ सेठ ऋषभदास की धर्म पत्नी का नाम 'पद्मावती' था सेठानी के अङ्ग से उत्पन्न हुई एक पुत्री थी जिसका नाम 'पद्मश्री' था वह रूप लावण्य आदि गुण

इस छोटी सी बात के लिये इतना आग्रह ? इसके लिये आप कोई चिन्ता न करें, मैं आपके कथन को स्वीकार करता हूं। सेठ के कहने से बुध्ददास ने भोजन जीम लिया और ऋषभदास ने अपनी पुत्री की सगाई करदी कुछ दिनों के बाद शुभ मुहूर्त मे पद्मश्री का विवाह बुध्दसिंह के साथ कर दिया अब बहुत कुछ माल ताल लेकर पद्मश्री सासरे आगई ।

पद्मश्री के घर आते ही बुध्द दास और बुध्दसिंह ने एक दम जैन धर्म का मानना छोड दिया और वह ऐसे होगये कि जाने कभी जैनधर्म की शरण मे ही न गये हों। पद्मश्री को मालूम होगया कि इन्होंने पतितो ध्दारक जैनधर्म को छोड दिया है तो अपने दिल मे बड़ा भारी दुःख माना अब एक दिन वह अपने पिता के पास गई और सब हाल सुनाया सुनकर सेठने दिल मे बहुत दुःख माना और बोले–पुत्री –मै उन कप–टियों के कपट को कुछ भी न जान सका धोखे मे आकर मेरे से यह काम हो गया। तू अपने धारण किये व्रतो का सम्यक् प्रकार से पालन करती रहना जन्म तो बार २ भी मिल सकता है किन्तु धर्म का बार २ प्राप्त होना महा कठिन है तेरे पति और सुसरे ने जैन धर्म छोड दिया यह उन्होंने अच्छा नही किया नीच कभी अच्छा काम ही नहींकिया करते

पद्मश्री बोली–पिता जी ? आप मेरी तरफ का कोई ख्याल मत करें मैं अपने ग्रहण किये व्रतों को न छोडूंगी। पद्मश्री सासरे आगई एक दिन का जिकर है कि बुध्ददास के गुरु "पद्मसिंह" अपने परिवारके साथ बुध्ददास के घर पर आये और पद्मश्री से बोले–पुत्री ? वस्त्रो मे श्वेत वस्त्र ऋतुओं में बसन्त ऋतु रसों मे लवण (नमक) श्रेष्ठ है ऐसे ही सब धर्मो मे बुध्द भगवान का धर्म ही श्रेष्ठ है इसलिये तू मेरा कहा मान और बोध धर्मको स्वीकारकर पद्मश्री बोली–महात्मन् संसार मे जन्म मरण के दुःखों से छुडाने वाला पतित पावन तो एक जैनधर्म ही है बोध धर्म नही

और हम विना पुत्र के हो जायेंगे।

ये सोच कर सेठ बोला—पुत्र! धैर्य धारण कर तेरा काम धीरे २ बना दूंगा क्योंकि धीरे २ पानी डालने से ही पृथ्वी भिजा करती है (तर हो जाती है) अब बाप और बेटे दोनों यशोधर गुरु के पास जा कपट से जैनी बन गये। बुद्धदास और बुद्धसिंह को जैनी हुआ देख कर ऋषभदास का चित बड़ा प्रसन्न हुआ और बोला—प्यारे बन्धुओ तुम ने बहुत ही अच्छा किया जो मिथ्यात्व पन को छोड दिया और सत्य सनातन जैन धर्म से चित लगा लिया धीरे २ बुध्ददास का और ऋषभदास का आपस में अत्यधिक स्नेह हो गया अब वह दोनों आपस में मित्र बन गये किन्तु ऋषभदास उस कपटी के कपट को कुछ भी न समझ सका और एक दिन अपने यहा भोजन जीमने को कह आया नीति शास्त्र में बतलाया है कि—

श्लोक—ददाति प्रतिगृह्णाति, गुह्य माख्याति पृच्छति।
भुंक्ते भोजयते चैव, षड् विधं प्रीति लक्षणम्॥ २॥

भा०—देना लेना गुप्त बाते कहना और सुनना खाना और खिलाना यह मित्रता के लक्षण हैं। बुद्धदास जीमने के लिए आया थाल मे भोजन परोसा गया सारा काम हो गया पर बुद्धदास थाल पर जीमने के लिये नहीं बैठा। ऋषभदास बोला—भाई जीमता क्यों नहीं। बुद्धदास बोला मेरा आप से एक काम है जब तक आप मेरे कार्य की स्वकृति न दोगे तब तक मैं आपके यहा भोजन नही जीमूंगा। ऋषभदास बोल—भाई जो तू कहेगा मैं वहीं करूंगा तू भोजन जीमले। बुध्ददास बोला—आप अपनी पुत्री पद्मश्री की सगाई मेरे पुत्र बुध्दसिंह से कर दो ये दोनो एक धर्म के मानने वाले हैं। और जोड़ी भी इनकी ठीक है ऋषभदस बोला—बुन्धु ?

अब वह बारीक टुकड़े को जो पेट में जा कर फूल गये थे वह धुलवाकर दिखा दिये। अब सब महात्मा मुंह में हाथ डाल २ कर उलटी (वमन) करने लगे और बड़े भारी शर्मिन्द हुये और गुस्से में भरकर बोले—अरे पापी बुद्धदास तैंनेही अपनी पुत्र वधुको बहकाकर इतना बडा भारी अयोग्य कार्य करवा दिया। गुरुओं के इस महा अपमान को देख कर बुद्धदास गुस्से में भर कर पद्मश्री से बोला—अरी पापिनी! तू हमारे घर योग्य नहीं बस इसी समय तू हमारे घर से निकल जा। यह कह कर बुद्धदास ने बुद्धसिंह का और पद्मश्री का सब गहना गूठी माल ताल खोस धक्का दे घर से निकाल दिये पद्मश्री का घर छूट गया गहना जेवर वस्त्राभूषण जाता रहा पर सती ने कुछ परवाह न की धर्म पर दृढ रही, कहा भी है कि—

श्लोक—निन्दन्तु नीति निपुणा यदिवा स्तुवन्तु, लक्ष्मीः समा विशतु गच्छतु वा यथेष्टम्। अद्यैव वा मरण वस्तु युगान्तरे वा, न्याय्यात्पथः प्रविचलंति पदं न धीराः ॥५॥

भा०—धर्मात्माओं का विचार रहता है कि हमारी चाहे कोई बड़ाई करे या बुराई, लक्ष्मी आवे, या चली जावे, चाहे आज ही मृत्यु आजावे या कोटी वर्षों तक जीऊ किन्तु, धर्म को न छोड़ू। प्यारे बन्धुओं! धर्मात्माओं पर चाहे कितने ही कष्ट आकर पड़ें किन्तु वह धर्म से एक चरण भी पीछे नहीं धरते। शहर से बाहिर निकलते ही पद्मश्री अपने पतीदेव से बोली कि नाथ आप और कहीं न चलकर सीधे मेरे पिता के घर चलिये मेरे भाई आपको बहुत कुछ माल ताल देगें वहा आपको किसी बात की कमी न रहेगी। बुद्धसिंह बोला—प्रिय परदेश में जाना भीख मागकर खाना अच्छा है किन्तु निर्धुनावस्था में सासरे जाना और सासरे वालों से पैसा लेना किसी तरह भी अच्छा नहीं।

अब पति पत्नी दोनों परदेश जाने के लिये तैय्यार हो गये शहर के थोडी ही दूर पर वन में दो सेठों का पडाव पड़ा हुआ था साथ समझ

भोजन जीमकर तो महात्मा लोग खुश हुये ही थे किन्तु उस रायते को पी कर तो और भी अधिक प्रसन्न चित हुए किन्तु उनको यह मालूम न हो सका कि इस रायते में तुम्हारी ही जुतिया पड़ी हैं। जीम झूट कर सब खड़े हो गये कुरला किया फल दिया और हाथ जोड़ कर पद्मश्री बोली भगवन् प्रातःकाल ही मैं आपके डेरे में आकर आपके पास बोध धर्म स्वीकार करूगी, सबने कहा बहुत ठीक है। बोध धर्म और बोध गुरु ही ससार सागर से पार उतारने वाले हैं और सब पाखण्ड है हमारा धर्म ही सच्चा है। यह कह कर जब वह चलके जूतों के पास आये तो क्या देखते हैं कि हर एक जोड़ी का [बायें पग का] जुत्ता नहीं है उसी समय उन्हों ने नोकर चाकरों को बुला कर कहा बड़े आश्चर्य की बात है कि ऐसी खुली जगह से हमारे जुत्ते जाते रहे, बतलाओ हमारे जूते कौन ले गया। सबने उत्तर दिया कि हम तो आपके जीमने के तमाशे मे लीन थे, हमें मालूम नहीं कि आप के जुत्ते कौन ले गया। कोरा सा उत्तर मिलने पर महात्मा लोगो ने कोलाहल करना शुरु किया, उनके कोलाहल को सुनकर पद्मश्री आकर बोली– गुरु देव आप तो तीनों काल की बात को जानने वाले हो तो क्यों नही आप अपने ज्ञान द्वारा देख लेते कि हमारे जुत्ते कौन ले गया। महात्मा बोले–अरी भोली बाई ? हम ऐसे ज्ञानी नहीं हैं जो जुत्तों की बात को बता सकें। पद्मश्री बोली–गुरु जी फिर आप त्रिकालज्ञ ही कैसे हुये। आप तो कहते हैं कि हम त्रिकालज्ञ है– भला जिसको छोटी २ बातों का भी ज्ञान न हो वह सर्वज्ञ होने का दावा कैसे कर सकता है और आपने बिना ज्ञान के ही यह कैसे कह दिया था कि सेठ ऋषभ दास और सेठानी पद्मावती मर कर जङ्गल में हिरन हिरनी हो रहे हैं। हा यह बात तो मैं बतला सकती हू कि आप के जो जुत्ते हैं वह आप लोगों के उदर (पेट) में हैं। महात्मा बोले कि क्या जुत्ते हमारे पेट में हैं? पद्मश्री बोली जी हा जुत्ते आपके पेट में ही हैं। यदि विश्वास न हो तो मैं अभी दिखला देती हूँ यह कह एक महात्मा को वमन होने की गोली खिला दी गोली खाते ही महात्मा को वमन हो गया

बैंठ जाता हैं शब्दोच्चारण ठीक नहीं हो सकता है, ये रात्रि में भोजन जीमने वाले को कष्ट उठाने पड़ते हैं इस लिये चतुर पुरुषों के लिये बतलाया है कि वह रात्रि में भोजन न जीमें। रात्रि मे भोजन न जीमने से जीवात्मा को किस फलकी प्राप्ती होती है–

श्लोक–ये रात्रौ सर्वदाऽऽहारं, वर्जयन्ति सु मेधसः।
तेषां पक्षोपवासस्य, फलं मासेन जायते ॥८॥

भा०–जो चतुर धर्मात्मा पुरुष एक महिना तक रात्रि को भोजन न जीमें तो समझो कि उसके पंदरा दिन तपस्या में ही व्यतीत हुये, जो सारी उमर रात्रि को भोजन न जीमें उसकी आधी आयु तप में ही बीतती है। पद्मश्री ने बुध्दसिंह को बहुत कुछ समझाया किन्तु होणी तो उसके सिर पर गरज ही रही थी फिर भला वह पद्मश्री की बात को क्यों मानने लगा –

दोहा–होंसा हार हृदय बसे, बिसर जाय सब बुध्र
जो होणी सो होत है, वैसी उपजे बुध ॥ ९ ॥

बुध्दसिंह ने वह उनका बचा खुचा अन्न रात्रि में ही खा लिया और खाते ही वेहोश (अचेत) होकर गिर पड़ा अपने पति की यह दशा (हालत) देखकर पद्मश्री बड़ी व्याकुल हुई और रो रो कर बड़ी मुश्किल से रात्रि व्यतीत की प्रातः काल हुआ शहर वालों ने पद्मश्री को रुदन करती और बुध्दसिंह को मरा देख कर भागे हुये बुध्ददास के पास आये और कहा सेठ जी तेरा पुत्र वन में मरा पड़ा है। यह सुनकर बुध्द दास से न रहा गया और वह दौड़ा हुआ बन में पहुँचा, उसके साथ में नगर के नर नारी राज्य कर्म चारी (सिपाही आदि] भी बन में पहूँचे।

कर वह सेठों के डेरे में जाकर ठहर गये। दोनों सेठ पद्मश्री के महा दिव्य रूप को देख कर मोहित हो गये। उन दोनों ने अलग २ अपने २ दिलमें विचार किया कि यह एकके ही जा सकती है दोनों के नहीं। एक सेठ ने विचार किया कि इस को भोजन में विष (जहर) मिलाकर दिखा दूं बस यह मर जायगा, दूसरे ने भी यही विचार किया अब दोनों सेठों ने पृथक् २ [अलग] भोजन बनवा जहर मिलाकर धर लिया वह दोनों अपनी २ चतुराई में रहे आपस में उसका भोजन उसने जीम लिया और उसका उसने। भोजन जीम २ कर वह लेट गये सोने की देर थी कि एक दम मे जहर चढ गया और वे बेहोश हो गये। उन दोनों के बचे खुचे अन्न को बुद्धसिंह खाने को तैयार हुआ तो पद्मश्री बोली स्वामीनाथ अनजाने से प्रेम करना उनके भोजन को जीमना ठीक नहीं होता और दूसरे अब रात्रि भी हो चली है इस लिये आप मेरा कहा मानो और रात्रि को भोजन मत खाओ धर्म शास्त्र में लिखा है कि-- --

श्लोक—मेधां पिपीलिका हन्ति, यूका कुर्याज्ज लोदरम्।
कुरुते मक्षिका वान्तिं, कुष्ट रोगं च कोलिकः ॥६॥
कटकं दारु खंडंच, स्वर भंगाव जायते।
इत्यादयो दृष्ट दोषाः सर्वेषां निशि भोजने ०७॥

भा०—रात्रि के समय जो भोजन खाया जाता है उस समय अंधेरे में कुछ भी न दिखने के कारण निम्न चीजें भोजन में पड जावे और वह खाने में आ जावे तो निम्न प्रकार कष्ट दायक हो जाती हैं। भोजन में कीडी खाई जावे तो शरीर में खून उभर आता है जिस से सारे शरीर में खुजली हो जाती है पित्ती निकल जाती है बुद्धि मन्द हो जाती है, जूं खाई जाने से जलोदर रोग पैदा हो जाता है मकड़ी खाने में आजावे तो कुष्ट [कोढ] पैदा हो जाता है, मक्खी खाई जावे तो उल्टी [वमन] हो जाता है, भोजन में कांटा तिण बाल खाया जावे तो स्वर भङ्ग हो जाता है। गला

स्वर से बोली–यदि मेरे को जैन धर्म की पक्की श्रद्धा है और न पतिव्रता सती हू और रात्रि भोजन का मेरे को त्याग है तो मेरा पति देव और यह दोनों सेठ अभी जीवित हो उठे। शील सहायक देवताओं का आसन काम्प उठा और वह उसी समय भागे आये और उन्होंने उसी समय उन तीनों को जीवित कर दिये। पद्मश्री के सत्य शील के प्रभाव से तीनों बैठे हो गये इस अपूर्व चत्मकार को देखकर नगर वासियों ने जय२ कार किया। धात्री वाहन राजा सती के पैरों मे पडा सेठ सेठानी और बुद्ध-सिंह भी जय २ कार करने लगे। देवताओं ने जय २ कार किया पंच दिव्य प्रकट किये धन्य सती मोटी सती ऐसे शब्द कह देव दुंद भी बजाई। दोनों पापी सेठो ने सबके सामने अपना २ पाप प्रकाशित किया और उन्होंने भी सती के चरण पूजे। यह देखकर राजा बोला समार मे धन धरती और स्त्री के मोह में फसकर ससारी लोग दुःख उठाते हैं यह जीव जब से माता की कुक्षी में आकर जन्म लेता है और मरता है तब तक दुःख में जीवन बीताता है फिर भी यह पापी जीव नहीं चेतने।

श्लोक–दुःखं स्त्री कुक्षि मध्ये प्रथम मिह भवे गर्भ वासे नराणां, बालत्वे चापि दुःखं मल लुलित तन स्त्रीपयः पान मिश्रम्। तारुण्य चापि दुःखं भवति बिरहजं वृद्ध भावोऽप्यसार, संसारे रे मनुष्यः वदत यदि सुखं स्वल्प-मप्यस्ति किंचित् ॥ १० ॥

भा०–जीव माता की कुक्षी में आकर माता के रुद्र और पिता के शुक्र का आहार करता है नो महिना तक गर्भ के महा घोर दुःख

दोनों सेठों और बुद्धसिंह को मरा देख कर बुद्धदास बोला—अरी डाकन् तैंने मेरे पुत्र को और इन दोनों सेठों को खालया मेरे को मालूम नहीं था कि तू ऐसी पिशाचिनी निकलेगी कि मेरे पुत्र को भी खा जायगी तो मैं अपने पुत्र को तेरे साथ क्यों भेजता मेरे पुत्र के प्रेम का तैंने यह फल दिया यह कह सेठ सेठानी और कुटुम्ब परिवार सब रोने धोने लगे। राज्य पुरुषों ने पद्मश्री को चारों तरफ़ से घेरली—जैसे की सांपन को मारने वाले हाथ में लाठी लेकर सापन को चारो तरफ से घेर-लेते हैं। राजा को मालूम हुआ तो वह भी मन्त्री को साथ लेकर शहर के बाहिर आया और शहर के समस्त नर नारी भी आये और पद्मश्री की बार २ निन्द करने लगे। बोंध गुरु पद्मसिंह भी अपना सघ लेकर वहीं आ गया और वह भी पद्मश्री की बुराई करने लगा।

बुद्धदास को जब होश आया तो वह पद्मश्री से बोला—अरी पापनी बैठी २ क्या देखती है अब इसको जीवित क्यों नहीं करती। यह कह पुत्र को उठा उसकी गोद में में गेर दिया और कहा क्या तो अब इसको जीवित करदे नहीं तो जिस चित्ता में इसको रक्खा जावेगा उस में ही तेरे को भी रखकर भस्म कर देवेंगे यानी तेरे को भी इसके साथ पर लोक यात्रा करनी पड़ेगी। जो जैन धर्म के प्रेमी थे उन्होंने सेठ का कथन सुनकर बहुत दुःख माना। पद्मश्री ने अपने दिल में विचारा कि—यह मेरे कौन से जन्म के पाप उदय हो आये जिसके कारण मेरे इतना बड़ा कलंक लगा कलंक लगने का और मरने का तो मेरे को डर नहीं हैं किन्तु लोग बाग कहने लग जावेंगे कि जो धर्मात्मा होते हैं वह ऐसे ही होते हैं धर्म की हीलना होगी इसलिये मेरे को चाहिये मैं अपने इस कलक को मेटूं यह सोच कर हाथ जोड़ पंच परमेष्ठी महा मंत्र का ध्यान कर उच्च

सवैया–पावक कुञ्जल बून्द निवारन, सूरज ताप को छत्र कियो है। व्याधी कुं वैद्य तुरङ्गको चाबुक, चौपग बृषभको दण्ड दियो है। हस्ति महा मद कुं कियो अंकुश, भूत पिशाच कुं मंत्र कियो है। औषध है सब को सुखकर, स्वभाव को औषध नाहिं कियो है ॥११॥

अर्हद्दास 'कनकलता'से बोले–भद्रे तुम भी अपने सम्यक्त्व रत्नमें दृढ होने वाली बात कहो कि तुमको दृढ स यक्त्व रत्न की कैसे प्राप्ती हुई, कनक लता बोली–पतिदेव जी सुनिये–

❀ कनकलता का कथा कहना ❀

मालव देशमे एक उज्जयिनी नाम की नगरी है, उस नगरी में ही मेरा जन्म हुआ था। उस नगरी मे सिंह के समान महा प्राक्रमी न्याय शील दयालु धर्म प्रायरा आदि अनेक गुणों युक्त 'नरपाल' नाम का राजा था, उसकी रानी का नाम 'मदनबेगा' था राजा के मन्त्रीका नाम 'चन्द्रप्रभ' था मन्त्री की धर वाली का नाम 'सोमादेवी' था उस ही नगरी में 'समुद्रदत्त' नाम का नगर सेठ था उसकी स्त्री का नाम 'सागर दत्ता' था-सेठानीके उदरसे एक पुत्र और एक पुत्रीका जन्म हुआ। पुत्र का नाम 'उमयकु वार' और पुत्री का नाम 'जिनदत्ता' रखा बडी होने पर जिनदत्ता का विवाह कौसम्बी के जिनदत्त सेठ से हो गया, उसके सत्य शील की महिमा दूर २ तक फैल गई। उमयकुमार कुलाचार को छोड कर सातों व्यसनो के सेवने मे लग गया। माता पिता ने एकान्त मे बैठा कर उसको बहुत कुछ समझाया बुझाया किन्तु उसने उनकी एक न मानी

भोगता है, जन्म समय तो और भी महा घोर दुःख पाता है बलावस्था में मल मुत्र में लिपटा पड़ा रहता है, माता के दूध को पीकर बालाल्वथा बीताई युवास्वथा में माता पिता स्त्री पुत्रादि का वियोग देखा बुढापे की अवस्थ में इन्द्रियों की शक्ति हीन होने से दुःख पाता है, इस नाशमान ससार में धर्म के बिना कोई सुखिया नहीं इसलिये अब तो मेरे को भी धर्मका शरण लेनी ही उचित है। मैंने जो कुछ धर्मोंमें सार देखा है तो एक जैनधर्म में ही देखा है इस लिये इस पतित पावन जैनधर्म को स्वीकार करना चाहिये। यह विचार कर राजा अपने पुत्र नयविक्रम को राज्य दे मत्री और बहुत से शहर वालो के साथ सत गुरु "श्री यशोधरजी" के पास जाके दीक्षा धारण करली पद्मश्री और राजा की रानी पद्मावती देवी तथा शहर की बहुत सी स्त्रियों "सरस्वती" गुरनी के पास जाकर जैन साध्वी की दीक्षा धारण की बुध्ददास और बुध्दसिंह ने और उसके परिवार ने श्रावक के व्रत धारण किये धर्म का बड़ा ऊद्योत हुआ चारों तरफ जैन धर्म की महिमा फैलती चली गई।

पद्मलता सेठ अर्हद्दास से बोली—नाथ ये धर्म का चमत्कार मैंने अपनी आखों से प्रत्यक्ष देखा है इस लिये मेरे को दृढ सम्यक्त्व रत्न की प्राप्ती हुई यह सुनकर सेठ बोला—भामिनी जो तुमने नेत्रों से देखा मैं उसका श्रद्धान करता हूँ उसे चाहता हूँ और उसपर प्रेम करता हूं। अन्य स्त्रियों ने भी ऐसे ही कहा किन्तु छोटी स्त्री कुन्दलता बोली—बहन क्यों झूठ मूठ की बातें बनाकर इन को बहकाने लग रही है झूठी बातों में क्या धरा है? राजा मन्त्रि मनमे कहने लगे देखो यह कैसी दुष्टा है जो पद्मलता की आखें देखी बातों को—भी झूठी बतला रही है। इस को गधे पर चढवाकर शहर मे निकलवा दूगा। चोर सोचने लगा कि दुष्ट दूसरों की अच्छी बात को भी नहीं माना करते। संसारमें सब की औषधी है किन्तु मूर्ख के स्वभाव को पलटने की तो कहीं और किसी के पास भी औषधी नहीं है।

और साथ मे यह भी कहा कि यदि अब इसको घर मे से न निकालेंगे तो राजा की आज्ञा भङ्ग होगी और शहर के लोगों से विरोध हो जावेगा, बहुतो से विरोध का होना अच्छा नहीं हुआ करता इसने चोरी करके शहर के लोगों को बहुत तङ्ग कर रखा है। माता कहने लगी कि मैं कैसी निरभागनी हूँ जो मेरी कुक्षी मे ऐसे कुपात्र पुत्र उत्पन्न हुआ ऐसे पुत्र के तो मैं बिना पुत्र के ही रहना अच्छा समझती हू। कुपात्र से कुल के लाञ्छन लगता है कुपुत्र से कुलोद्धार की आशा करना व्यर्थ है। इतनों की तो आशा ही नहीं करनी चाहिये।

सवैया–ओछे की प्रीत, कपूत की आशा। नैरी में वास पर हत्थ ०,।प र, वैश्या के साथ रमें सार पाशा। दुष्ट पड़ोसी चले ठग संगत, मूर्ख मित्र अजान से हाँसा। दारा ना–रायण एम कहे भाई, एति ही बात से होत विनासा ॥१॥

सेठानी की सम्मति से सेठ ने उमयकुवार को धक्का देकर घर से निकाल दिया। अब वह घर से निकाले जानेपर अपनी बहन जिनदत्ता के यहा जाने के लिये तैय्यार हो गया। शहर से चलते ही उसको कोसम्बी के जाने वाला साथ मिल गया और वह उनके साथ कोसम्बी पहुँच गया। इसके वहा पहुँचने से पहले ही घर से निकाले जाने की खबर बहन को लग चुकी थी–कहा भी है कि 'नेकी नौ कोस और बद सौ कोस' बुराई वाली बातों के फैलते क्या देर लगती है। उत्तम विद्या, नई बात, बदनामी, किस्तूरी की सुगन्ध ये सब बाते पानी मे डाली हुई तेल की बून्द की तरह सब जगह फैल जाती है। सामने घर पर आते हुये भाई को देखकर बहन बोली–ऐसे कुल कलंकित भाई की मेरे को आवश्यकता नहीं यह कह धक्का दिलाकर घर से निकलवा दिया। जिनदत्ता के यहा से निकाले जाने पर वह जङ्गल की तरफ चल दिया

जुवा खेलना, मास खाना, शराब पीना, वेश्या के जाना, चोर करना, शिकार खेलना, पर स्त्रियों से रमन करना, यह उसका प्रति दिन का काम हो गया किन्तु चोरी करने मे तो वह अति निपुण हो गया। एक दिन चोरी करते हुए को पहरेदार [सिपाहियों] ने पकड लिया और सेठ के पास लाये। दयाकर सेठ ने पुत्र को छुडवा दिया। ऐसे चोरी करते सैकड़ों बार सिपाहियो ने उभयकुमार को सेठ के कहने से छोड़ा। थानेदार और सिपाही सोचने लगे कि– देखो जिनदत्ता और उभय दोनों एक ही उदर से पैदा हुये बहन भाई हैं। जिनदत्ता तो कितनी सती साध्वी है और यह कितना दुष्ट है। थानेदार और सिपाहियों ने उसको बार बार मनाह किया किन्तु वह न माना और चोरी करता ही रहा। एक दिन थानेदार ने उसको बड़ी चोरी करते हुए पकड़ लिया और राजा के पास ले गया और कहा–श्रीमहाराज ! यह नगर सेट समुद्रदत्त का नालायक लड़का है, यह हजारों बार चोरी कर चुका है मनह करने पर भी नहीं मानता यह बड़ा पक्का चोर है। अब यह आपके सामने है जैसा उचित समझें वैसा करें।

राजा ने कहा–इस में सेठ का एक भी गुण नहीं, है तब क्यो न इस को धक्का देकर नगरी से निकलवा दू। सिपाहियों के हाथ सेठ को बुलाया और कहा–सेठ जी ! आपने इस दुष्ट को घर में क्यों रख रक्खा है ? आप क्यों नहीं इसको घर में से निकल देते, यदि अब आप इस को घर से न निकालोगे तो आप की इज्जत में बट्टा लग जावेगा। दुष्ट के संसर्ग से सज्जन भी कलङ्कित हो जाते हैं, इस लिये आप खूब सोच विचार लो और इस दुष्ट को शीघ्र ही घर से निकाल दो। अब सेठ उभय को साथ ले कर घर आया और सेठानी से राजा का हुक्म कह सुनाया

श्रुतसागर गुरु ने ध्यान खोलकर उभय से कहा–भद्र देख तू व्यसनों में पड़ा तो तेरे को तेरे माता पिता ने घर से निकाल दिया और बहन ने भी तेरे को आश्रय नहीं दिया अब तो तू इन कुव्यसनों को छोड़ और सुखी बन ।

सप्त व्यसन-निषेध

जुवा श्लोक–न श्रियस्तत्र तिष्ठन्ति, द्युतं यत्र प्रवर्तते । न वृक्ष जातस्तत्र, विद्यन्ते यत्र पावकः ॥३॥

भा०–जुवा खेलने वाले के पास न तो लक्ष्मी ही रहती है और न संसार में उसकी बड़ाई ही होती है जहां अग्नि होगी भला वहां वृक्ष फल फूल घास आदि कैसे रह सकता है ।

सवैया जुवे रमें नर जेह धर्मतणो आणो छेह, हाट औरशाल गहना दवे मेलरे । लोग मुख देवे धूल, नारी दुःख धरे पूर, घर हूं थी करे दूर, फिरेछे इकलोरे । गहना तलग ताय, गाल राड़ करे ताय, मरे विष फांसी खाय, बधे दुःख बेलरे । सुघड़ सुजान श्याम, मन में विचार आन, बार २ समझाऊं तोय, जुवा मत खेलरे ॥४॥

श्लोक–नास्ति द्यूत समं पाप, नास्ति द्यूत समो रिपुः । पांडवाः प्रौढ पुण्यश्च, प्राप्ताः दुःखं तु द्यूतः॥५॥

भा०–जुवा खेलने के समान कोई पाप नहीं और न जुवे के समान इस जीव का कोई शत्रु है, पांडवों जैसे भाग्य शालियों को भी इस पापी जुवे

और विचारने लगा कि–मेरे दुराचरण की बुराई तो मेरे आने से पहिले ही यहा पहुँच गई है कहा भी है कि–भागय हीन कहीं भी चला जावे उसको कहीं भी सुःख नहीं मिलता और दुःख तो उसके लिये आगे से आगे तैयार खड़ा रहता है। एक मल्लाह ने एक मछली को पकड़ा तो वह बड़े जोर से उछल कर उसके हाथ से निकल गई और बिछे हुये जाल में जा गिरी वहा से भी ज्यो त्यो करके निकली तो आगे बुगला बैठा था उसने उसको अपने पेट मे धरली। जब भाग्य ही साथ देना छोड दे तो फिर सुख कहा। मै बहन के घर आया तो बहन ने भ मेरे को निकाल दिया अब कहा जाऊं और क्या करू माता पिता और बहन के घर से निकाले जाने पर उसकी अकल ठिकाने आई चोरी चपारी करना सब भूल गया और उदास हो इधर उधर फिरने लगा। जङ्गल मे ध्यानस्थ बैठे हुए 'श्रुतसागर' गुरु को हाथ जोड़ नमस्कार कर सामने बैठ गया। वह गुरु बड़े त्यागी और वैरागी थे ज्ञान ध्यान में लीन थे वह ऐसे नहीं थे कि सयम ले लिया और उसका कुछ भी पालन नहीं किया, गृहस्थियो के बाल बच्चे खिलाना डागर ढोर बकरी आदि चराना बरात में जाना और वहा लोगों की भली बुरी गाली सहना जङ्गल में हल चलाना और बाबा का बाबा कहाना। ऐसे बाबा जी (योगी) बनने से कुछ भी कार्य सिद्ध नहीं हुआ करता।

सवैया—जोग लियो जग देखन को, अब जोग की रीत सके नहीं पाली। किसी के खिलावे छोकरा छोकरी, कोई के चरावत ढोरऱु छाली। जान बारात में संग जावे भ्रात सगे न मे खात है गाली। कहे गुरु ज्ञानो सुनो भाई साधो, वह बाबा का बाबा बने, अरु हाली को हाल ॥२॥

श्लोक—माँसाशिनो नास्तिदयाऽसुभाजॉ, दयां बिना नास्ति जनस्य पुण्यम् । पुण्यं बिना याति दुरन्त दुःखं, संसार कान्तार मलभ्य पारम् ॥१०॥

भा०—मास खाने वाले को दया नही होती, दया के बिना पुण्य नही होता और न पुण्य के बिना ससार के दु:खों का अन्त ही आता है बिना दु:ख [कर्म] मिटे स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ती भी नही होती जो दूसरे का मास खाकर अपना मास बढाना चाहता है उससे अधिक और नीच कौन हो सकता है यह एक बड़ी विचारनीय बात है ।

श्लोक—पच्यते पावके पापैः, प ल्यते तिलवत् खलैः । दह्यते दहने रौद्रे, नरके घोर वेदने ॥११॥

भा०—मास खाने वाले जो पापी नरक मे जाकर पड़ते हैं उनको यमराज कोल्हू मे डालकर तिल सरसों की तरह पीलते हैं और अग्नि मे डाल कर पकाते हैं सज्जन मनुष्यों का कर्तव्य है कि वह दोनों लोकों को बिगाड़ने वाला जो माँस है उसका खाना छोड़ दें ।

श्लोक-मद्यं हि सर्वथानिंद्यं, त्या यं वै बुद्धि शालिभिः । मद्य दोषेण ये येहि, प्राप्ताः दुःखं नरा भुवि ॥१२॥

भा०—बुद्धिमान चतुर मनुष्य का कर्तव्य है कि मद्य [शराब] न पीवे जो मद्य पीते है वह दु:खी होते हैं

श्लोक—अयुक्तं बहु भाषन्ते । यत्र कुत्रापि शेरते । नग्ना विक्षिप्य गात्राणि, बालका इव मद्यपाः १३॥

भा०—मद्य पीने वाले बकवाद बहुत करने लग जाते हैं गली बाजार कुरडी गन्दा नाला आदि हैं जहा तहा गिर पड़ते हैं और सो जाते हैं, जैसे

विनाशनं च युगज्ञातं च्णात्सर्वथा—तन्मूलं मदिरानु दोष जननी सर्वस्व संहारिणी ॥१६॥

भा०—भारतवर्ष में सब कुलों में श्रेष्ठ यादव कुल जिस में छप्पन [५६] क्रोड़ यादव, पृथ्वी का भूषण रूप देवताओं की बनाई हुई साक्षात् इन्द्र पुरी के समान द्वारका नगरी [यादव कुल और द्वारकानगरी] येदोनों मद्य पीने वालो के कारण से एक दम नष्ट हुये। मद्य सर्व दोषों की खान और कुल विध्वस करने वाली है जो मद्य पीवेंगे वह मर के नरक में जावेंगे मोक्ष और स्वर्ग के सुख चाहने वालो को चाहिये कि मद्य पीना छोड़ दे।

वेश्या— लोक—तपोव्रतं यशोविद्या—कुलीनत्वंदमो वयः। छिद्यन्ते वेश्या सद्यः कुठारेण लता यथा।१७।

भा०—जैसे कुहाडे के मारने ही वृक्ष की टहनी [डाल] वेल आदि कट जाती है ठीक इस ही प्रकार वेश्या भी तप व्रत यश विद्या कुल दमन व्यय [आयु] को शीघ्रातीशीघ्र नष्ट कर देती हैं। वेश्या कामी पुरुष के तन धन योवन को कामाग्नि में डाल कर भस्म कर देती है।

जेननी जनको भ्राता—तनय तनयास्वसा। न संति— वल्लभास्तस्य—गणिका यस्य वल्लभाः।१८।

भा०—जिस कामी [व्यभचारी] को वेश्या प्यारी है उसको माना पिता भाई बन्धु यार असनाब पुत्र पुत्री बहन आदि सब बुरे लगत हैं कामी पुरुष घर वालों से दुश्मनाई रखता और वेश्या से प्रेम जोड़ता है वेश्या की भावना हर समय बुरी रहती है, दया का तो वह नाम भी नही जानती।

वेस्या सर्वं धनापहरा सुख हरा धर्मस्य विध्वसिनी ज्ञात्वैवं चतुरैर्विवेक सहितै त्याज्यातु वेस्या सदा। सर्वज्ञेन

अनैण-अहेड़ा करी अजीव, हणरहै स्थूलजीव, नारकी की देत नींव, तुच्छ सुख हेतरे। जाडा पाप करी जोर, जाय पड़े अंध घोर, करे अति हेला सोर, दयाहीण तेथरे हाथे हथियार झाल, यमदूत आवेलार, लोचन करी लाल मार यहु देतरे। होय जावे आक् वाक् आहेड़े का फल चाख, मान २ मेरा वाक्य, चेत भाई चेतरे ॥ २२ ॥

वैरिणोऽपि हि मुच्यन्ते-प्राणान्ते तृण भक्षणात्।
तृणाहारा सदैवैते-हन्यन्ते पशवः कथम् ॥२३॥

भा०-प्राणों का ग्राहक बना हुआ दुश्मन तलवार लेकर मारने के लिये आ रहा है उसके सामने अपराधी मुख मे तृण लेके खड़ा हो जावे तो वह उसको जीवित अभयदान देकर चलता बनता है और मृग शुशा आदि पशु जीव तो हर समय मुख म घास (तृण)रखत हैं फिरभी मालूम नहींकि पापात्मा ऐसे भद्र जीवोंको भी कैसे मार देने हैं। जो निरा-पराधी जीवों को मारते हैं वह घोगती घोर नरक मे जा कर पडने हैं वहा उनको क्षण मात्र भी सुख नहीं मिलता। मोक्ष चाहने वालों को उचित है, कि शिकार का खेलना छोडदें।

चोरी-प्रच्छनवा प्रकाशंवा-निशायामथवा दिनम्। स्यात् पर द्रव्यं हरणं-स्तेयं तत्प्रकीर्तितम् ।२४।

भा०- गुप्त रूप से अथवा प्रकट रूप से दिन में वा रात्रि मे जो दूसरे के द्रव्य (धनमाल) को हरण करते हैं वह चोर कहाते हैं।

मणिमुक्ता प्रवालानि-हृत्वालोभेन मानवः। विविधा-नि च रत्नानि-यमद्वारेषु जायते ॥२५॥

भा०-चोर लोभ के वस हो नाना प्रकार के मणि माणिक मोती लाल प्रवाल स्त्री पशु आदि की चोरी कर अन्तमें नरक में जाय यमराज

निषेवितं बुधनुतं जैनं दया मंयुत्तम्—यो धर्मं कुरुते कला गुण निधिः सोऽती। वन्द्यो नृणाम् ॥१६॥

भा०—वेश्या धन धान्य आदि तथा सर्व सुख के हरनेवाली और धर्म कर्म को विध्वंस करने वाली है। सर्वज्ञ देव के बचन जिन को प्यारे हैं और जो दयावान चतुर पुरुष होते हैं वह वेश्या को ऐसे छोड देते हैं जैसे मनुष्य मशाण भूमि में पड़े हुए घडे को। जिन्होंने वेश्या से दिल हटाया है वही सकल गुणों की खान महा पुरुष वन्दनीय होते हैं मोक्ष के इच्छुकों को चाहिये वेश्या से प्रेम को हटालें।

सवैया—वेश्या है धूतार नार, सज सोलहसिंगार, पर घर मांडे प्यार पैसा तणी यार रे। कामी अन्यनर जेह, तिनसु लम्पट होय, नरभव देवे खोय, मूर्ख गवाँर रे। लोक में अपयश थाय, मरी ने दुर्गत जाय, ताताथंभ करीताह, चपेटें छेतिवार रे। उछल आकाशजाये त्रिशूल में पिरोवेताह, मान मान मेरी बात, तजो वेश्या नार रे ॥ २० ॥

जब तक पास में पैसा रहेगा, मिट्ठी बात बनायेगी।
कंगालों को अल्प समय में, जुत्ते मार भगावेगी।

शिकार श्लोक—वसन्त्यरण्येषु चरन्ति दूर्वाः पीवन्ति तोयान्य परिग्रहाणि नराणां, तथापि वध्या हरिणां, को लोक माराधयितुं समर्थ ॥ २१ ॥

से जाके नरक में उत्पन्न होता है और वहा यमोंद्वारा नाना प्रकार के दुःख भोगता है। किसी कारण से वह पापात्मा मनुष्य जन्म को भी प्राप्त करलेता है तो दुरभागी [भाग्यहीन] होता है नोकर दास बनता है महा दरिद्री होता है इस लिये धर्मात्मा मोक्षाभिलाषियों को चाहिये कि चोरी करना छोड़ दें किसी की बिना दी हुई वस्तु न लें।

परस्त्री त्याग श्लोक—पर स्त्री ही पर त्याज्या, परलोक विनाशिनी।
द्रव्य हानि करीज्ञेया, कीर्ति देस विनाशिका ॥३०॥

भा०—पर स्त्री धन और देह का नाश करने वाली है कीर्ति को नष्ट करने वाली है दोनों लोकों को बिगाड़ने वाली है इस लिये प्यारे बन्धुओ पर स्त्री से बचो और अपने सत्य शील में दृढ रहो

श्लोक—परपूर्णेऽपि तटाके, काकः कुम्भोदक पीवति।
अनुकुलेऽपि कलत्रे, नीचः परदार लम्पटो भवति ॥३१॥

भा०—पर स्त्री लम्पट महा नीच पुरुष अपनी धर्म पत्नी को छोड कर पराई स्त्रियों के पीछे हडखाये कुत्ते की तरह फिरते ही रहते हैं, जैसे काग मानसरोवर को छोड कर घडे के पानी में ही जाके चूंचडबोता है।

श्लोक—वासरेण क्षुधा नास्ति, निद्रा नास्ति च शरवरी।
स कामस्य हि पुरुषस्य, हृदय वसति कामिनी ॥३२॥

भा० पर स्त्री लम्पट कामी पुरुषों को न दिन में भूख लगती है और न रात्रि को नीन्द ही आती है। हर समय उनका चित बिकल बना रहता है।

सवैया—पर नारी सङ्ग जाय, शका नहीं आने काय, प्रसिद्ध होवे लोक में राजा दण्ड देवे रे। सुत तणी सुने बात, लाजे घणा माय तात, दुःख धरे दिन रात, होवे भण्ड भड रे। सदा रहे मुरझाय, मरीने कु गत जाय जम दोला फेरे आय, करे खड खड रे। मुख करे हाय हाय, कारी लागे नहीं काय, विषय दुःख दाय, विषय दूर छड रे ॥३३॥

दोहा—कूप पड मरना भला, पिना भला विष पान।
अनेक दुःख की आपदा, नहीं व्यभिचार समान ॥३४॥

के पाहुने बनते हैं और वहा घोर वेदना को भोगते हैं ।

श्लोक—कातराणां यथा धैर्य, बन्ध्यानां संतति यथा ।
न विश्वा स्तथा लोके, नृणामदत्त हारिणाम् ॥२६॥

भा०—डरपोक (कमजोर दिल वाले) को धैर्य नहीं होता, बध्या स्त्री के सन्तान नहीं होती ठीक इस ही प्रकार चोरी करने वाले का कोई विश्वास नहीं करता है, जहा भी कहीं जावे चोर वहीं धक्के खाताहै और निरादर का पात्र बनता है ।

श्लोक—धनहानि राजदडं, कीर्तिं नाशं तथैव च ।
चौर्य कर्म प्रसादेन, प्राप्यन्ते दुःख कोटयः ॥२७॥

भा०—चोर को राज्य दण्ड भुगतना पड़ता है, और धन का नाश होता है, ससार से उसकी कीर्ति (बड़ाई) उठ जाती है और चोर को नाना प्रकार के दु ख उठाने पडते हैं ।

सवैया—चौमासे को रात जोर, दगाकरीपात जोर, गामांपुर ठोर ठोर, फिरता अकेला रे, द्रोह करी लावे दाम, करे अति भुण्डा काम, पाप उदय होय, ताम ग्रहत भूपालरे मार देवे भरपूर, कान नाकरें दूर, आमा सामा फेरे रूर चोहटे चोचालरे । माठीगत जावे मर, साता नही तिल भर चोरी पर हर नर, चोरी है चडाल रे ॥२८॥

श्लोक—शूलिका रोहणं केचि—च्छिर श्छेदं तथापरे ।
नासिका कर्णछेदादि, केचिद्वै चतुर गताम् ॥२६॥

भा०—चोरी करनेवाले किसी चोर को तो शूली दी जाती है, किसी का गरदन से मस्तक काटा जाता है, किसी का कान नाक काटा जाता है [illegible] किसी [illegible] चार गति यातनायें भोगनी पडती है चोरी कर्म के प्रभाव

उभयकु वर सम्यक्त्वरत्न का धारक बन गया। अब उभयकु वर सत गुरु के सगर्स से धर्मात्मा बन गया, गुणवानों की सगति मे बैठने मे गुन हीन भी गुणवान हो जाया करता है। तेल फुलेल अत्तर की थोड़ी सुगध से भी मकान सुगन्धित हो जाया करता है। गुरु की सेवा मे रहकर सामायिक सम्वर प्रतिक्रमण व्रत पोषा करने लग गया, जिनदत्ता ने सुना कि कि उभय व्यसनों को छोड़ अब धर्म में लग गया है और सदाचारी बन गया है अपने मन मे कहने लगी कि पीछे भी मेघ बर जावे तब भी खेती पैदा हो ही जाया करती है अथवा यों कहिये कि सुबह का भूला भटका भी साज को घर आ जावे तो समझदार लोग उसको भूला नहीं कहा करते ऐसे ही मेरा भाई भी अब सुधर गया तो अच्छा ही हुआ अब भी कुछ नहीं बिगड़ा ये सब गुरु देव का ही प्रताप है गुरुदेव की कृपा से बकचूल और दृट प्रहारी जैसा चोर परदेशी राजा जैसा नास्तिक मति घोर हिंसा का करने वाला सयति राजा श्रेणिक राजा जैसा मिथ्याति पाप छोड़ धर्म में लग गये।

श्लोक—तारणाय मनुष्याणा, सहारे परि वर्तताम्। नास्ति तीर्थं गुरु सम बन्धच्छेद कर द्विजः ।४०।

भा०—इस परिवर्तन शील ससार में ससार समुद्र से पार उतारने वाले कर्मों का बन्धन काटने वाले सब तीर्थों से उत्तम तीर्थ गुरु ही होते हैं

श्लोक—स्थल जाचोदकात् सर्व, वाह्य मल प्रणश्यति। जन न्तर कृतान् पापान्, गुरु तीर्थं प्रणशयेत्। समारे तारणायैव, जगम तीर्थ मुत्तम ।४१।

भा०—पृथ्वी पर पड़े हुए जल में नहाने से तो शरीर के मल की ही शुद्धि होती है किन्तु गुरु सेवा मे जन्म जन्मातर के पाप मल नष्ट होते हैं गुरु रूपी जगम तीर्थ ऐसा है कि जो गुरु की तन मन से सेवा करेगा वह ससार सागर से पार हो जाता है। बहन जिनदत्ता भाई उभयकु वार के पास गई और शुभाशिर्वाद दे बड़े प्रेम के साथ अपने घर ले आई भोजन जीमाया और पहरने को सुन्दर वस्त्र दिये और व्यापार के लिये धन माल

दोहा—नाम बिगाड़े बाप का, कुल मे धरे कलक ।
टले कभी-नहीं टलता, ये लाछन नो अङ्क ।३५।
मनुष्यों मे उज्वल मुखे, बोल सके नही बोल ।
व्यभिचारी का जगत में, तृण तुल्य है मोल ।३६।
श्लो—दिवा पश्यति नो लूकः, काको नक्तं न पश्पति ।
अपूर्वः कोऽपि कामाधो, दिवानक्त न पश्यति ।३७।
भा०—उल्लू को दिन में और काग को रात्रि में नहीं दिखता किन्तु कामी तो रात्रि दिन दोनों का ही अन्धा होता है कामी को भली बुरी किसी भी बात का ज्ञान नही होता ।
श्लोक—लिङ्गच्छेद खरा रोंध, कुलाल कुसुमार्चनम् ।
जन निन्दा मभोगत्व, लभते पार दारिकः ।३८।
भा०—कामी पुरुष की इन्द्रि का छेदन किया जाता है मस्तक पर पांच चोटी रख टूटी फूटी जुतितों का सुहावना हार गले मे पहना आगे फूटा ढोल बजा देश निकाला कर देते हैं या शूली और फासीकी हवा खिलाते हैं कामी का तन धन कुल सब क्षय हो जाता है ।
श्लोक—सन्तोषः स्वेषु-दारेषु, पर दारा परा मुखः ।
प्रथयन्ति गृहस्थाना, चतुर्थं तदणु व्रतम् ।३९।
भा०—मोक्षाभिलाषी का कर्तव्य है कि वह अपनी धर्म पत्नी मे ही सतोष रख पर स्त्री का त्यागन करदे पर स्त्री को माता बहन पुत्री की दृष्टि से देखे । एक २ व्यशन के वस पडकर प्राणी कितना दुःख उठाता है और जोसातों के वस मे पड जाते हैं तो उनके दु.ख का तोकहना ही क्या है सद्गति इच्छुक सजनों को चाहिये कि सातों व्यसनों को छोड भगवत भक्ति मे चित लगावे जिस मे कि सद्गति की भागी होके सदके अमृतमय

मयी माता, सर्व देव मय पिता। मातर पितर तस्मात्, सर्व यत्नेन पूजयेत् ।४४।

भा०-जिसने माता पिता की सेवा करली कि बस समझो कि उसने सब कुछ कर लिया माता पिता की सेवा कोई भाग्यशाली पुत्र ही किया करते हैं, हर एक से तो माता पिता की सेवा हो भी नहीं सकती है। कु वर बहन बहनोई की आज्ञा ले माल के गड्डे भर उज्जैन जाने के लिये तैयार हो गया। बहनोई ने उसको बहुत कुछ माल दिया, उज्जैन जाने के लिये व्यापारी भी उसके पास आ गये अब वह उन सबों को साथ ले घर को चल दिया बहन बहनोई दूर तक पहुँचाने के लिये गये। मार्ग में कु वार के दिल मे माता पिता के दर्शनों की बड़ी भारी इच्छा हो गई और मन में कहने लगा कि यदि मेरे पाख होती तो बस अब ही क्षण भर में उड़ कर माता पिता के दर्शन कर लेता। ये विचार कर साथ वालों से कहा तो उनमे जो अधिक चलने वाले थे वह बोले लो भाई हम साथ को छोड़ कर तुम्हारे साथ चलते हैं और ये साथी सब पीछे आते रहेंगे। अब उमयकु वर शीघ्रगति से चलने वालों को साथ ले चल दिया मार्ग में एक बड़ा भारी बन आया उस भयङ्कर बन मे परवेश करते ही रास्ता भूल गये दिन छिप गया सारी रात्रि बन में रहकर बिताई प्रात.काल होते ही कुव र को और उसके साथियों को बड़े जोर की भूख लगी। अब उमय के साथी बन के फल फूल तोड़ने के लिये आगे बन मे बढे तो क्या देखते हैं किएक वृक्षके बड़े सुन्दर सुहावने मनमोहक सुगन्धदार फल लग रहें हैं उन्होंने उन फलों को तोड़ा और झोला भर २ उमय के पास लाये और बोले आप इन फलों को खाओ।

उमय बोला-इन फलों का क्या नाम है ? साथियों ने उत्तर दिया कि नाम तो हम इन फलों का नहीं जानते और आप को भी इन फलों के नाम को पूछने की आवश्यकता क्या है ? इनमे जो आप को कड़वा और नि:सार [रस रहित] मालूम होवे तो उसको मत खाना और जो मिष्टे रस वाले स्वादिष्ट हों उनको खा लेना जिस से भूख मिट जावे

नहीं खाऊगा, कल मरता चाहे आज ही मरजाऊ, मरने का मेरे को डर नहीं, किन्तु अपने लिये हुए नियमको प्राणोंके लिये नहीं तोडूगा। उमय कुवर की दृढ प्रतिज्ञा और धैर्यता को देखकर वनदेवी वडी प्रसन्न हुई और बोली–उमय ? तुम वड़े धर्मात्मा हो निमय के वड़े पक्के हो, मैं तुहारी दृढ प्रतिज्ञा से अति प्रसन्न हूँ। भाई ? मैं इस वन की देवी हू–जो मागना हो मागो ? मै वही दूगी। उमय बोला– बहन जी यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो इन अचेत पड़े हुए सारे साथियों को सचेत करदे और उज्जैन का रास्ता वतलादे। तथास्तु कह देवी ने सबको सचेत कर दिये साथी सब खड़े हो गये और बोले–भाई उमय आप वडे उपकारी हो आज आपकी कृपा से ही हमे पुनः जीवन प्राप्त हुआ [जीवित हो गये हैं] हमने आपके लिये हुए नियम का प्रभाव आखों से देख लिया है।

उमय कुमर साथियों को ले वहा से चल दिया, देवी रास्ता-वतलाने के लिये दूर तक साथ आई और रास्ता वतलाके वापिस अपने स्थान को चली गई। अब उमय साथियों के साथ उज्जयिनी के निकट आयातो नगर रक्षक देवता का आसन कम्पायमान हुआ और अवधि ज्ञान द्वारा देखा कि उमय कुवर अपने घर आने लग रहा और समस्त नगरी में उसकी बुराई की डुडी पिटरही है और यह प्रजा की निगाह (दृष्टी) से गिरा हुआ है जब तक इसका अपयश दूर न हो तब तक इसका नगरी मे प्रवेश होना ठीक नहीं है। इसलिये इसके फैले अपयश को मैं ही दूर करूगा।

देवता ने शहर के बाहिर एक बहुत बढिया सुन्दर मडप बनाया उसके बीच एक रत्न जडित सिंहासण बनाया औरआते हुए उमयकुंवर से मिला और उसके पैरों मे पड़ा हाथ जोड प्रेक्षक मडप में ले गया और सिंहासन पर बैठा देव दुदभी बजाई पच दिव्य प्रकट किये चरण पूजे फूलों की बारिस की। देव दुदभी के शब्द को सुनकर राजा मंत्री सेठ सेटानी और नगरी के समस्त नर नारी भागे हुये जगल की तरफ आये कि देखें कि यह देव दुंदभी किसके ऊपर बज रही है, पास में आ

उमय ने कहा—भाई जी जो तुमने कहा सो ठीक है किन्तु मेरे साथियों ने अन
जाने [अजान] फल को खाने का नतीजा देख लिया है मैं तो इन फलों को
नहीं खाऊंगा। कुमार के सब साथियों ने उन फलों को खा लिये उन के साथ
खाया वह किंपाक [जहर] फल थे ये फल देखने में बड़े सुन्दर
मालूम होते हैं सूंघने में बड़ी भीनी सुहानी सुगन्ध आती और खाने में
बड़े स्वादिष्ट लगते हैं किन्तु गले के नीचे उतरते ही ये प्राण हरण कर
लेते हैं! उमय के मित्रों ने यह फल खाये फल खाते ही जहर चढ़ गया
और मुंह में झाग आ गये, वे बेहोश होकर भूमि पर गिर पड़े यह दृश्य
देख कर उमय को बड़ा दुःख हुआ और सोचने लगा कि भला यह
कौन जानता था कि यह जहर फल हैं और इन के खाने से मर जायेंगे
अब यह कैसे जीवित हों वह तो इस विचार में बैठा ही था कि उस की
परीक्षा के लिये वनदेवी स्त्री का रूप बना सामने आकर खड़ी हो गई
और बोली भाई जी? यह जो सामने कल्प वृक्ष खड़ा है तैंने इसके फल
क्यों नहीं खाये। क्यो भूख की महा वेदना को सहन करने लग रहा है
तेरे साथियों ने जो फल खाये थे वह जहर फल थे और यह अमृत फल
है। ये अमृत फल किसी भाग्यशाली को ही प्राप्त होते हैं हर एक को
नहीं. इनके एक वार के खाने से शरीर के सब रोग दूर हो जाते हैं और
जो इनको कई बार खाले तो बस समझो कि वह अमर हो जाता है कोई
किसी प्रकार का दुख उस के पास फटकने नहीं पाता इन फलों का
खाने वाला चराचर सब वस्तुओं का जानने वाला बड़ा ज्ञानी होता है मैं
पहिले बहुत बुढिया थी और वृद्धावस्था के कारण मैं महा दुख पा रही
थी. दया कर इन्द्र महाराज मेरे लिये यह कल्प वृक्ष यहां रख गया है
इसके फलों को खाकर मैं जवान हो गई हूं। इस लिये भाई तू मेरा कहा
मान और इसके अमृत फलों को खाकर भूख को मिटा ले।

उमयकुमार बोला—बहन जी? जो तुमने कहा सो ठीक है किन्तु
मैंने तो कभी इन फलों को देखा ही नही और न मैं इन फलों को जानता
हूं और न मैंने पहले इनका नाम ही सुना इसलिये मैं तो इन फलों को

अपूर्व चमत्कार मैंने स्वय अपने नेत्रों से देखा जिस को देख कर मैं सम्यक्त्व रत्न मे खूब ही दृढ हो गई हूँ। अर्हदास बोला भद्रे ! जो तुम ने आखों से देखा है मैं उस में श्रद्धान करता हू चाहता हूं और उसमें रुचि करता हूँ। सेठ की अन्य स्त्रियों ने भी कहा धन्य है उमय कुंमार को जो अपने लिये नियम में दृढ रहा, बहन जी जो तुमने कहा वह बिल्कुल सत्य है। कुन्दलता बोली—बहन ! ऐसी झूठी बात के कहने और सुनाने में क्या धरा हैं तू क्यों ऐसी झूठी बातें बनाकर इन को बह का रही है। बड वृक्ष पर बैठे हुए राजा और मत्री मन में जल उठे और कहने लगे हम इस दुष्टा को इसके किये का फल चखावेंगे। चोर सोचने लगा दुष्ट जो होते हैं वह अच्छे को बुरा कहा ही करते हैं। सेठ अर्हदास जी विद्युतलता से बोला भद्रे ? तुम भी अपने दृढ सम्यक्त्व रत्न प्राप्त होने की कथा सुन ओ। विद्युतलता बोली स्वामी नाथ जी सुनिये।

❀ ८ विद्युतलता का—कथा कहना ❀

कच्छ देश के कौशम्बी नगरी में मेरा जन्म हुआ था, वहा उस कौसम्बी-नगरी में सुदण्ड नाम का राजा था वह न्याय नीति में में अति निपुण था, उस की रान का नाम 'विजयासुन्दरी' था। मत्री का नाम 'सुमतिदेव' और उसकी स्त्री का नाम 'गुणश्री' था। नगर सेठ का नाम 'सुरदेव' था और सेठानी का नाम 'गुणवती' था। एक बार नगर सेठ सुरदेव व्यापार के लिये मङ्गलदेश में चला गया वहा उसने बहुत माल कमाया। चलने समय सेठ ने मङ्गल देशका एक बहुत अच्छा सुलक्षण घोडा खरीदा और देश में आया घर वालों से मिला और वह घोड़ा राजा की भेट किया राजा घोड़े को देख के बड़ा प्रसन्न हुआ और सेठ को बड़ी इनाम दीं और बहुत प्रशसा की सेठ अपने घर आया और आनन्द से रहने लगा।

एक दिन उस सेठ के घर पर घोर तपस्या के करने वाले एक मुनि अहार लेने के लिये आ गये सेठ ने शुद्ध भावों से आहार दान

श्री था अशोक घोडों की रक्षा के लिये नोकर की तलाश मे था कि इतने में समुद्रदत्त अशोकके धर पहुँचा और जय जिनेन्द्र देव की कहके सामने खडा होगया अशोक बोला–भाई क्या चाहता है–समुद्रदत्त बोला श्रीमान् जी में नोकर रहना चाहता हूं। अशोक बोला –मेरे सात सो घोडे हैं, तू इनकी से मे रहना। समुद्रदत्त बाला आप नोकरी क्या दोगे । अशोक बोला–भाई? मैं तेरे को छठे महिने एक सिर पर बान्धने को साफा ओढने को कम्बल और पैरों में पहन ने को जुत्तो का जोडा दिया करूगा। और तीन वर्ष के बाद मेरे सात सो घोडो में से दो घोड़े जो तेरे पसन्द आवे वह ले लेना। समुद्रदत ने अशोक की बात मानली और घोड़ों की सेवा करने लगा। समुद्रत्त अशोक की पुत्री कमलश्री के लिये जगल में से बड़े स्वाद्दि (मिठे–मन मोहक) फल फूल खाने के लिये लाकर देने लगा और प्रति दिन अच्छा गाना सुनाने लगा उसके दिये हुए मधुर फल फूलों को खा २ कर और अच्छे राग रागियों सुनकर कमलश्री समुद्रदत्त की सेविका वन गई और दिल में प्रण कर लिया कि मैं अपना पति देव समुद्रदत्त को ही बनाऊगी। ऐसे रहत २ समुद्रदत्तको वहा तीन वर्ष पूर्ण होने को हो गये तो एक दिन कमलश्री से बोला–कमले ? तेरी कृपा से मेरे तीन वर्ष वड़े आनन्द से बीते अब यहा मेरे साथी आने वाले हैं म उनके साथ अपने घर क जाऊगा में किसी समय भूल बस तुमको कुछ कह दिया होतो क्षमा कर देना यह सुन कर कम श्री एक दय उदास हो गई और बोली–आप तो अपने घर चले जाओगे, बतलाओ मैं किसके सहारे अपना जीवन बिताऊंगी आपके बिना अब मेरा जीना कठिन है, मैं तो अपना विवाह सब की साक्षी से आपके साथ करूगी और आपके साथ देशको चलूखी। समुद्रदत्त बोला–तू एक बडे धनवान सेठ की बेटी है, और मे एक गरीब का लडका हूँ मेरे साथ चलने मे तेरे को सुख नहीं मिलेगा दारिद्रि तो सदा दुखी रहा करते हैं और जो दरिद्रि के पास मे रहनेवालेहोते हैं वह उससे भी अधिक दुख पाया करते हैं ।

कमलश्री बोली–आप इस बात की चिन्ता न करे कि मे गरीब

दिया आहार दान के प्रभाव से देवताओं ने अचित फूल बरसाये देव दुन्द भी बजाई पच दिव्य प्रकट किये कौशम्बी नगरी मे ही एक दरिद्री वणिक रहता था उसका नाम 'सागरदत्त' था उसकी स्त्री का नाम 'श्रीदत्ता' था उसके अङ्ग से उत्पन्न हुआ एक पुत्र था जिस का नाम समुद्रदत्त था उसने भी सुरादेव के दान के फल को देखा और मन मे विचारने लगा कि मै तो बिलकुल निर्धन हु दरिद्रावस्था मे भला म कैसे आहार दान दे सकता हूं जिसके पास रुपया होता है उसकी माता पिता-

थी था अशोक घोड़ों की रक्षा के लिये नोकर की तलाश मे था कि इतने में समुद्रदत्त अशोकके घर पहुँचा और जय जिनेन्द्र देव की कहके सामने खड़ा होगया अशोक बोला-भाई क्या चाहता है-समुद्रदत्त बोला श्रीमान जी मे नोकर रहना चाहता हू। अशोक बोला -मेरे सात सो घोडे है, तू इनकी सेवा मे रहना। समुद्रदत्त बोला आप नोकरी क्या देंगे। अशोक बोला-भाई? मैं तेरे को छठे महिने एक सिर पर बान्धने को साफा ओढ़ने को कम्बल और पैरों मे पहन ने को जुत्तो का जोडा दिया करू गा। और तीन वर्ष के बाद मेरे सात सो घोडो में से दो घोड़े जो तेरे पसन्द आवे वह ले लेना। समुद्रदत ने अशोक की बात मानली और घोडो की सेवा करने लगा। समुद्रत्त अशोक की पुत्री कमलश्री के लिये जगल मे से बड़े स्वादिष्ट (मिठे-मन मोहक) फल फूल खाने के लिये लाकर देने लगा। और प्रति दिन अच्छा गाना सुनाने लगा उसके दिये हुए मधुर फल फूलो को खा २ कर और अच्छे राग रागियों सुनकर कमलश्री समुद्रदत्त की सेविका बन गई और दिल मे प्रण कर लिया कि मे अपना पति देव समुद्रदत्त को ही बनाऊंगी। ऐसे रहन २ समुद्रदत्तको वहा तीन वर्ष पूर्ण होने को हो गये तो एक दिन कमलश्री से बोला-कमले ? तेरी कृपा से मेरे तीन वर्ष बड़े आनन्द मे बीते अब यहा मेरे साथी आने वाले हैं मे उनके साथ अपने घर को जाऊगा मे किसी समय भूल बस तुमको कुछ कह दिया होतो क्षमा कर देना यह सुन कर कमलश्री एक दम उदास हो गई और बोली-आप तो अपने घर चले जाओगे, वनलाओ मे किसके सहारे अपना जीवन बिताऊ गी आपके बिना अब मेरा जीना कठिन है, मे तो अपना विवाह सब की साक्षी से आपके साथ करू गी और आपके साथ देशको चलू गी। समुद्रदत्त बोला-तू एक बड़े धनवान सेठ की बेटी है, और मे एक गरीब का लडका हूं मेरे साथ चलने मे तेरे को सुख नही मिलेगा दारिद्रि तो सदा दुखी रहा करते हैं और जो दरिद्रि के पास मे रहनेवालेहोते हैं वह उससे भी अधिक दुःख पाया करते हैं।

कमलश्री बोली-आप इस बात की चिन्ता न करें कि मे गरीब

दिया आहार दान के प्रभाव से देवताओं ने अचित फूल बरसाये देव दुन्द भी बजाई पञ्च दिव्य प्रकट किये कौशम्बी नगरी में ही एक दरिद्री वणिक रहता था उसका नाम 'सागरदत्त' था उसकी स्त्री का नाम 'श्रीदत्ता' था उसके अङ्ग से उत्पन्न हुआ एक पुत्र था जिस का नाम समुद्रदत्त था उसने भी सुरादेव के दान के फल को देखा और मन में विचारने लगा कि मैं तो बिलकुल निर्धन हूँ दरिद्रावस्था में भला मैं कैसे आहार दान दे सकता हूं जिसके पास रुपया होता है उसकी माता पिता भाई बन्धु स्त्री पुत्र आदि सब इज्जत करते हैं।

कवित—माता कहे मेरो पूत सपूत है, बहन कहे मेरो सुन्दर भैया। तात कहे मेरा है कुल दीपक, लोक मे लाज अधिक बधैया। नारी कहे मेरा प्राण पति ओ, जिन को जाके मै लेऊं बलैया। कवि गङ्ग कहे सुन शाह अकबर, जग में सोइ बड़ो जाके गांठ रुपया ॥१॥

मै भी परदेश जाकर धन कमा कर लाऊंगा और फिर अपने हाथोंसे मुनि महाराजों को आहारदान देऊंगा, ये विचार कर अपने चारों मित्रों को लाबुकर बोला—भाइयों चलों परदेश मे चलें और वहा से धन माल कमाकर लावें मित्रों को साथ ले समुद्रदत्त मगल देश मे पहुंचा वहा पालाश नामक गाम में जाकर अपने चारों साथियो से बोला भाइयो अब अपन सब को बिछुड़ना पड़ेगा और खाय कुमाकर तीसरे वर्ष अपने क दमही गाम में मिलना होगा और फिर आपा सब मिलकर घर को चलेंगे। आपस मे इकरार करके सब अलग २ गामों में चले गये और समुद्रदत्त पालाश गाम मे प्रवेश कर गया। गाम मे एक "अशोक" नाम का बोहरा का व्यापारी महाजन रहता था उसकी स्त्री का नाम "वितशोका' था उनके एक प्राणों से भी अधिक पियारी पुत्री थी उसका नाम कमल

के कथन को सुनकर पास मे रहने वाले बोले–सेठ जी आप मिक मूर्ख को समझाय रहे हो यह तो बड़ा जिदी और हठी है। सेठ बोला– भाइयो यह मूर्ख क्या है कोरा भाग्यहीन है इसको बुरी वस्तु तो अच्छी लगती है और अच्छी बुरी लगती है।

समुद्रदत्त बोला–सेठ जी तीन वर्ष की सेवाका फल जो आप मेरे को देना चाहते हो और अपने दिये हुये वचनका आपको कुछ ख्याल हो तो बस मेरे को येह दोनों घोडे दे दो। सेठ भागा हुआ अपने घर गया और घर वालों को इकट्ठा कर पूछा कि बतलाओ मेरे इन दोनों कीमती घोडो का भेद समुद्रदत्त को किसने बतलाया जिससे वह दोनों घोड़ों के लिये ही इतना आग्रह कर रहा है। सबने सपन्थ पूर्वक (सोगन्द खाकर) कहा–सेठ जी ? हमे पता नही कि किसने भेद दिया–बीच में एक नोकर बोला–सेठजी आपकी पुत्री कमलश्री ने एक दिन समुद्रदत्त के सामने इन दोनों घोड़ों के गुण बतलाये थे। ये सुनकर सेठ को गुस्सा आया और मन में कहने लगा कि–कमलश्री बडी दुष्टा है कि जिसने घर का सारा भेद समुद्रदत्त को दे दिया–स्त्री जाति जो कुछ न करले वही थोड़ा है, ये बहुत ोड़े दिल की होती हैं कहा भी है कि–

श्लोक–अपक्वे तु घटे नीरं, चालिन्या सुक्ष्म पिष्टकम् ।
स्त्रीणाँच हृदय वार्ता, न तिष्ठति कदापि हि ॥ २ ॥

भा०–जैसे कच्चे घडे में पानी और छलनी मे बहुत बारिक [सुक्ष्म] चून नही रह सकता ठीक इसही प्रकार स्त्री भी कही सुनी देखी हुई बात को को हृदय मे नही रख सकती, स्त्री घर की बात को तिलभर भी नही पचा सकती बातों से मालूम होता है कि कमलश्री इस पर मोहित हो रही है इस लिये इसने इसका सारा भेद बतलादिया है, यदि मैं इसको कुछ कहा सुनी करू गा तो वह भी ठीक नहीं है क्यों कि यह बालक पन से मेरे सारे घर की भेदु है और घर का कुछ भेद न देदे के मे दो घोड़े

हू ? मेरे पिता के पास सातसे घोड़े हैं जिन में दो घोड़े ऐसे हैं कि जिस के पास वह होते हैं वह धनाढ्य बन जाता है। आप जाते समय वह दोनों घोडे मेरे पिता जी से माग लेना एक घोडा तो आकाश में चलने वाला है जिस का रङ्ग सफेद है दूसरा जल पथा है उसको जल मे छोड़ दो वह मुरगाई की तरह तिर के पार हो जाता है। वे दोनों घोडे बडे सुलक्षणे हैं चार अगुल के उनके कान हैं वह बडे दुबले पतले हैं उसका आप कोई ख्याल मत करना, कमलश्री के कहने से समुद्रदत्त ने उन ही दोनों घोडों के लेने का निश्चय कर लिया एक दिन समुद्रदत्त के चारों साथी धन माल कमाकर समुद्रदत्त के पास आ गये वही सबने खाना पीना किया दूसरे दिन समुद्रदत्त अशोक के पास गया और बोला—सेठ जी मेरे सब साथ आ गये हैं और आपकी सेवा मे रहते मेरे को भी तीन वर्ष हो गये हैं अब मैं अपने घर जाना चाहता हू जो कुछ इनाम देना चाहते हो वह मेरे को देकर विदा करो।

अशोक बोला—भाई तू क्यों जाना चाहता है जो नोकरी कम मिलती हो तो वैसी कह तेरी नोकरी बढा दू गा तू यहीं रहा कर—मैं अपनी कमलश्री का विवाह भी तेरे से कर दू गा। समुद्रदत्त बोला सेठ जी आपने कहा ठीक है किन्तु इस समय लौं मैं और कुछ न चाह कर केवल इनाम ले घर जाना चाहता हूँ आप जल्दी ही मेरे को घर जाने की आज्ञा दें। अशोक ने समुद्रदत्त को बहुत कुछ इनाम किनाम दे बोला भाई मेरे सातसे घोडों मे से जो तेरे पसन्द आवे वह लेले, आज्ञा पाते पर समुद्रदत्त घोडों के पास गया और वह आकाश पन्था और जलपन्था घोडे [illegible] सेठ जी आप मेरे को यह दोनों घोडे देदें यह देख कर सेठ को बड़ी चिन्ता हुई और बोला समुद्रदत्त [illegible] तू ने [illegible] इतने दुबले पतले घोड़ों को पसन्द करता है, जो तेरे [illegible] सातसे घोडे नाना प्रकार रङ्ग के हैं इनमें जो अच्छे से अच्छे हों वह लेले। समुद्रदत्त बोला—सेठ जी चाहे यह कैसे भी क्यों न हों देने हों तो आप मेरे को यही देदें, दूसरे घोड़े मैं नहीं लूगा, समुद्रदत्त

दिन समुद्रदत्त आकाश गामी घोडे को ले 'सुदण्ड' राजा के पास गए हाथ जोड भेट सामने रख अपना आद्योपान्त सब वृतान्त कह सुना ।। और वह घोडा भी भेट मे दे दिया । राजा ने भेंट स्वीकार कर अपनी पुत्री 'अनङ्गसेना' का विवाह समुद्रदत्त के साथ कर दिया और आधा राज्य दिया और बहुत कुछ माल दे विदा किया अब समुद्रदत्त दोनों स्त्रियों के साथ आनन्द पूर्वक रहने लगा साधु मुनि महाराजो को चोद प्रकार का दान देने लगा, अपने पवित्र धन को दान पुण्य में लगाने लगा । शहर भर में समुद्रदत्त की महिमा सुरदेव से भी अधिक फैल गई उस ही नगरी में एक 'ऋषभदत्त' सेठ रहता था वह राजा का परम मित्र था राजा ने ऋषभदत्त को बुलाकर वह गगन गन्धी घोडा रक्षा के लिए सौंप दिया अब सेठ रात दिन घोडे की रक्षा मे रहने लगा, घोडे पर हाथ फेर २ कर सेठ ने घोडे को अपने वस मे कर लिया ।

एक दिन सेठ ने विचार किया कि क्यों न इस घोडे पर चढकर साधु साध्वियों के दर्शन करू, यह विचार कर सेठ दूज पञ्चमी अष्टमी एकादशी चतुर्दशी अमावस्या पूर्णमा को वैताढ्य पर्वत पर जाकर साधु साध्वियों के दर्शन कर उपदेश सुन घर आ जाया करता था, पापियो का समय लडाई झगड़े या सोने में बींता करता है और धर्मात्माओं का समय धर्म कार्य में बीता करता है सारे शहर में सेठ ऋषभदत्त की महिमा फैल गई । एक दिन का जिकर है कि सेठ घोडे पर बैठा हुआ आकाश मार्ग से वैताढ्य पर्वत पर जा रहा था कि रास्ते में पल्लीपुर (कनकपुर) नाम का नगर आया वहा का राजा जितशत्रु था वह बडा अन्यायी और पापी था उसके राज्य में चोर जुवारी परस्त्री लम्पट ठग कपटी बहुत रहते थे । एक राज्य कर्मचारी ने आकाश मार्ग से घोड़े पर बैठ कर जाते हुये सेठ को देखा वह भागा हुआ राजा के पास गया और कहने लगा श्री महाराज देखिये यह आकाश में घोड़े पर बैठा हुआ जो जा रहा है यह कौशम्बी नगरी का ऋषभदत्त सेठ है । जिसके पास यह घोड़ा होगा वह ससार मे लक्ष्मी पात्र समझा जावेगा ।

देने की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ न दूंगा तो वचन झूठा जावेगा । सेठ ने सोच समझकर समुद्रदत्त को वह दोनों घोड़े दे दिये और अच्छा सा दिन देखकर कमलश्री का विवाह भी समुद्रदत्त के साथ कर दिया और माल भी दिया। अब समुद्रदत्त कमलश्री को और दोनों घोड़ों और माल ताल को ले अपने साथियों के साथ देशको चल दिया, इनके चलने से पहिले ही लोभ बस हो सेठ समुद्रपर जाकर मल्लाहों को लोभ लालच दे बोला-मेरी बेटी और जमाई यहा आवेंगे उनके पास दो घोड़े हैं पार उतार्ई पार उतराई की एवज] मे और कुछ न मांगकर उन से वह दोनों घोड़े मांगलेना । सेठ पुत्री और जमाई को दूर तक छोड अपने घर को चला आया और वह समुद्रपर आये ।

समुद्रदत्त मल्लाहों से बोला-तुम हमको पार उतार दो और जो कुछ उतराई का लेना हो वह खोल दो । मल्लाह बोले-हमारे कोई खेती नही बाड़ी नहीं, हमारे तो काम यही है कि आये गयों को पार उतारना यदिआपको पार उतरना हो तो जो आप के पास ये दुबले पतले घोड़े हैं ये देदीजिये यदि आप उतराई की ऐवज में घोडे नदोगे तो हम आप को पार नहीं उतारेंगे और न जहाज में आपका माल ही चढने देंगे । समुद्रदत्त बोला भाई घोडे तो मै नहीं दूंगा और जो उचित हो वह उतराई लेवें । मल्लाहबोले-हम घोड़ों के सिवाय और कुछ नही लेंगे । समुद्रदत्त के साथियों ने भी कहा कि तू क्यों हट करता है क्यों नहीं घोडे देकर पहले पार हो जाता । कमलश्री बोली नाथ आप और किसी प्रकार के विचार मे न पड़े आप दोनों गगन पन्थी घोडे पर बैठ लेंगे और जो कुछ माल ताल है वह जल पन्थी घोड़े पर भर कर पार हो जायेंगे अब समुद्रदत्त ने सब सामान जल पन्थी घोड़े पर लाद दिया और एक [illegible] उसके गले मे बान्ध हाथ मे पकड आकाश मे उडकर चलने वाले घोड़े पर बैठ समुद्र से परले पार हो गये मल्लाह और उसके [illegible] देखते रह गये और वह कुशलता पूर्वक अपने घर [illegible] और [illegible] ने मिल आनन्द के साथ घर रहने लगा एक

जय चन्द जैन प्रति

बोलो आचार्य पूज्य श्री रघुनाथ जी महाराजकी जय

श्री पद्म श्री हित जैन

भजन माला

लेखिका :—

आचार्य गुरुदेव १००८ पूज्य श्री रघुनाथ जी महाराज की आज्ञानुवर्तीनी गुरनी श्री पद्मश्री जी महाराज की सुशिष्या श्री हितश्री जी महाराज की शिष्या श्री फूलश्री जी महाराज छपरोली।

प्रकाशिका

श्राविका संघ छपरोली, कुरडी, नांगला (मेरठ)
जैन श्राविका संघ स्यामडी पो० सुहाना, (रोहतक)
लक्ष्मी देवी

आचार्य पूज्य श्री मंगलसैन जी महाराज [illegible] चौमासा सं० [illegible]
विक्रम सं० १९९९

वीर निर्वाण सं० २४६९
सन् १९४२ ई०

श्री पूज्य मंगल सेन गुरवे नमः

श्री पद्म श्री हित जैन भजन माला

लेखिका :-

तपो निधि श्री मज्जैनाचार्य १००८ पूज्य श्री मनोहरदास जी महाराज की सम्प्रदाय के प्रसिद्धाचार्य गुरुदेव १००८ पूज्य श्री रघुनाथ जी महाराज की आज्ञानुवर्तिनी जैनार्या परम विदुषी गुरनी जी श्री पद्म श्रीजी महाराज की सुशिष्या श्री हितश्री जी तच्छिष्यनी श्री फूलश्री ।

प्रकाशिका

जैन श्राविका संघ मु: पो० छपरोली जिला मेरठ यू० पी०

वैरागनबाई लक्ष्मी देवी जैन व श्राविका संघ कुरडी नांगल ।

वीर निर्वाण सं० २४७३
पूज्य श्री मंगल सेन जी
मा० स्वर्गवास सं० २७

विक्रम सम्वत् २००३ सन् १९४६
अक्तूबर

श्री पूज्य मंगलसेन गुरवे नमः

श्री प्रद्म श्रीहित जैन भजन माला

१ भजन—भगवान श्री महावीर जी का

सब मिलके आज जय कहो श्री महावीर प्रभु की।
मस्तक झुकाकर जय कहो श्री महावीर प्रभु की ॥टेक॥
विघ्नों का नाश होता है लेने से नामके।
माला सदा जपते रहो श्री महावीर प्रभु की ।स०१।
ज्ञानी बनो दानी बनो, बलवान भी बनो।
अकलंक सम बनकर, करो जय श्री वीरप्रभुकी ।स०२।
होकर स्वतंत्र धर्म की, रक्षा सदा करो।
निरभय बनो और जय कहो, श्री महावीर प्रभु की ।स०३।
तुझ को भी अगर मोक्ष की, इच्छा हुई ये दास।
उस वानी पर श्रद्धा करो, श्री महावीर प्रभु की ।स०४।
सब मिल के आज जय कहो महावीर प्रभु की । इति।

---

२ भजन-ईश्वर भक्ति में मन लगाना

(तर्ज तरकारी लेलो मालन तो आई विकानेर की।)

सुन मनवा मेरा, ध्यान लगाओ ऐसे ईश में ।टेक।
ज्यूं पनिहारी सर जल लावे, करे वात हुलसाई।
ताली [illegible]वे दोनों करसे ध्यान गगरिया माहिंरे ।सु०१।

छपरोली शहर में धर्म का उद्योत

इस वर्ष छपरोली में छपरोली श्री संघ अत्याग्रह से तपोनिधी आचार्य १००८ पूज्य श्री मनोहरदास जी महाराज की सम्प्रदायके वयोवृद्ध विशुद्ध संयमी वर्तमान आचार्य गुरुदेव १००८ पूज्य श्री रघुनाथ जी महाराज की आज्ञा से स्वर्गीया बाल ब्रह्मचारिणी महासती श्री गोराँ देवी जी महाराज की सुशिष्या वैराग्यवती त्यागमूर्ती गुरनीजी श्री पद्मश्री जी महाराज श्री हितश्री जी महाराज श्री फूलश्री जी हमाराज श्री आनन्दश्री जी महाराज ठाणे ४ का चौमासा हुआ गुरनी जी यहां पधारने से धर्म का खूब ही प्रचार हुआ। गुरनीजी के प्रभावशाली व्याख्यानों से जनता काफी लाभ उठा रही है।

गुरनीजी के चौमासे की यादगार में यह छोटी सी (श्री पद्मश्री हित जैन भजन माला) नामक पुस्तक छपरोली कुरड़ी नांगल की श्राविका संघ ने छपवाई है आशा है कि धर्म प्रेमी भाई बहनें इसको पढ़कर अवश्य धर्म लाभ उठायेंगे और लेखिका श्री हितश्री जी म० श्री फूलश्री जी के परिश्रम को सफल बनायेंगे।

विक्रम सं० २००३
कार्तिक शुक्ला ५
ज्ञान पंचमी

श्राविका संघ, छपरोली (मेरठ)
कुरड़ी नांगल,

पटिया पाडे वाल समारे, करे सैर हरियाली ।
एक दिन फोड़ी जायगी, मरघट वीच कपाली ।क्या४।
मंन भी काचा तन भी काचा, काचा घर दरवाजा ।
सौ वर्ष जीवन का भी, फिर अन्त खाक में वासा ।क्या५।
दस भी जीणा वीस भी जीणा, जीणा वर्ष पचासा ।
वर्ष पचासी होय जीवे, फिर मरण की आशा ।क्या६।
धन भी जायगा तनभी जायगा, जायगा मलमल खासा ।
लाख टके की सूरत जायगी, जंगल होयगा वासा ।क्या७।
दस भी जोड़ा वीस भी जोड़ा, जोड़ा लाख पचासा ।
अरव खरव वहुतेरा जोड़ा, संग चले नहीं मासा ।क्या८।
दमड़ी सेती महल वनाया, तू जाने घर मेरा ।
पकड़ काल झपटा देयगा, होयगा वन में डेरा ।क्या९।
कंठी डेरा मोती पहना, पहना रेशम चोली ।
कन्दोरा सोने का पहर्या, लेगा अन्त में खोली ।क्या१०।
चोसी पहरे फैंसी पहरे, जरी वादला खासा ।
सिर साफा चोसी का पहरे, अन्त खाक में वासा ।क्या११।
माटी माहीं जीव लुभाया, ज्यु दीवा में वाती ।
वसती नगरी छोड चलेगा, कोई न होगा साथी ।क्या१२।
एक मिलट का नहीं भरोसा, क्यों करता अभिमान ।
छिनमें हँसता छिनमें रोता छिनमें है श्मशान ।क्या१३।
अव भी समझ अरे तु चेतन, नहीं भरोसा तन का ।
वारवार सतगुरु समझावें मैल दूर कर मनका ।क्या१४।इति।।

जैसे गैया चरे विपिन में, सूरत बछरिया माहीं।
पतिव्रता का चित पति में, कभी बिसरती नाहींरे।सु०२।
ज्ञानो का चित रहे ज्ञान में, रोगी चित निरोग।
लोभी के मन धन धान्य ज्यूं, भोगी के मन भोगरे।सु०३।
कंपित कांच, बीच में देखो, सूरत नजर नहीं आवे।
ऐसे मन चंचल भोगों में प्रभु नजर नहीं आवेरे।सु०४।
पद्मासन कर हाथ मिला, नासाग्र दृष्टि लगावे।
होठ बन्द कर मन में बोले, निजानन्द मिल जावेरे।सु०५।
मारवाड़ में शहर सादड़ी, साल इकयासी आवे।
गुरु प्रसादे चौथमल कहे, ज्योति में ज्योति समावेरे।सु०६।इति।

---

३ भजन-शिक्षाप्रद

क्या तन माँजनारे, एक दिन मिट्टी में मिलजाना।टेक।
मिट्टी ओढन मिट्टी पहरन, मिट्टी का बिछोना।
मिट्टी का कलबूत बनाया, जामें भँवर लुभाना।क्या१।
चुनचुन लकड़ी महल बनाया, चेतन कहे घर मेरा।
ना घर मेरा ना घर तेरा, चिड़िया रैन बसेरा।क्या२।
अतर लगावे आभूषण पहिले, हुआ मगन बहुतेरा।
एक दिन ऐसा आयगा, होगा मरघट में डेरा।क्या३।

विद्या हीन भये नर नारी, बन गये सारे पापाचारी।
कौनकरे भाई रखवाली, खेत को चिड़िया चुग गई हो।पछ०३।
न्यामत दया धर्म नहीं जाने, बाप वचन बेटा नहीं माने।
ना कोई पंडित ना कोई स्याने, भाँग कूए में पड़गई हो।पछ०४।
॥पछवा फिर गई देख जगत में ॥इति॥

---

६ भजन-तर्ज-मेरे प्रभु मुक्ति में बुलाले मुझे

प्यारे प्रभु से ध्यान लगा तो सही,
इन पापों को दूर भगातो सही। टेक।
सो रहा किसनीन्द में जिसका न तुझ को ज्ञान है,
आया था यहां पर किसलिये क्या कर रहा नादान है।
ऐसी नीन्द को वेग उड़ातो सही।प्यारे०१।
चार दिन की चाँदनी, फिर अंधेरी आयगी।
साथ कुछ चलता नहीं, दौलत पड़ी रह जायगी।
ऐसी ममता को दूर हटातो सही।प्यारे० २।
मतलब के साथी हैं सभी, नहीं साथ तेरे जायेंगे।
जब मोत तेरी आयगी, जंगल में घर कर आयेंगे।
जिन धर्म से प्रेम बढा तो सही।प्यारे० ३।
फिकर को अब त्यागदे, दिल को लगाले ज्ञान में,
आनन्द चित हो जायगा, ऐसा मजा है ध्यान में।
शिव रमनी से नेह लगातो सही।प्यारे० ४।

४ भजन-धर्म की ठंडाई-सरदाई-भंग का

बूंटी जिन जी के नाम की, नर पीकर हो मस्ताना ।टेक।
शुभ करनी की कूंडी भालो, समता की सरदाई डालो।
भंग भ्रम की खुशकी टालो, आवेतार आराम की॥
हिमत्त का रगड़ा लाना ॥ न० १ ॥
दान शीलतप भावना भाश्रो, चारु विषयह मगज मिलाश्रो।
संग क्षमा की खसखस पावो, समकित गिरी बादाम की।
दर्शन का इलायचीदाना ॥ न०२ ॥
दया का दूध प्रेम का पानी, सत संगत की खांड रलानी।
समदृष्टि शाफा से छानी, वात्सल्य और ज्ञान की,
गुन अवगुन सकल पिछाना ॥ न०३ ॥
ऐसी बूंटी जो जन पीवे, जीवन मुक्त मस्त हो जीवे।
मोहनलाल अमीरस पीवे, राहबाई शिवधाम की।
यह है जिनजी का फरमाना ॥ न०४ ॥इति॥

---

५ भजन-कलियुग का

फिर गई फिर गई हो, पछवा फिर गई देख जगत में ।टेक।
द्वेष करें भाई से भाई, बात बात में करें लड़ाई।
झूठ कपट जाने चतुराई, फूट अटरिया चढगई हो ।पछ १।
कलयुग खोटा पहरा आया, क्रोधलोभ हृदय में छाया।
हिंसा कर्म सभी मन भाया, नाँव समंदिया पड़गई हो ।पछ२।

नरक निगोद तिर्यंच में, पावेगा संताप।
पकड कर जम कुंभी में गेरा। करे० ३।
अन्त जब चेतन तज जावे, पलक घर रहन नही पावे।
काढो काढो करते, देखत नूर तेनु डरते॥
जंगल बीच ले जायके, लगादे बदन के आग।
गुमटी महल हवेलियाँ, सब जावेगा त्याग।
अन्त मशाण में डेरा। करे० ४।
अजुं भी चेत चतुर प्राणी, चन्द दिन की है जिन्दगानी।
लेलो श्री जिन जी का शरणा, चाहो जो भवसागर तिरना॥
दोहा- सोहनलाल संसार में, धर्म चीज है सार।
धर्म जिनेश्वर देव का, भव दुःख भंजन हार।
मुख यह सत्यबचन तेरा करे नर क्यों मेरा मेरा (५।इति)

---

८ भजन—दया माता का उपदेशी

दया धर्म को पालो, जो होना भव से पार।टेक।
दया धर्म जगत में प्यारा, इस से होवे निस्तारा।
जिसने दिल अन्दर धारा, वह होगये भव से पारा।
आवे नहीं बीच संसार। दया० १।
हुए नेमनाथ महाराये, राजुल को परने आये।
पशुओं की करूणा लाये, जीवों के बन्ध छुडाये।
तजी है झट राजुल नार। दया० २।

हंस का कहना यही, नित्य पाप से डरते रहो।
फिरते रहो शुभ काम में, उपकार भी करते रहो।
ऐसी बातों को दिल में जमातो सही,
प्यारे प्रभु से ध्यान लगातो सही ।५।इति।

---

७ भजन–उपदेशी

करे नर क्यों मेरा मेरा जगत में कोई नहीं तेरा ।।टेक।।
मित्र हैं स्वार्थ के सारे, जिनको तू जाने प्यारे।
मात सुत बन्धु और भाई, प्रित जिन से तुमने लाई ।।
दोहा-झूठी ममता गृहस्थ की, कर मन सोच विचार।
अन्त समय तेरा कोई नहीं, यह नर आखिर कार।
काल जब आनके पावेगा घेरा । करे० १।
पुन्य से मनुष्य देहपाई, मास नो रहा गरभ माहीं।
निकस कर बाहिर जब आया, गृहस्थ का धन्धा गलपाया ।।
दोहा-जोबन पन बीच में, परनी सुन्दर नार।
लगा विषय विकार में, फैल गया परिवार,
मोह का छाया अन्धयार । करे० २।
कपट से माया उपजाई, पाप की गठड़ी सिरपर ठाई।
माल को सब मिल कर खावन, कामतेरे कोई नहीं आवन ।।
दोहा-सुख देखन परिवार को, दुख भोगेगा आप।

दान में अभय है मोटा, सुपात्र दान तो दीजे।
तुम करो जीव की रक्षा, प्रानी को क्यों सताते हो।गु० ४।
सुपात्र दान तो दीजे, बीच अमृत का बोनाजी।
लगे बम्बूल के काँटे, इन को क्यों न मिटाते हो।गु० ५।
शील है व्रतों में मोटा, पालकर कोई मोक्ष पद पाया।
तजो कुकर्म को प्यारे, ज्योति ज्योत समाते हो।गु० ६।
तपस्या करलो निरपक्ष, छोडो फल फूल का खाना।
अनन्त सुखों में विराजोगे, अमल में क्यों न लाते हो।गु० ७।
भावना भाके तिरया, ज्ञान केवल भरत पाया।
दिलो तन जान से ध्याओ, गरभ में फिर न आतेहो।गु० ८।
धर्म चारो तरह गाया, करो दिल से सभी प्यारे।
छोड मिथ्यात को जल्दी, भली समकित कोपाते हो।गु० ९।
शभा में नन्दराम गाया, सुना गुरुदेव के मुख से।
लियाकत मुझ में है नाहीं, भरोसा उन पै लाते हो।गु० १०।इति।

---

१० भजन—काल बली का

जोड़ जोड़ भर लिये खजाने, अब भी त्रिष्णा अडी रहे।
पड़े रहे सब रंगले बंगले, खाली बारादरी धरी रही।टेक।
ऐक पंडित की सुनो कहानी, पूजा करने आया था।
नहाय धोय गंगा किनारे, आसन खूब जमाया था।
आगया जम का परवाना, हाथ में माला पड़ी रही।जो० १।

हुए गज सुखमाल मुरारी, लगी दिल को दया जो प्यारी।
सिर ऊपर अंगिठी धारी, मन में यों करत विचारी।
लिया है तन मन को मार। दया० ३।
हुए हैं खंधक मुनीश्वर भारी, जिन देह की खाल उतारी।
पर जीवों के उपकारी, दिल बीच दया विचारी।
लिया जिन कारज सार। दया० ४।
हुए मेघ कुंवार भूपाली, दया एक सुसे की पाली।
राजा की ऋद्धि संभाली, गये दया विना सब खाली।
हुए आई मेघ कुँवार। दया० ५।
ये अरजी दास गुजारी, तुम सुनयों सब नर नारी।
कर्मों की गति है न्यारी, नही टरे किसी से टारी।
दाय का करो परचार ॥दया० ६॥ इति ॥

---

९ भजन—दान शील तप भावना का

गुरु निग्रन्थ की वानी, हिया में क्यों न लाते हो।
पड़े कुमती की संगत में, जन्म योंही गमाते हो।टेक।
हुए अज्ञान में अन्धे, देखलो ज्ञान का दर्पन।
पड़ेगा जो तुम्हें मालूम, निकट रखते क्यों डरते हो।गु० १।
मिला मुश्किल से ये नर भव, रखो उमेद तिरने की।
न खोना व्यर्थ ये खाली, वक्त योंही गमाते हो।गु० २।
धर्म का भेद है चारों, कहा जिनराज ने ऐसे।
दान शील तप [illegible] कर, भावना क्यों नहीं भाते हो।गु० ३।

मात पिता का कहा न माने, गुरु के नहीं वचन में ।
पर त्रिया से नेह लगावे, राजी नहीं भजन में । उ० ३ ।
मन मैला तन उज्वल कहिये, बुगले कैसा भेष ।
उस से तो कागा भलाजी, बाहिर भीतर एक । उ० ४ ।
मुख के मीठे जबान के सिरी, ये कलयुग के यारा ।
मुख पर बातां करें मिठियां, पीछे करें बिचारा । उ० ५ ।
पर त्रिया तुम ऐसी जानो, जैसी अपनी बहन ।
तिसपर खोटी नज़र लखावे, फूटे उनके नैन । उ० ६ ।
कच्ची कलिया कूंपल तोडे, बाले मृषा बाद ।
साधु सन्त की निन्द्रा करी ने, गया जमारा बाद । उ० ७ ।
गंगा नहावे जमना नहावे, नहावे पुष्कर काँशी ।
शुभ कर्म का बीज न बोया, पड़ी जमां की फाँसी । उ० ८ ।
बुगला तो मच्छी ने ताके, एक चरन और ध्यान ।
मैं जाना कोई सन्त पियारा, निपट कपट की खान । उ० ९ ।
हांजी हांजी मुख से कहते, अन्दर राखे खोट ।
उस नर के संग न चालिये, निरी पाप की पोट । उ० १० ।
परमार्थ की बात न जाने, अपनी स्वार्थ आड़े ।
चढ़ी जो फोड़े और की जी, अपनी चढावन दौड़े । उ० ११ ।
सत गुरु को मैं शीश नमाऊं, उन का हूँ मैं नोकर ।
और किसी की सीख न मानूँ, खाऊं गुरों की ठोकर । उ० १२ ।
कपटी लपटी धूरत माणस, इन से कैसी मितराई ।
सतगुरु कहें सुनो नर नारी, भगवन्तो फरमाई । उ० १३ ।

ऊंचे मकान में एक स्त्री, लगी शिंगार बनाने को।
धरी शलाई सुरमा दानी, आँखे अंजन पाने को।
काल गुलेल छुटी पीछे से, सुरमादानी धरी रही।जो० २।
पहन पोशाक बाँध के चीरा, दुकान के ऊपर सेठ गया।
जाते ही एक चक्कर आया, पैर फैला कर लेट गया।
कूँच करगया लिखने वाला, कलम कान में अड़ी रही।जो० ३।
सैर करने को एक बाबूजी, गाड़ी पर सवार हुए।
गाडी अभी चलने न पाई, बाबूजी ठंडे ठार हुए।
लगा तमाचा एक अजल का, सड़क पर टमटम खडीरही।जो० ४।
गोरी शंकर चेतो प्रानी, झगड़े और फिसाद तजो।
क्या लेना इन रगड़े झगड़ों से, मस्त रहो भगवान भजो।
खिल खिल मिल गये फूल धूल में सदा नहीं फूल झडी रही।
जोड़ जोड़ भर लिये० ।।५।।इति।।

---

११ भजन—उपदेशी

उन घर कदे ना जाइयोजी, जिन के पेटे पाप।।टेक।।
मिलना सेती मिलता रहिये, जो कोई होवे नेमी।
कूड़ कपट के संग न जाइये, दगाबाज और भैमी।उ० १।
मित्र पासे मित्र आवे, करके नजर भलेरी।
ऊपर बातां करें मिठियां, अन्दर कात्ती फेरी।उ० २।

ज्युं कपड़े नु रंग मजिठी, चढ जाय रंग करारा ॥मे० २॥
दर्शन रंग ज्ञान दा पानी, ला मावा ॐकारा ॥मे० ३॥
लाखों सेवक पार उतारे, मैं फंसा मझधारा ॥मे० ४॥
जान फँसी विच गोरख धन्धे, हो कैसे छुटकारा ॥मे० ५॥
ऐसा उत्तम ज्ञान सुनादे, मिल जावे मुक्ति दिदार ॥मे० ६॥
तुम बिन नाथ शाद जीवों को, देवे कौन सहारा ॥मे० ७॥

---

१४ भजन-पंजाबी

जय बोलो जय बोलो, मेरे भाइयो जैन की जय बोलो। टेक।
जैन धर्म विच हुए तीर्थंकर, पा गये मुक्ति करनी कर कर।
आठों जी आठों कर्म खपाई, जैनकी जय बोलो ॥ज० १॥
गोतम गणधर कर्म खपाये, वीर प्रभु चरण चित लाये।
मुक्तिजी मुक्ति पाई, जैन की जय बोलो ॥ ज० २ ॥
गजसुखमाल ने ध्यन लगाया, विच जंगलादे मनको टिकया।
सिर पर जी सिर पर अगन धराई, जैन की जय बोलो ॥३॥
नेमनाथ जी ब्याहन आये, पशु पुकार सुनी घबराये।
ऐसीजी ऐसी दया मन आई, जैन की जय बोलो ॥ज०४॥
वीर प्रभु शाशन पति राया, दुखी भारत का कष्ट मिटाया।
दीनाजी दीना पार लंघाई, जैन की जय बोलो ॥ज० ५॥
मेघकँवार एक हुआ नगीना; युवा अवस्था जिन संजमलीना।
सम्पत जी सम्पत सभी लुटाई, जैन कीजय बोलो ॥ज०६॥

मोज मुनि सतगुरु कहिये, भव सागर से तिरया ।
मोती तो सदा उजला, ध्यान धनी का धरिया ।उ० १४। इति।

---

१२ भजन

मुशाफिर क्यों पड़ा सोता, भरोसा है नहीं पलका ।
दमा दम बज रहा डंका, तमाशा है चला चलका ।टेक।
सुवह जो तख्त शाही पर, बड़े सज धज से बैठे थे ।
दुपहरे वख्त में उन का, हुआ है वास जंगल का ।मु० १।
कहां है राम और लछमन, कहां रावण से वल धारी ।
कहाँ हनुमान से जोधा, पता जिनके न था वल का ।मु० २।
उन्हों को काल ने खाया, तुझे भी काल खायेगा,
सफ़र सामान उठ कर तू, बनाले बोझ को हलका ।मु० ३।
जरासी जिन्दगानी पर, न इतना मान कर मूर्ख ।
बीतेगी यह जिन्दगी पल में, कि जैसे बुलबुला जलका ।मु० ४।
नशिहत मानले ज्योति, उमर पल पल में कम होती ।
जपन कर आज जिनवर का, भोरसा कुछ न कर कलका ।मु० ५।

---

१३ भजन पंजाबी

रंगदे ज्ञान बिच सारा, मेनु रंग दे बिच सारा ।।टेक।।
ऐसा रंग रंगदे मेनु, हो जावे निस्तारा ।। मे० १ ।।

एक तई ओढी दो तई ओढी, ओढा मलमल खासा।
शाल दुशाले निश दिन ओढ़े, अन्त खाक में वासा।तु० ३।
कोडी कोडी माया जोड़ी, जोड़ा लाख पचासा।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, संग चले नहीं मासा।तु० ४।इति।

---

१८ भजन—उपदेशी

धर्म विना बावरे, तैंने हीरा सा जन्म गमाया॥ टेक॥
कभी न जिनवर भजा, कभी न गुरू पद ध्याया।
फंसा रहा तू मोह जाल में, नाना कष्ट उठाया।ध० १।
कभी न आतम चरचा कीनी, धर्म कथन न सुनाया।
पर निन्दा बकवाद वृथा में, सारा दिवस विताया।ध० २।
पाँचों इन्द्रि के बस होकर, मन विषयन में धाया।
षट काया की नहीं रक्षा कीनी, संजम चित नहीं लाया।ध० ३।
शक्ति समाना नहीं तप कीना, योंही तोन्द बढाया।
चहुं बिध दान दिया नहीं कबहूँ धन को व्यर्थ लुटाया।ध० ४।
पुन्य किया नहीं किंचित तूने, मोटा पाप कमाया।
भज शिवराम जिनेश्वर अजहूँ,
काल तो सिर पर आया।ध० ५। इति।

---

१९ भजन—श्री महावीर देव का

बोलो, श्री वीर प्रभु की जय बोलो।टेक।

शालभद्र धन्ना ब्रह्मचारी, शाद छोड़ी सम्पदा सारी।
पहुंचेजी पहूँचे शिवपुर जाय, जैन की जय बोलो ॥ज० ७॥
मेरे भाईयो जैन की जय बोलो ॥इति॥

---

१५ भजन—जीव रूपी तोते का

करले जतन हजार, तोता उडजाना, करले जतन हजार ॥टेक॥
यह तोता बड़ा अनोखा, एक दिन देगा जरूरी धोखा।
इस का नहीं इतबार ॥ तो० १ ॥
इस तोते का नहीं ठिकाना, इसने निकल जरूरी जाना।
चाहे लाख ताकियाँ मार ॥ तो० २॥
सेवा इसकी करियो पूरी, कुट कुट रोज खिलाइयों चूरी।
फिरना बनता यार ॥ तो० ३ ॥
जब पिंजरे से बाहिर जावे, फडियाँ फेर कदे ना आवे।
लम्बी लेवे उडार ॥ तो० ४ ॥
चाहे कितने ही यहाँ साल बितावे, फिर जब यह उडने पर आवे।
मिलटन लगान्दा बार ॥तो० ५॥
जबसी तोता तबसी लाख, नहीं पिंजरे का मोल रहा अब खाक।
काढो इसे बहार ॥ तो० ६ ॥
मृत्यु बनकर आगई बिल्ली, पिंजरे की कलकस कर गई ढिली।
मच गया हा हा कार ॥तो० ७॥
जोगी जनों ने भी बहु जोर लगाया,
जब इनके भी काबु नहीं आया।

(जालिम) तुझे मारकर रौनक होवे,

मेरी इस दुकान पर। जा० २।

(गौ) मैं देख छुरी घबराई, (जालिम) बकवास न कर।

(गौ) आज रो रो देऊं दुहाई, (जालिम) कुछ आस न कर।

(गौ) गला फाड़ चिल्लावां,

तेरे जूंन रेंगे कान पर। जा० ३।

(जालिम) तुझे आजही कतल करुंगा (गौ) क्या इस से बने।

(जालिम) बच्चों का पेट भरुंगा, (गौ) नहीं धर्म रहे।

(जालिम) धर्म कर्म से मैं क्या लेना,

निगाह फ़क़त गुजरान पर। जा० ४।

(गौ) अब आ तू कृष्ण मुरारी [जालिम] फरियाद न कर।

[गौ] जालिम की फूँक कटारी [जालिम] बरबाद न कर।

[गौ] भूला हुआ है खुदी में ऐसा,

लानत हिन्दुस्तान पर। ज०-५।

[जालिम] मैं चरण पडूं माँ तेरे, [गौ] आबाद रहो।

[जालिम] अब दोष नहीं चित्त मेरे, [गौ] तब शाद रहो।

[जालिम] अइन्दा करे काम जो ऐसा,

लानत उस शैतान पर। ज० ६।

भजन—द्रोपती का ड्रामा

द्रोपती] गिरधारी शंकट हरी शुद्ध लीजिये लीजिये।

जब दुनियाँ में जुल्म बढाया, हिंसा का यहाँ जोर चढ़ा था।
आप लिया अवतार। ज० १।
पुन्य उदय भारत का आया, कुन्दनपुर में आनन्द आया।
हो रहा जय जय कार। ज० २।
राजा सिद्धार्थ के राज दुलारे, त्रिशला की आँखों के तारे।
तीन लोक मनुहार। ज० ३।
भर यौवन में दीक्षा धारी, राज पाट के ठोकर मारी।
करी तपस्या सार। ज० ४।
तप कर केवल ज्ञान उपाया, जग का सब अंधेर मिटाया।
कीना धर्म प्रचार। ज० ५।
पशु हिंसा को दूर हटाया, सबको शिवमार्ग दरशाया।
किया जगत उद्धार, प्रभु की जय बोलो।६।इति।

---

२० भजन-गौ माता का शिक्षा प्रद ड्रामा

(गौ) जालिम गौ घाती, लानत तेरे ईमान पर।
अभिमान पर, इस शान पर, जालिम गौ घाती।टेक।
(गौ) मैं दूध दही हूँ देती, (जालिम) चल आगे चल।
(गौ) मेरे बैल कमावें खेती, (जालिम) हाँ हाँ बिलकुल।
(गौ) छुरा चला क्या बनेगा सितम,
इस नन्हीसी जान पर। जा०।१।
(जालिम) जर देके तुझे मैं लाया, (गौ) बे शरम न बन।
(जालिम) इक पल में मार मुकावां, (गौ) बे रहम न बन।

(द्रोपती)मेरी आह शोला भड़कायगी,

कुल कौरो भस्म हो जायगी।

(दुर्योधन)इसमें भला क्या? तुजत करती हूँ तेरे, हूँ तेरी।

गौ सिंह ने घेरी गिरधारी शंकट हारी,

शुद्ध लीजिये लीजिये गौ सिंह० ३ ॥ इति ॥

---

२२ भजन पंजाबी

हुण शरण लई प्रभु तेरी, हुण शरण लई प्रभु तेरी ॥टेक॥
नाव पड़ी जल डूंगे दे विच, वसदी घुम्मन घेरी ॥ हु० १ ॥
तुम बिन नाथ दयालु भगवन्, कौन सुनेगा मेरी ॥हु० २॥
भव सागर से पार लंघादो, करो नाथ ना देरी ॥ हु० ३ ॥
गई जवानी आया बुढापा, कदे ना माला फेरी ॥ हु० ४ ॥
आवागमन मिटादो मेरी, जिन्द जमानें घेरी ॥ हु० ५ ॥
शाद भरोसे सिर्फ आपके, 'अर्ज सुनो प्रभु मेरी ॥ हु० ६ ॥
हुण शरण लई प्रभु तेरी, हुण शरण लई प्रभु तेरी ॥इति॥

---

२३ भजन—स्त्री शिक्षा

इस मिट्टी की दीवार को, तुम माता बतलाती हो ॥टेक॥
आप घड़ी और आप बनाई, चूना मिट्टी आप लगाई।
कहाँ से इस में माता आई, लेकर कुल परिवार को,
जिसको पूजन जाती हो ॥इ० १॥

गौ सिंहने घेरी ।

(दुर्योधन) जल अग्नि पवन सुर नर की, क्या मजाल है ।

मजाल है, करे सहायता तेरी ।। गिरधारी श० १ ।।

(द्रोपती) कृष्ण मेरे स्वामी हैं, अन्तर यामी हैं।

स्वामी हैं सब के सदा ।

(दुर्योधन) नन्द का लाला, गौवन वाला।

गौकुल वाला, करेगा क्या?

(द्रोपती) कंस को जिसने केस से पकड़ा था, रन पटका दिया,

वो कृष्ण जिसने जरासिन्धु को था रन में नीचा दिखा दिया।

(दुर्योधन) वो कहाँ का चक्रधारी है,

निर्बल वो कृष्ण भिख्यारी है।

(द्रोपती) राधे कृष्ण महाराज? चरण की हूँ चेरी

।। गौ सिंहने घेरी० २ ।।

चलत (दुर्योधन) जल्द बुलाओ, न देर लगाओ,

ये जोबन दिखावे, शभा में खड़ी।

(द्रोपती) अभी आजायेंगे, चीर बढायेंगे,

लाज रखायेंगे, कृष्ण मेरी ।

(दुर्योधन) शेर-अय दुशाशन जल्द करदे, इस का तू नंगा बदन।

(द्रोपती) मैं जल उठूंगी उस वक्त, छुए कोई मेरा बदन।

(दुर्योधन) तू कबतक शोर मचायगी,

तेरी एक सुनी नहीं जायगी।

तुझ सरीखा देव न दूजा, त्रिभुवन में उपराम ॥ ज० ३ ॥
गुरु निग्रन्थों ने समझाया, सच्चे प्रभु का पथ दर्शाया।
अब तुझ में ही मिल जाऊं मैं, ऐसा दो वरदान ॥ ज० ४॥
सूर्य्य भानु है शरण तिहारी, प्रभु करना मोरी रखवारी।
तुझ में मुझ में भेद ना पाऊँ, जय जय कृपा निधान ।ज० ५।इति।

---

२५ भजन—पवित्र भावना

भावना दिन रात मेरी, सब सुखी संसार हो।
सत्य संयम शील का, व्यवहार हर घर द्वार हो।
धर्म का प्रचार हो, अरू देश का उद्धार हो।
फिर से यह उजड़ा हुआ, भारत चमन गुलजार हो।
रोशनी से ज्ञान की, संसार में प्रकाश हो।
धर्म की तलवार से, हिंसा का सत्यानाश हो।
शान्ति अरू आनन्द का, हर एक घर में वास हो।
जैन बानी पर सभी, संसार का विश्वास हो।
रोग भय और शोक हों; सब दूर अये परमात्मा।
कर सके कल्याण ज्योति, सब जगत की आत्मा ॥

---

२६ भजन—गुरनी श्री गोरांजी म० का

गुरनी गोरांजी महाराज, तुम को लाखों प्रणाम,
दयालु गुरनी तुमको लाखों प्रणाम ॥ टेक ॥

जिस माता ने जन्म दिया है, कष्ट सहे सुख तुम्हें दिया है।
उसका कभी न नाम लिया है, भूल के उस उपकार को।
मूर्खी क्यों कह लाती हो ॥इ०२॥

पति पड़ा बिन पानी तरसे, तुम जाती हो निकल घर से।
ईंटे नहलाती हो आदर से, पूजो चूहड़े चमार को।
बेटे उन से चाहती हो ॥इ०३॥

कहीं पूजो साधु मुशटंडे, कहीं कन्याओं पीर के गंडे।
देख के तुम उन के हथ कंडे, लुटा दिया घर बार को।
फिर पीछे से पछताती हो ॥इ०४॥

पति की टहल करो चित लाई, दोनों लोक में है सुख दाई।
शिक्षा यही जसवन्त ने गाई, तज अपने सिंगार को।
तुम क्यों धक्के खाती हो ॥इ०५॥इति॥

---

२४ भजन—सिद्ध (ईश्वर) प्रार्थना

जय जय जय भगवान, अजर अमर अखिलेश निरंजन,
जयति सिद्ध भगवान ॥टेक॥

अगम अगोचर तू अविनाशी, निराकार निरभय सुख राशि।
निकल निर्लेप निरामय, निष्कलंक निष्काम ॥ ज० १ ॥
कर्म न काया, मोह न माया। भूख न तृपा, रंक न राया।
एक स्वरूप, अनूप अगरु। लघु निर्मल, ज्योति महान ।ज०२।
हे अनन्त, हे अन्तर्यामी। अष्ट गुणों के धारक स्वामी।

पिता वलदेव दीपते भारी, माता केसरा है तुम्हारी।
जिन की कूख विराजी आन। तु० १।
सम्वत् उन्नीसो छवीस आया, भादो मास में जन्म जो पाया।
घर घर हर्ष हुआ महान। तु० २।
शुभ घड़ी में जन्म जो लीना, मात हृदय तोषित कर दीना।
पालन किया मन चित आन। तु० ३।
वर्ष सात में जब तुम आई, संजम लेवा मन हुलसाई।
श्री सोनाजी गुरनी पाई, ताकी भई शिष्यनी आन। तु० ४।
सम्वत् उन्नीसो चालीस आया, पोष वदि तीज शनि सुखदाया।
हो रहा जय जय कार। तु० ५।
शहर खेतड़ी है भारी, दीक्षा की जहाँ हुई तय्यारी।
संजम लीना मन हित आन। तु० ६।
तुमने पंच महाव्रत धारे, क्रोध मान माया को टारे।
मानव जन अनेक ही तारे दिया उपदेश मन हित आन। तु० ७।
सम्वत् दो हजार तीन के माहीं, किया चौमास छपरोली आई।
फूलश्री ने जोड़ वनाई, मेरा करो कल्यान। तु० ८।

---

२७ भजन–गुरनीजी श्री गोरांजी म० का तर्ज लावनी

है गुन अपार संसार समुद्र तरनी,
श्रीगोरांजी महाराज, सती अघ हरनी। टेक।

"रतन" बेकसों का बनूं मैं सहारा,

और इनके लिये लाख मुश्किल सहूं मैं ।।७।।इति।।

३२ भजन—आत्मा को शुद्ध करना

विवेकी आत्मारे, तू अबतो निर्मल होजा ।। टेक ।।

गुरु सेवा की गंगा इन में, पाप मैल को धोजा ।

भारी हो रहा बहुत दिनो से, हलका करले बोजा ।वि० १।

ज्ञान रूप दर्पन के अन्दर, निज आत्म को जोजा ।

बार बार सत गुरु समझायें, ऐब दोष सब धोजा ।वि० २।

मुक्ति का मेवा चखेतो, ममता मही बिलोजा ।

खुले नरक में रोजा । वि ३० ।

अमृत फल की इच्छा होयतो, बीज धर्म का बोजा ।

कर नेकी का काम, बदी से अब तो दूर होजा ।वि० ४।

सत्य धर्म की सेज बिछी है, सोना है तो सोजा ।

कहे मुनि नन्दलाल तना शिष्य, मिले मोक्ष मोजा ।वि० ५।इति।

३३ भजन—सतगुरु का

हमतो उन गुरु के हैं दास जिन्हों ने मन मार लिया ।।टेक।।

तज आडम्बर भये श्वेताम्बर, जिते विषय कषाय ।

[illegible] ।वि० १।

आपहो शशी भानज्यूं दल में,
सोभित हो रही हो तुम सती मंडल में।
हित आनंद फूल की सिरताज,
गुरनी श्री पद्मश्री जी महाराज ॥५॥इति॥

३१ भजन–आत्म भावना

धर्म पै न्योछावर यह तन मन करूं मैं,
सदा शीश चरनों में गुरु के धरूं मैं।
सफल अपना जीवन बनाने के कारन,
यही आरज़ू है धर्म पै मरूं मैं ॥ १ ॥
बदों की न सोहबत मुझे भूल कर हो,
सदा काम नेकी के जग में करूं मैं ॥२॥
न हों मुझ में अभिमान गुस्सा व लालच,
तजूं मोह संसार सागर तरूं मैं ॥ ३ ॥
मैं सब प्राणियों पै दया भाव रखूं,
नहीं प्राण हरगिज़ किसी के हरु मैं ॥४॥
न हो खौफ मुझको कभी शत्रुओं का,
डरु भी तो बदकारियों से डरूं मैं ॥ ५ ॥
प्रभु के ही सुमरन का हो ध्यान मन में,
सदा सेवा भक्ति का ही दम भरूं मैं ॥६॥

विज्ञान स्त्री करना, साथ अकल के।

सतगुरु की सल्लाह, लेलेनी चाहिये साथ अकल के।

कहता हूँ तुझे, मत खता कहीं खाजाना।इ० ३।

सुरता धोबन, है तेरी बड़ी सयानी।

मत बिगाड़े इस से करना, तू सैलानी।

यह ख्याल हमारा है, कैसा हक्कानी।

समझेगा कोई, चतुर बुधवन्त ज्ञानी।

जरा सोच समझके; चलो कहे भगवाना।इ० ४।इति।

३५ भजन—संसार समुद्र से तिरने का

चलो जिसने पार लंघना, धर्म की नाव त्यारी हैं।

चौरासी लाख जोनी में, बड़ी मुद्दत गुजारी है।टेक।

अनादि काल से ये जीव, फँसा दुनिया के फन्दे में।

न छुटा मोह कर्म इसका, भरी तन में खुवारी है।च० १।

करे बद फैल जो जग में, वह कैसे पार पायेंगे।

गति उनकी बुरी होगी, पड़ेगी मार भारी है।च० २।

मात सुत भ्रात और बन्धु, नहीं साथी कोई तेरा।

माने स्त्री जो मेरी, वह भी स्वार्थ की चेरी हैं।च० ३।

जो करता है सो भरता है, जो किसी को मारे मरता है।

यही कानून दुनियां में, जो देखो दिल में बिचारी है।च० ४।

तजो मन जीव की हिंसा, जो होना पार दुनियाँ से।

तभी तुम छूट कर जाई, दास अरजी गुजारी है।च० ५।इति।

कंचन काँच बराबर जिन के, वैरी मीत समान।
सुख दुःख जीवन मरन एक सम, माने महल मशान।जि० ३।
तप की तोप ज्ञान का गोला, लेय क्षमा तलवार।
मोह महा रिपु मार पछाड़ा, आत्म बल को सम्हार।जि० ४।
उन्हीं जैसी चर्या जिसदिन हो जावे शिवराम।
ता दिन की मैं बलीहारी जाऊं, भेटुं गुरु गुण धाम।जि० ५।

३४ भजन-दिल धोबी का

बोजी दिल धोबी, जरा इधर को आना।
इस तन चोले को, धोकर साफ बनाना।।टेक।।
समता की साबुन लगा मेरे दिल जानी।
ले सुधता की सज्जी, हिकमत से हक्कानी।
बुद्धि की देग, समदद की मिट्टी ज्ञानी।
सतसंग का घाट, सन्तोष का लेकर पानी।
मल मल के मैल निकाले, अगर है दाना।इस० १।
जब शील शिल्यापर, धर धर के फटकारे।
संजम की मोगरी तान तान के मारे।
कर भजन की छुँछुँ, हरदम मेरे प्यारे।
इस परकार से, अन्तस का मैल निकारे।
ममता का धब्बा, होगा तुझे हटाना।इ० २।
दे क्षमा के छींटे, कलफ दया के बल के।
कर्मों की कूँदी, करना सोच सम्भल के।

३७ भजन—मुसाफ़िर का

मुसाफ़िर सोच के चलना, तेना दुश्मन जमाना है ।। टेक ।।
कहाँ से आये निरमोही, कहो किस देश जाना है ।
कहो क्या नाम है अपना, किया कहाँ पै ठिकाना है ।मु० १।
ठगों की वसती में तेरा, कभी लुट जावे खजाना है ।
करेगा फरियाद तू किससे, वतन तो बिगान है ।मु० २।
न संग में लाये लस्कर, न कोई तहशील थाना है ।
दफन जिन्दे को कर देंगे, हुआ किस पर दिवाना है ।मु० ३।
ओ तुझ को कह चुके हैं, हाँ में तुझे आगे को जाना है ।
करेगा सोई तू सिख, तेरे जो मन को पाना है। मु० ४।इति

३८ भजन-हुक्के का

अग्नि होम की एवज में, हुक्के को मिलगई सरदारी ।
गड़ गड़ गुड़ गुड़ शब्द निकालें, भारत वासी नर नारी ।टेक
सोवत हुक्का जागत हुक्का, हुक्का खाने नहाने में ।
किसानोंही के तो साथ में रहता, हुक्का चिलम पखाने में ।
महमानों की करना खातिर, कामिल जिगर जिलाने में ।
हुक्के से नहीं बड़ी बड़ाई, ताजा माल खिलाने में ।
साधु सन्त सबै पीते, सन्यासी और ब्रह्मचारी ।।ग० १।।

३६ भजन

क्या बन रहा छैला बंका, सिर पै बजे काल का डंका ।टेक।
हो गये रावन से राई, जाके बल की थाह न पाई ।
जग में फिरेथी दुहाई, जा दिन अति गरभाया,
उठ काल ने धर खाया । जादह कहूँ क्या कहानी,
जाके मंदोदर सी रानी । भई पल में बिगानी,
और सोरन की गढ लंका ॥ सि० १ ॥
ऐसी लगी ही ना देरी, जल की भई कइयों की ढेरी ।
एक दिन डस जा तोकु काल, पडा रहे धन माल ।
जागा तजकर नाजो नारी, रोती रहे जामन हारी ।
भाई बन्धु रिस्तेदार, जरा लावेंगे ना वार ।
देवेंगे नगर से निकाल, कोई ना हो मीत इस अंग का ।सि० २।
जाना होगा जमके द्वारे, उत्तर क्या देगा लजमारे ।
प्रभु को हृदय से बिसार, पाप किये हैं अपार ।
जम के दूत छुटेंगे खूनी, सारी निकलेगी अफला तूनी ।
वहां नहीं बरतेगा कोई रुख, तेरा कर के काला मुख ।
देने लगे जब दुःख, सुख भूले सेज पिलंग का ।सि० ३।
जोतू चाहे निरभय रहना, सत्यकी माला कर में गहना ।
प्रभु को हरदम मुख से भज, मान मगरूरी तज ।
बासा वैकुंठो में पावे, आवागमन मिटजावे ।
कटे चोरासी के फन्द, कहे सिभु मति मन्द ।
प्रसन आया होतो छन्द, कोई और कहुं इस ढंग का ।सि० ४।इति।

जो घर मिलें चीकने टीकड़, उस घर अलख जगाँवदे।
फिर चक्सें पूत उधारे ॥ मा० ३ ॥
कोई रागी बन रागजो गावे, मंडली कर के भजन सुनावे।
नाचकूद कर लोग रिझावें, फिरें दुनियां को भरमाँवदे।
कोई पकड़ फिरें इकतारे ॥ मा० ४ ॥
पंडित हो कर डोले घर घर, श्री भागवत सिरपर धरकर।
दीन वचन नित्य मुख से कहकर, शंकरदास कथ गांवदे।
निर्लोभी रहवें न्यारे ॥ मा० ५ ॥ इति ॥

४० भजन—धर्म रक्षा का

जो मनुष्य धर्म को मारदे, वह खुद ही मर जाता है ॥टेक॥
धर्म की रक्षा करे जो भाई, धर्म भी उस का होवे सहाई।
पाप नास में देवे छुडाई, सारे दुःख निवार दे।
मुक्ति को पहुँचाता है ॥ वह खु० १ ॥

भारत वासी गुण के रासी, हुक्के को समझें राजा।
अधना आला इसको पीते, रंडी भडुवे व्यभचारी ।।गु० २।।
भाई भाई की पत्तल पर, खाने को नहीं खाते हैं।
होठ थूक जिस को लगता, उस को हाथ चलाते हैं।
कितनों का खाँसी से बलगम, हुक्के में रुक जाता है।
भले बुरों का चूसके उगलन, बिरादरी में आता है।
पंचायत में हुक्के से है इज्जतदारी ।। गु ६ ।।
एक और दूसरा फैसन देखो, जंटिल मैन कहाते हैं।
कोई कैंची कोई पेडरु, कोई लालटेन मंगाते हैं।
दबा के मुह में लगा के माचीस, धुवाँ धार फलाते हैं।
कितनेक तो पी लीद गधों की, दिल में खुश हो जाते हैं।
रामचन्द्र भारत आरत में, रक्षा कीजो असुरारी ।ग० ४।इति।

३९ भजन—माया ने मोहलिये सारे

माया ने मोहलिये सारे, जितने गुणवन्त जहान में ।।टेक।।
बिन पैसे हाकिम करडाई, देवे गालियाँ धूम मचाई।
जब उसने दिया नजर दिखाई, तब उसको पास बठाँवदे।
मुख बोलें प्यारे प्यारे ।। मा० १ ।।
भारी वैद्य गरब था करता, दिया रुपया आगे चलता।
जाके हाथ नबज पर धरता, जब मल मूत्र दिखांवदे।
थूक जीवन वैद्य तिहारे ।। मा० २ ।।
मूंड मूंडाकर हो गये पक्कर, तकते फिरें चटोडे लक्कड़।

४२ भजन-भक्त की प्रार्थना

मोरे मन मन्दिर में, आन बसो भगवान ॥टेक ॥
घंटे और घडियाल नहीं हैं, सामगरी का थाल नहीं है।
लेकिन एक प्रेम का दीपक, जलता है भगवान ॥मो० १॥
क्रोध नहीं है क्लेश नहीं है, बुगले का सा भेष नहीं है।
छोटीसी एक प्रेम कुटी है, प्रेम का है यह स्थान ॥मो०२॥
टूटा फूटा मन्दिर मेरा, पड़ा हुआ है घोर अंधेरा।
तुम आओ तो है उजियारा, तुमबिन है सुनशान ।मो०३।इति।

४३ भजन

प्राणी वीर नाम नित्य बोल ॥ टेक ॥
दो दिन की तेरी जिन्दगानी, क्यों करता मूरख मन मानी।
क्या गुण है जिस में तेरा, ज्ञान तुला पर तोल ॥प्रा० १॥
धन दौलत और माल खजाना, पड़ा यहीं सारा रह जाना।
झूठे झगड़े में क्यों खोवे, मानव जन्म अनमोल ॥प्रा०२॥
मात पिता सुत भ्राता नारी, स्वार्थ के सारे संसारी।
[illegible]

बन जाती है खाक अज्ञानी, चाहे कोई लाख हजार दे।
जीता ही मर जाता है ॥व० ४॥
जो जो रक्षा धर्म की करता, उनका समझो कुछ नहीं मरता।
जिन को याद जमाना करता, धर्म के जान निशार थे।
अब तक नाम चला जाता है ।व० ५।
महावीर से पर उपकारी, जिन धर्म धजा हाथ में धारी।
जिस का जस गावे दुनियां सारी, बदले पर उपकार के।
जसवंत भी जस गाता है । व० ६ ।इति।

४१ भजन—आत्म पुजारी का

पुजारी? हृदय के पट खोल ॥ टेक ॥
कोई गावे कोई रोवे, उन से तू मत बोल ॥ पु० १ ॥
तू न किसी का कोई न तेरा, नाहक करता मेरा तेरा।
तुझे पड़ी है क्या दुनिया की, मत अमृत में विष घोल ।पु० २।
तेरी सूरत सुन्दर प्यारी, उसकी विमल छटा है न्यारी।
इधर उधर मत फिरे भटकता, व्यर्थ बजावत ढोल ।पु० ३।
तेरे घट में है परमात्म, बना मूढ़ मत भूले आत्म।
तेरे घट में छिपा हुआ है, तेरा रतन अमोल। पु० ४।
ज्ञान दीप से तिमिर भगादे, आत्म शक्ति पुनः सरसादे।
भक्ति तुला से मन के मन से, मन के मन को तोल ।पु० ५।
यह दुनियाँ है एक तमासा, इस की क्या करता है आशा।
अगर चाहता है सुख भगतो, अपनी गांठ टोटल ।पु० २।इति।

आँखें तो इस की सुन्दर हैं, प्रभु इन पर दुनियाँ है शैदा।
रे मूरख तू इन पर ललचाया, यह घोर नरक का कारण है।
पर की माता अरू बहन लखी, नहीं साधु लखे जग तारण है।
हे नाथ मैं इन पर मोहित था, सच मुच यह बड़ी कुजाती है।
यदि आज्ञा हो तो पैरों पर, कुछ कुछ तबियत ललचाती है।
यह भी खाने के योग्य नहीं, नहीं कभी गुरु दर्शन करन गया।
हे स्वामी बिलकुल निन्दनीय, मुझ को बड़ी गिलानी है।
प्रभु पेट तो इस का खा सकता, इस में तो बड़ी मुलामी है।
रे अज्ञानी मूरख गीदड़, अन्याय का धन खा भरा जिसे।
अरु माँस मद्य मधु हिंसाकर, छलकपट दगा नित्य किया जिसे।
धिक्कार है इस के खाने में, यह पापी नीच अधम नर है।
क्या स्वामी सिर खा सकता हूँ यह अशुचि देह से ऊपर है।
मेरे प्यारे भाई गीदड़, तुम को मैं कहाँ तक समझाऊँ।
कर के अभिमान नहीं सोचा गुरु भगवन आगे झुक जाऊँ।
हे स्वमी मुझ अज्ञानी ने, कई पापी ऐसे खा डाले।
प्रभु आत्म गिलानी करता हूँ, हिंसा के टूट गये ताले।
हे पुरुष कहाने वालो तुम, इस कथा को सुन कुछ ले जाना।
तुम ज्ञान सहित मैं तो पशु हूँ, पर मैं ने माँस तजा खाना।
आशा है तुम भी छोडोगे, जब पशु तक निन्दा करते हैं।
हां? क्यों नहीं वह नर छोडेंगे, जो नरक मार से डरते हैं।
इस पापी मन को समझाना पांचों पापों से मुह मोडो।

४४ भजन–पापी को गीदड़ भी नहीं खाता

दोहा–नरतन पाकर खो दिया, जिन विषयों के माँह।
उन के अशुचि शरीर को, गीदड़ खावे नांह ॥१॥

तर्ज राधे श्याम की।

यदि आप समझते हैं असत्य तो, तुम को कथा सुनाते हैं।
पापी से पापी अधम पुरुष की, हम हालत दिखलाते हैं
एक जंगल बड़ा भयानक था, उस में एक साधु रहता था।
करता था घोर तपश्चर्या अरु, मोक्ष मारग का नेता था।
उस बन के अन्दर मनुष्य मृतक, जिस को गीदड़ खाने लाया।
उस वक्त वहाँ पर साधु ने, गीदड़ को जाके समझाया।
रे गीदड़ तू नीच मृतक के; अंग का भक्षण मत करना।
ये सुनकर पूछा है स्वामिन; क्या अवगुन इस में पहचाना।
हाँ? अगर पुरुष यह पापी है, क्या हाथ तो इस के खालूं मैं।
इन हाथों में क्या दोष प्रभु, अपने मन को समझालूं मैं।
इन हाथों को तू मत खाना, इस से अच्छा भूखों मरना।
मन मानी इन से हिंसा की, नहीं दान कभी सीखा करना।
हे स्वामी कान तो ऊंचे हैं, हो हुक्म इन्हें खासकता हूँ।
सुन भाई? बड़े निकम्मे हैं, इनका भी सबब बताता हूँ।
इन कानों से नहीं धर्म कथा, नहीं वीर कथा सुन हर्पाया।
विपयों की कथा में मगन रहा, स्त्री चरित्र सुन ललचाया।
दोनो बातों को समझ गया, और दिल में घृणा हुई पैदा।

करो निज धर्म की वृद्धि, बढेगी विश्व में कीर्ति ।
कहे धीरज बनो सुशिला, यही गुण लाभ भारी है ।७।इति।

४६ भजन—स्त्री शिक्षा का

कहा के भारती बाला, गीत क्यों गन्दे गाती हो ।
सुनाकर सभ्य पुरुषों को, मूर्खता क्यों दिखती हो ।टेक।
पुराने गीतों का गौरव, बड़ा मशहूर था जग में ।
दिलाते शौर्य कायर को, ध्यान में क्यो न लाती हो ।१।
निर्शर्म को भी शर्म आती, तुम्हारे गीत गन्दे सुन ।
बिगड़ी छोटी कन्यायें, रसिक पन क्यों सिखाती हो ।२।
पुरुष व्यभचार के रंग में, तुम्हें शाबास देते हैं ।
तुम्हें धिकार सो सो है, कुटुम्ब को क्यों डुबाती हो ।३।
इन्हीं अशलील गीतों से, कलंकित हो रहा भारत ।
मिटाने शील और संजम, कुल्हाड़ी क्यों चलाती हो ।४।
कहाते हैं जो अब मुखिया, मिटा सकते हैं रूढी को ।
धीरज की आशा इनसे ही, अगर आदर्श न्याती हो।५।इति।

४७ भजन—स्त्री शिक्षा का

उठो बहनो पढो विद्या, यही शिक्षा हमारी है ।
बिना विद्या के पढने से, बुरी हालत तुम्हारी है ।टेक।
तुम्हारा नाम शुद्रों में हुआ सामिल है ये बहनो ।
बनी हो पैर की जुत्ती, यही दुःख हमको भारी है ।१।
तुम्हारा मान और इजत, नहीं अब कुछ रहा बाकी ।

हिंसा चोरी अरु झूठ तजो, पर नारी अरु ममतो छोडो ।
यदि आप पुरुष हैं सच मुच, तो यह बात मेरी अपनायेंगे ।
मैं दावे से कह सकता हूँ, वह शीघ्र परम पद पायेंगे ।
भैय्यालाल अपने ऊपर भी, यह उपदेश घटायेंगे ।
दुरलभ मनुष्य जन्म पाया है, इसे न वृथा गमायेंगे ।।इति।।

४५ भजन—स्त्री शिक्षा का

तनिक देखो अरी बहनों, दशा क्या अब तुम्हारी है ।
पति व्रत धर्म को त्यागा, श्रम का भार भारी है ।।टेक।।
प्रथम कर्तव्य भक्ति का, स्वसुर सासु की हो सेवा ।
व्याह कर लाये चँवरी से, उन्हीं से होती न्यारी है ।।१।।
ये लम्बा खींचती घूंघट, निकट के नाते दारों से ।
हँसी पर अन्य पुरुषों की, वही करती उघाड़ी है ।।२।।
वृध की त्याग कर सेवा, लघुजन की करे संगत ।
अन्य लोगों के घर घूमें, नीति तो बिसारी है ।। ३ ।।
धर्म पथ भूल कर बैठी, दीन होकर के निद्रा में ।
दया मय की तजी भक्ति, इश्किया गीत गाती हो ।।४।।
समुचे कु रीवाजों को ही, रखती प्रेम से दिल में ।
सदा सुख प्रद रही शिक्षा, वही तुम को न प्यारी है ।।५।।
रही नारी सदा सारी, हमारे देश की आगे ।
परन्त आजतो धर लाज, क्यों रहती पिछारी है ।।६।।

शर्म करनी चाहिये, बे शर्म क्यों होती हो तुम ।
गन्दे गाने न अब तुम गाया करो ॥ ब० ३ ।
द्रोपती सीता सती सी, नारियां यहाँ हो गई ।
आत्म बल दिखला जहाँ में, खूब रोशन हो गई ।
अब कुछ उनकी तरफ भी लखाया करो ॥ब० ६॥
अब अधिक कहने की नहीं, कुछ आवश्यकता है अमर ।
कर अमल इस पर अमर, बनजाओ बस क्या फिकर ।
देवी बनकर के धर्म को दिपाया करो ॥ब० ७॥इति।

४६ भजन—माता का पुत्री को उपदेश

जाओ जाओ ये प्यारी बेटी रहो खुशी के साथ ।टेक।
चौदह वर्ष घर आंगन में, खेली धूम मचाई ।
आज लाडली एक पलक में; तू हो गई पराई ।जा०१
सभी तरह की सही मुसीबत, पाली और पढाई ।
दूर हृदय से होती है तू आज, हृदय की जाई ।जा०२
लड़ी रूठली जिदभी करली, यहाँ तो खट गई भैना ।
वह है देश बिगाना;वहां पर चतुराई से रहना ।जा३०
आज विदा करने में तुझको, हृदय फटा जाता है ।
मत रोवे हे बेटी, जग का ऐसाही नाता है ।जा० ४
भोली सूरत मीठी बातें, याद करी रो लूंगी ।
मुन्नी बिटिया रानी कहकर, अब किससे बोलूंगी ।जा०५
सास सुसर और पति देव की, सेवा खूब बजाना ।

सबब इस का यही है री, अविद्या तुम को प्यारी है।२।
तुमही को कहते थे लक्ष्मी, तुम्हारा ही नाम था देवी ।
तुम्हारे ही मूर्ख होने से, हुआ भारत दुखारी है ।३।
यही वासुदेव की बीनती, न जबतक तुम पढो विद्या ।
तभी तक यह बुरी हालत, हमारी और तुम्हारी है ।४।इति।

४८ भजन—स्त्री शिक्षा का

बहनों जीवन को अच्छा बनाया करो,
अपनी जाती की इज्जत बढाया करो ॥ टेक ॥
लड़चुकी तुम बहुत अब तो, आगे मत लड़ना कभी ।
अगर कोई कुछ कहभी दे तो, शांति से सहना सभी ।
सब से मिल जुल के, प्रेम बाढाया करो ॥व० १॥
हव्वा कहकर बालकों को, मत बनाओ बुज दिले ।
देश जाति धर्म के, बहादुर बनावो मन चले ।
देश वीरों की कहानी सुनाया करो ॥ व० २ ॥
मत फिरो तुम पूजती, माता मशानी जहाँ तहाँ ।
वहम से गिरती हुई, आगई तुम कहाँ से कहाँ ।
बहकावे में किसी के न आया करो ॥ व० ३ ॥
छोड दी जब से पढाई, तुमने झगड़ा जान कर ।
कम अकल हैं औरतें, कहने लगे सब तानकर ।
विद्या पढने में जिया लगाया करो ॥ व० ४ ॥
भोली बहनों व्याहों में ये, गीत क्या गाती हो तुम ।

५१ भजन—बाल ब्रह्मचारी विजय कुंवर का

ये कच्छ देश और कौसुंबी नामे नगरी हो नामे नगरी,
जहाँ बाग बगीचा शहर की शोभा सगरी।
ये धन्ना नामे सेठ रास है धनरी, रास है धनरी।
श्री विजय कुंवर के धर्म करन की लगरी।
पुन्यवन्त मिली है विजया कुंवरी नारी, हो कुंवरी नारी।
भर जोवन में पाल्यो शील के ममता मारी।भ०१।
सोलह कर के शिंगार पिऊपर जाती, पिऊपर जाती।
गहना पहरा है खूब घूं घर घमकाती।
वालम से सुन्दर प्रेम धरी बतलाती, धरी हो बतलाती।
कामी की छाती थरर थरर थर राती।
हित करके बोले विजय कुंवर सुन प्यारी, कुंवर सुन प्यारी।भ०२।
ज्यों मदन दीपन हो ऐसी बातें करती हो बातें करती।
मैं कृष्ण पक्ष का त्याग लिया मुनिवर थी।
यह सुनकर सुन्दर बोली नैना झरती हो नैना झरती।
मैं शुक्ल पक्ष का त्याग लिया नहीं डरती।
करें बहन भाई ज्यों मिल बातें इकतारी हो इकतारी।भ० ३।
श्री विमल केवली बखान इन का कीधा हो बखान इन का कीधा।
जिनदास श्रावक सुनकर आया सीधा।
कर भाव मुनि का दर्शन हिरदा भीजा, हो हिरदा भिजा।
और खूब हुआ चाहा के अमृत पीधा।

ननन्द देवरानी जेठानी से, झगड़ा नहीं मचाना ।जा० ६।
गृह लक्ष्मी गृह चन्द्रिका, बन प्रकाश फैलाना ।
केवलमुनि कहे सत्य धर्म को, भूल कभी ना जाना। ।जा० ७।इति।

५० भजन-सती अंजनाजी का

करे रुदन अंजना भारी, मुझे रखले मेरी महतारी ।।टेक।।
पति मेरे युद्ध बीच गये हैं, जल्दी आने को कह गये हैं ।
लेंगे खबरिया हमारी ।।क० १।।
दोष लगा मुझे घर से निकाली, पति बिना मेरा कौन रखवाली ।
आई हूँ शरण तिहारी ।।क० २।।
नहीं सुनती फरियाद मैं तेरी, निकलजा घर से ना लावेदेरी।
दीखे है तेरी बदकारी ।।क० ३।।
खबर हुई जब राज जी आये, गुस्से में यह बचन सुनाये ।
चलीजा बीच उजारी ।।क० ४।।
जो इसको पानी भी पिलावे, देश निकाला सजा वो पावे ।
मुजरिम है सरकारी ।। क० ५ ।।
शरण आई थारे वीर प्यारो, बिपता पडी मेरे सिर से टारो ।
मैं हूँ बहन तुम्हारी ।। क० ६ ।।
इस से जादह हम ना जाने, हुक्म पिता का हम माने ।
यहाँ रहना दुशवारी ।। क० ७ ।।
सो भाइयों की बहन कहावे, दर दर धक्के आज यह खावे ।
है कर्म चन्द कर्म बलिहारी ।।क०८।।इति।।

दोहा-समुद्र बिजयजी का लाडला, नेम जिन्हों का नाम।
राजलदे को आये प्रणघा, उग्रसेन घर ठाम।
प्रसन्न भई नगरी सारी ॥ने० १॥

कसुम्बल वागा अति भारी, कोर गोटन की छवी न्यारी।
किलंगी तुरा सुखकारी, माला गल मोतीयन की डारी।
दोहा-काने कुंडल जगमगे, सीस शेहरा जान।
कोड़ भानु की करूं उपमा, जाकी शोभा इन्द्र समान।
बाज रहा बाजा टक सारी ॥ने०२॥

छूट रही है हुका तुरराई, ब्याहने को आये बड़े भाई।
झरोखे राजलदे आई, जान को देखी सुख पाई।
दोहा-उग्रसेनजी देखकर, मन में करें विचार।
बहुत जीव करा एकठा, बाड़ा भरा तिनबार।
करी जब भोजन की त्यारी ॥ने०३॥

निकट जब तोरन के आये, पशु जीव सब ही कुरलाये।
नेमजी वचन फरमाये, पशु तुम काहे को लाये।
दोहा-पाका भोजन होवसी जान वास्ते यह।
यह बचन सुन श्री नेमजी, थरहर कम्पी देह।
भाव से चढ़ गये गिरनारी ॥ने०४॥

पीछे से राजलदे आई, हाथ जब पकड्यो है माई।
कहां तू जावे मेरी जाई, और वर है तुझे मुकताई।
दोहा-मेरे तो वर एक है, हो गये नेम कुंवार।
और वर कब हूँ न परनमु, क्रोड़ करो विचार।

यह मात तातने सुनी बात हुई जहारी बात हुई जहारी।भ०४।
यह शङ्क भेद जब जाना कुंवर कुंवरी का, कुंवर कुंवरी का।
घर प्रच्छन्न पनें में शील पाल रजनी का।
यह जगत धन्ध सब फन्द जान सब फीका, जान सब फीका।
लेकर के आज्ञा पंथ लिया मुनिवर का।
कर के ज्ञान ध्यान शुद्ध शील पालके आत्मा तारी,
अत्मा तारी।भर जो० ५।इति।

५२ भजन–ज्ञान दुपट्टे का

दुपट्टा मेरा नैलादे बिच समाना ॥ टेक ॥
सुमत गुपत का सूत बनाया, समकित रूपी ताना।दु० १।
खरे जुल्हाये को ताना भी सोपा सतावीस गुनकर लानाजी।दु०२।
खरे खोटे को ढूंढकर लाओ, खोटे के संग न जाना।दु०३।
बुन बुनाकर त्यार भी हुआ, ओढकर स्वर्ग को जानाजी।दु०४।
पहरे दुपट्टे की करो दलाली, कोड़ीही दाम कमानाजी।दु०५।
यह ओढी ने मैल लगावे, चौरासी में रुल जानाजी।दु०६।
यहरे दुपट्टा खरा अमोलक, सिर के साटे हथ आनाजी।दु०७।
हंसराज की यहीरे विनती, चरण से ध्यान लगानाजी।दु०८।इति।

५३ भजन-भगवान श्री नेमनाथजी का (लावनी में)

नेमजी की जान बनी भारी, देखन को आये नर नारी।
क्रोड़ों घोड़ा और हाथी, मनुष्य की गिणती नहीं आती।
ऊंट पर धजा जो फ़रराती, धमक से धरती थर राती।

स्वामी भलीजी अमृत बेलियाँ बेलियां ।
बाजा बजन्तर शंख पुरियों, अरिहन्त जय जय कीजिये ।
बहन भानजी भुवाजी अनन्द, यह तो जी मंगल पहलड़ो ।
स्वामी यहतो जी मंगल पहलड़ो ॥ १ ॥
ऐसे दूजे जी मंगल, गहरासा चन्दवा ताणिये ।
भरदिये कटोरा, नेमनाथ अंग लगाइये ।
अणाय दही, गोपाल सेती, राच कचोला घोलिये ।
स्वामी राच कचोला घोलिये ।
एक नरम गरम कपोल कुमकुम, महेन्दी कपूर मिलाइये ।
सनान कर आरता धाऊं, अरिहन्त जय जय कीजिये ।
बहन भाणजी भुवाजी आनन्द, यह तोजी मंगल दूसरो,
स्वामी यह तोजी मंगल दूसरो ॥ २ ॥
ऐसे तीजे जी मंगल, मात पितारे बुलाइये ।
मलयागिर चन्दन, नेमनाथ जोग अणाइये ।
हर्ष तो अंग लगाइये चन्दन, शोभाजी महिमा अतिघणी ।
स्वामी शोभाजी महिमा अतिघणी ।
चोवातो चन्दन और मरवा, घस कटोरा घोलिये ।
स्वामी जी घस कटोरा घोलिये ।
मगला श्रावक कोड़ सूरज, कोड़ सूरज अतुल है ।
बाजा बजंतर शंख पुरियो, अरिहन्त जय जय कीजिये ।
बहन भाणजी भुवाजी आनन्द, यहतोजी मंगल तीसरो ।
स्वामी यहतोजी मंगल तीसरो ॥ ३ ॥

दीक्षा जब राजल ने धारी ।ने० ५।
सहेली सब ही समझावें, हिये राजल के एक नहीं आवे ।
जगत सब झूठा दरसावे, मेरे मन नेम कुंवर भावे ।
दोहा—तोड़ा कंकन डोरला तोड़ा नवसर हार ।
काजल टीकी पान सुपारी, सभी तजा शिंगार ।
छोड़ बन चली गिरधारी ।ने० ६।
तजा सब सोलह शिंगारा, आभूषण रतन जड़ित सारा ।
लगे मुझको सबही सुख खारा, छोड़ कर चली निर धारा ।
दोहा-मात पिता परिवार को; तजतान लागी वार ।
विजोग करी चली आपसुं, जाय चढी गिरनार ।
सुरती छोडी महतारी । ने० ७ ।
दयादिल पशुवन की आई, त्याग जब कीनो छिन मांहीं ।
नेमजी गिरनारे जाई; पशु के बन्धन छुडवाई ।
दोहा-नेम राजल गिरनार पै, ध्याये निर्मल ध्यान ।
नवलमल गाई लावनी, उपजा केवल ज्ञान ।
हुए मुक्ति के जय जय कारी ।ने० ८।इति।

५४ भजन—नेमनाथजी के पंचमंगल का

ऐसे पहलेजी मंगल, अरिहन्त देव मनाइये, जोशीरे बुलाय,
मोतीयन चोक पुराइये ।
पुराइये चोक, रचाइये मंगल, वेद्य बिप्र बुलाइये,
एक भल मुहूरत, लग्न लिखिया, भलीजी अमृत बेलियाँ,

जो आनन्द मंगल चाहोरे मनाओ महावीर ॥टेक॥
प्रभु त्रिशलाजी का जाया है, कंचन वरनी काया।
जाके चरनन शीश नमाओ ॥मनाओ महवीर १॥
प्रभु अनन्त ज्ञान गुन धारी। है सूरत मोहन गारी।
जाके दर्शन कर सुख पाओ रे ॥ म० २ ॥
या प्रभु जी की मीठी बानी, है अनन्त सुखों की दानी।
थे धार धार तिरजा ओरे ॥ म० ३ ॥
जाका शिष्य बड़ा है नामी, सदा सेवो गोतम स्वामी।
जो ऋद्धि सिद्धि थे पाओरे ॥ म० ४ ॥
थारा विघ्न टल जावे, मन वाँछित सुख प्रगटावे।
फिर आवागमन मिटजावेरे ॥ म० ५ ॥
ये साल उगासी माई, देवास शहर के माहीं,
कहे चोथमल गुण गाओरे ॥ म० ६ ॥ इति ॥

५६ भजन—ईश्वर भक्ति का

सुबह शाम जिसको तेरा ध्यान होगा,
वड़ा भाग्यशाली वह इन्सान होगा ॥ टेक ॥
उसीको तो हमदम लगन तेरी होगी,
कि जिसका के पुन्य उदैवान होगा ।१।
है हृदय में जिसने तुमको टटोला,
लगा खाक तन पै क्यों हैरान होगा ।२।
तेरे नाम से जो भी गाफिल रहेगा,

ऐसे चोथे जी मंगल शरण शरण ढलनी ढले ।
मन भावे सो पहरो, वस्त्र चीर पटम्बरे ।
पाट पटम्बर पहरो नेमजी, काने कुंडल सिर शेहरो ।
हाथ तो कंगन, बीच टोडर, पहरोजी नेम पियारड़ा ।
स्वामी पहरोजी नेम-पियारडा । काने लंगूरी, सिर शेहरो,
पहरीने सब जग मोहिया । बाबल सेती राजल विनवे,
हाथी चढा वर आवियो, स्वामी हाथी चढा वर आवियो ।
बाजा वजंतर, शंख पुरियो, अरिहन्त जयजय कीजिये,
बहन भानजी भुवाजी आनन्द, यहतोजी मंगल चोथडो ।
स्वामीजी यहतोजी मंगल चोथड़ो ॥ ४ ॥
ऐसे पाँच में जी मंगल, नेमनाथजी ब्याहन छठे,
तोरन सुं चढतां, पशुओं की बन्ध छुडाविये ।
वर्षी दान दियो नेमनाथजी, नेमनाथजी संजम लियो ।
संजम लियो नेमनाथजी गिरवर चढ़े ।
राजुल सुन वैराग्य उपन्यो, नेमनाथजी राजल सती ।
दान शील तप भावना भावो, अरिहन्त जयजय कीजिये ।
बहन भानजी भुवाजी आनंद, यहतोजी मंगल पांचमो ।
स्वामी यहतोजी मंगल पाँचमो ।५।इति।

५५ भजन—महावीर स्वामी का

जो आनन्द मंगल चाहोरे, मनाओ महावीर ।
मनाओ महावीर मनाओ महवीर ।

जग जाग उठा तू सोता है, अन मोल समय ये खोता है।
तू काहे को प्रमादी होता है, ॥भ० १॥
ये समय नहीं है सोने का, है वक्त पाप मल धोने का।
और सावधान चित होने का ॥भ० १॥
तू कौन कहाँ से आया है, अब गमन कहाँ मन भाया है।
टुक सोच यह अवसर पाया है ॥भ० ३॥
और चेतन चतुर हिसाव लगा, क्या खाया खरचा लाभ हुआ।
निज ज्ञान की पुंजी सम्भाल किया ॥भ०४॥
गति चार चौरासी लाख रूला, ये कठिन २ शिवराह मिला।
अव भूल कुमार्ग विषे मत जा ॥भ० ५॥ इति ॥

५९ भजन—आत्म शुद्ध करना

नर क्या मुखड़ा धोता है, कर अन्दर साफ शरीर को॥टेक॥
जब लग दिल तेरा नहीं सफा है, मुख धोने से कौन नफा है।
खोटी करनी बे वफा है, रोवेगा तकदीर को।
बैतरनी का गोता है ॥ न० १ ॥
ज्ञान का साबुन राखो संग में, काटे मैल जो फेरे अंग में।
दिल को रंगलो प्रेमी रंग में, बस कर पांचो पीर को।
किस गफलत में सोता है ॥ न०२ ॥
दर्पन लेके देखे चेहरा, हुस्न रूप धन रहे न तेरा।
एक दिन हो शमशान में डेरा, चलना अमीर फकीर को।
पिंजरे से निकला तोता है ॥न०३॥

समझलो बड़ाही वह नादान होगा ।२।

जिस जगह भजन हर घड़ी तेरा होगा,

वैकुंठ शाही वह स्थान होगा ।४।

तू बेचैन मत हो यह पी प्रेम प्याला,

इसे वह पिये जो कदर दान होगा ।५।इति।

५७ भजन

गोरा बदन तेरा चाँदसा, यह खाक में मिल जायगा ।

दिनचार का है चाँदना, जोबन तेरा छिप जायगा ।टेक।

यह महल मंडप माडिया, गज बाज पिनस पालकी ।

सब छोड कर चलना पड़े, जब काल सिर पर आयेगा ।गो० १।

गफलत की गहरी नीन्द में, क्यों सो रहा अनजान तू ।

यह वक्त है प्रभु भजन का, नहीं पीछे तू पछितायगा ।गो० २।

तेरा जिस्म पानी का बुलबुला, जाते न लगती देर जी ।

जिस पर करे अभिमान तू, यह वर्फ सम लढ जायगा ।गो० ३।

नर देह जो तुझ को मिली, इस का ही मिलना था कठिन ।

वृथा जो इसको खो दिया, फिर मार जम की खायगा ।गो० ५।

दुनिया के झगड़े छोड़कर, दिल में हरी भी धारले ।

कहे दास इससंसार से, आवागमन मिट जायगा ।गो० ६।इति।

५८ भजन-प्रातः कालकीय प्रार्थना

उठ भोर भई टुक जाग सही, भजवीर प्रभु-भजवीर प्रभु ।

अब नीन्द अविद्या त्याग सही, भजवीर प्रभु-भजवीर प्रभु ।टेक।

६१ भजन-श्री जम्बू स्वामीजी का

राजगृही ना वासियाजी, जम्बू नाम कुंवार ।
ऋषभदत्तरा डीकराजी, भद्रा ज्यांरी माय ।
जम्बू कह्यो मानलेरे जाया, मत ले संजम भार ॥ १ ॥
सुधर्मास्वामी पधारियाजी, राजगृही रे माँय ।
कोणक वन्दन चालियोजी, जम्बू वन्दन जाय ॥ २ ॥
भगवन्त वाणी वागरी जी,, वर्षे अमृत धार ।
वाणी सुणी वैरागियाजी, जाण्यो अथिर संसार ॥३॥
घर आया माता कनेजी, विनवे वारम्बार ।
अनुमत दीजो मोरी मातजी, माता लेस्युं संजम भार ।
माता मोरी साँभललो, जननी लेस्युं मैं संजम भार ॥४॥
ये आठोंही कामनीरे जम्बू, अपच्छरारे उणीहार ।
परणी ने किम परहरो रे जाया, कैसे कटेगा जमार ॥५
ये आठों ही कामिनीरे जम्बू, सुख विलसो संसार ।
रमिया ठमिया सुं निसरे रे
ज्याँरा वदन कमल विलखाय ॥ ६ ॥
मतहीणा छे मानवीरी माता, मिथ्यातन
रूप रमणी सुं राचियारी माता,
ज्याँरा दुरगत हुआ नहीं छे
माता मोरी साँभलेरी माता,
जननी लेस्युं मैं संजम भ

लाख चोरसी भरी है दर की, जब तुझे जून मिली है नर की।
करतू फिक्र नरक के डर की, भज सर्वज्ञ महावीर को।
कविशंकरदास जोड़ा है ॥न० ४॥

६० भजन-भारत का उद्धार

होवे धर्म प्रचार, प्यारे भारत में ॥टेक॥
ईर्षा करे न कोई भाई, दिल में हो सब के नरमाई
सरल बने नर नार ॥प्यारे० १॥
जूआ मांस शराब व चोरी, दूर हो जग से रिश्वत खोरी।
न खेलें कोई शिकार ॥प्यारे०२॥
मुनि गुणी जन जितने आवें, सारे उन से लाभ उठावें।
लेवें जन्म सुधार ॥ प्यारे० ३ ॥
तज कर निन्दा झूठ लड़ाई, गले मिलें सब भाई भाई।
बहे प्रेम की धार ॥ प्यारे० ४ ॥
मुख से कोई न देवें गाली, बोली बोलें इज्जत वाली।
मीठी और रसदार ॥प्यारे० ५॥
महावीर के बनें पुजारी, सत्य अहिंसा दया के धारी।
मंत्र जपें नवकार ॥ प्यारे० ६ ॥
धर्म का झंडा फहरे फर फर, नाम प्रभु का गूंजे घर घर।
होवे जय जयकार ॥प्यारे० ७॥
चन्दन और कहे क्या ज्यादा, भेष व भोजन हो सब सादा।
सादा हो घर बार ।प्यारे० ८। इति।

कन्थ बिना किसी कामनी रे जम्बू, झुरसी बारोंही मास।१८।
मोह मत करो मोरी मातजी, माता मोह से बांधे री कर्म,
आरत दिवारत छोड देरी माता, थेतो करी श्री जी को धर्म।१६।
ये आठोंही कामनी रे जम्बू, समझाई एक न रात।
श्री जिनजी का धर्म दिपाविय जम्बू, वरत्या जयजय कार।
जम्बू भला चेतिया जाया, लीजो संजम भार। २०।
मात पिता समझाविया रे जम्बू, समझाई आठों ही नार।
सासु सुसर समझाविया रे, पाँच से चोरों की लार। २१।
पाँच से सताइस जणा जम्बू, लीनो संजम भार।
ज्ञारा जीव मुक्ति गया जम्बू, बाकी स्वर्ग मंझार।
जम्बू भला चेतिया जाया, लीजो संजम भार।२२। इति।

भजन ६२

बैठ अकेला दोघड़ी, कभी तो ईश्वर ध्यायाकर।
मन मन्दिर में गाफिल, झाड़ु रोज लगाया कर।टेक।
सोने में तो रैन गुजारी, दिन भर करता पाप रहा।
इसी तरह बरबाद तू प्राणी, करता अपना आप रहा।
बिस्तर से उठ प्रेमियां, सत्संग में भी आयाकर।बै०१।
पास तेरे है दुखिया कोई, तूने मौज उडाई क्या।
भूखा प्यासा पड़ा पड़ौसी, तूने रोटी खाई क्या।
पहिले मन से पूछ कर भोजन फिर तू खाया कर।बै०२।
धन दौलत का मान न करिये, इस का कुछ इतबार नहीं।

छिटकाय।
पालपोस मोटा कियारे जम्बू, अब किम दो छिटकाय।
थारे दया नहीं छे दिलमाय॥८॥
तात मात मिल रोवतारे जम्बू, थारे दया नहीं छे दिलमाय॥८॥
तात मात मिल आवणारी माता, मिलया अणान्तिरी चार।
तारन तिरन कोई नहींरी माता, पिता पुत्र परिवार ॥ ९ ॥
तू माहरे आंधा लाकडी रे जम्बू, तू माहरे प्राण आधार।
तुझ विन माहरे जग सूनारे जाया, जननी जीतव्यराख॥१०॥
एक लोटा पानी पीऊंरी माया, तात मात अनेक।
सगलांरी दया पालस्युंरी माता, आणी चित विवेक॥११॥
ये आठंही कामनी रे जम्बू, सुख विलसो संसार।
दिनरे पाछे, गिरी आथसें जाया, लीजो संजम भार॥१२॥
रतन जड़ित का पींजरारी माता, सूआ जाणेरी फन्द।
काम भोग संसार का रीमाता, ज्ञानी भाष्या छे फन्द।१३।
पंच महाव्रत पालना रे जम्बू, पाँचों ही मेरु समान।
दोष वियालीस टालना रे जम्बू, लेनो सुझतो आहार।१४।
पाँच महाव्रत पालस्युंरी माता, पाँचों ही सुख समान।
दोष वियालीस टालस्युं री माता, लेस्युं सुझतो आहार।१५।
संजम मार्ग दोहिला रे जम्बू, चलनो खांडानी धार।
नदी किनारे रूखडा रे जम्बू, जद तद होय विनास।१६।
चाँद विना किसी चाँदनीं रे जम्बू, तारा विना किसी रात।
वीर विना किसी वहनड़ी रे जम्बू, झुरती चार त्योहार।१७।
दीपक विना रे सुना मंदिर सुनारे जम्बू, पुत्र विना परिवार।

छुटी थी जल की पिचकारी ।वि० ५।
विदेशियों के बिमान अन्दा, बैठे मनुष्य अढाई।
रामचन्द्र ने पुष्पक बिमान में, सेना सभी बिठाई ।
कहती है रामायण प्यारी ।वि० ६।
मलमल और तंज़ेब देख, चक्कर खा हिन्दुस्तान।
बाँस की नलकी में ढाके से, आया मलमल थान ।
ढकी थी हाथी अम्बारी ।वि० ७। इति ।

६४ भजन—परदेशी का

क्यों ना लाभ कमावे रे, चेतन परदेशी ।
गया वक्त हाथ नहीं आवेरे, चेतन परदेशी ।।टेक।।
उमर है यह ओस बिन्दु, सोच लीजे दिल में बन्धु ।
धूप लगे ढलजावेरे ।।चे० १।।
क्षण भंगूर है तेरी काया, झूठी जग की है यह माया।
संग ना कोई जावेरे ।।चे०२।।
है जगत यह रैन का सुपना, यहां नहीं है कोई अपना।
किन संग प्रेम बढावेरे ।।चे०३।।
सच्चा सखा है धर्म तेरा, कर आराधन मान मेरा ।
नाथुमुनि चेतावे ।।चे० ४।।इति।।

६५. भजन—सती राजलदेवी का कहना

सखी न रोको तुम मुझको, मैं गढ गिरनार जाऊंगी ।
कि प्यारे नेम स्वामी के, वहां जा दर्शन पाऊंगी ।। टेक ।।

दया दमन सत्य शील, दया से समझो बढकर धर्म नहीं।
दीन दुखी बलहीन की, सेवा रोज कमाया कर ।बे० ३।
बारम्बार जन्म का पाना, बच्चों वाला खेल नहीं।
जन्म जन्म के शुभ कर्मों का, होता जबतक मेल नहीं।
नरतन पाने के लिये, उत्तम कर्म कमायाकर ।बे० ४।इति।

६३ भजन–विद्या माता का

बिन बिद्या के भारत देश; आज तेरी हुई खुवारी ।टेक।
किसी कविका वचन सदा, दिन रहते न एक समान।
कभी विदेशी हमें कहैं थे अपना ही महमान।
हमारी थी रिश्तेदारी । वि० १ ।
अमरीका में अर्जुन ब्याहे, पाँडु ब्याहे ईरान ।
धृतराष्ट्र राजा ब्याहे, काबुल के दरम्यान ।
जहां की माता गंधारी ।वि० २।
बिदेशियों की मोटर रेलें, देख करें अफसोस।
पांच मिनट में काठ का घोड़ा, जाता बाइस कोस।
भोज की थी असवारी ।वि० ३।
फोनोग्राफ देख कर वाजा, लोग हुए लवलीन।
विक्रमादित्य के तख्त के नीचे बतीस लगीथी मशीन।
बोली थी न्यारी न्यारी ।वि० ४।
बाजारों में नल का पानी पीकर, लोग हुए हैरान।
भीष्म के कारण अर्जुन ने, मारा जमीं में बाण।

मुझे महेन्दी नहीं चाहिये, धर्म मेहन्दी लगाऊंगी ॥ ११ ॥
सजावट और बन ठन से, मुझे नफरत मेरे दिल को।
नही दरकार सुरमा की, नहीं में पान खाऊंगी ॥१२॥
चलूंगी नकरा पाऊं पर, अब तो जग सेग प्यारे के।
किसी के और कहने को, सुनूंगी ना सुनाऊंगी ॥ १३ ॥
मुनि चन्दन यह नर जीवन, बड़ी मुश्किल से पाया है।
कि संजम धार के इस को, अति ऊँचा उठाऊंगी ।१४॥इति॥

६६ भजन-निरमोही राजा की ढाल-तर्जलावनी

वन्दू नाभराय के नन्द आद के करता,
श्री चरम जिनेश्वर वर्द्धमान दुःख हरता।
चोवीस तीर्थंकर दुक्कर करणी करता,
हुए अष्ट कर्म दल जीत, शिव रमनी के वरता।
सुर नर और मुनि, जिन का सुमरन करता।
जो सुमरे निश दिन, नीचगति नहीं पड़ता।
सतगुरु बतलाई साची जिन की वाणी।
जिन जीता मोहनी कर्म सो उत्तम प्रानी ॥१॥
सुर राजा ने एक दिन, प्योग ज्ञान में लाया।
निरमोही राजा देख, चित्त हुलशाया।
तब बोला सुर पति, दृढ धर्मी वह राया।
जिन कुनबे सेती, मोह को दूर हटाया।
सुर नर मुनि जिस को, सकता नहीं डिगाया।

दया पशुओं की ला मन में, मेरे प्रीतम गये बन में,
लिया है जोग बचपन में, उन्हें जा सिर झुकाऊंगी ॥१॥
किसी संसार के सुख की, नहीं खुवाहिश जरा मुझ को।
चले जिस राह पर स्वामी, उसी पर पग बढाऊंगी ॥२॥
यह झूठी जगत की माया, धरा क्या खाक है इस में।
बचाऊंगी स्वयं को मैं, बचाऊंगी बचाऊंगी ॥ ३ ॥
कठिन इस जोग का पालन, अगर कर सकते हैं बालम।
तो मैं भी हो के क्षत्राणी, भला क्यों खोफ खाऊंगी ॥४॥
सखी संसार में सुख यह, असल में सुख नहीं हरगिज।
जिन्हें प्रीतम ने पाया है, इन्हें मैं भी पाऊंगी ॥ ५ ॥
हटाओ फूल की शैया, जरूरत है नहीं इसकी।
वैरागन नेम की हूँ मैं, घास सूखा बिछाऊंगी ॥ ६ ॥
उतारो हार यह गले से, जड़ाऊ चूड़ियाँ कंगन।
लिया वैराग्य जब कि है, नही अब मैं सजाऊंगी ॥ ७ ॥
वैरागन हूँ जरूरत क्या मुझे, भूषण की ये सखियो।
यह छल्ले नाक का कोका, नहीं मैं लोंग पाऊंगी ॥ ८ ॥
निकालो कान से हीरे, व मोती के जड़े जेवर।
सभी भान्ति से मैं जीवन, सखी सादा बनाऊंगी ॥ ९ ॥
मुझे एक श्वेत साड़ी दो, नहीं रंगदार कुछ चाहिये।
हुआ वैराग्य दिल मेरे, वैरागन बन दिखाऊंगी ॥ १० ॥
यह इत्रो तेल व कंघी, और शीशा भी हटा डालो।

सम्वत उन्नीसो चौबीस माहीं, शुभजन्मे आनन्द गुरु जी आई।

शिक्षा लिनि गुरु पाली। तु० ४।

सम्वत् उन्नतालीस नाम सुहागी, दीक्षा नाडौल गुरु से पाई।

भव्य जीवों के तारन हारे। तु० ६।

पूज्य मंगल सैन गुरु आपके नामी, दीक्षा शिक्षा जिनसे पाई।

गुरु भवजल तारन हारे। तु० ७।

बाल ब्रह्मचारी गुरुजी स्वामी, देश देश में आप हैं नामी।

महिमा अपरम पारी। तु० ८।

क्रोध मान के भाव निवारे, लोभ तज शरल भाव चित धारे।

ज्ञान क्रिया के भंडारी। तु० ९।

ज्ञान चन्द्र गुरु जी स्वामी, सब जीवन के हित के कामी।

गुरु ज्ञान के भंडारी। तु० १०।

सम्वत् दोहजार तीन का आया, कुरड़ी नाँगल में आनन्द छाया।

हो रहा जय जय कार। तु० ११।

गुरुदेवजी दया कुछ करना, लियाफूल ने अपका शरना।

दया दिल गुणधारी। तु० १२।

६८ भजन-ज्ञान रूपी बाग का

ज्ञान का बाग लगाओ रे, तुम सुनों सत गुरु का वैन,

ज्ञान का बाग लगाओ रे ॥टेक॥

समकित धरती शुद्ध कराओ, विनय का बीज बुवाओ रे।

क्षमा की क्यारी बिबे[illegible] [illegible]मता जल [illegible] ०१।

मिथ्याति एक सुर, लेन परीक्षा आया।
जोगी का रूप बनाकर, बीन बजानी ॥जि०२॥

जब कुंवर गया बन सैल, महल को धाया।
दरवाजे पर आय, दासी से बतलाया ।
अरी सुन चेरी थारा कुंवर, बाघ ने खाया।
मैं खबर करन को दौड़, बाग से आया ।
दासी कहे जोगी, क्यों इतना घबराया।
तैं कपड़े रंगे, नहीं मरम जोग का पाया ।
अहे कौन दासी कौन आप, ये कुछ कहानी ॥३॥

दोहा-वचन सुणी ने चुप किया, हृदय अचरज आय,
चाकर ने ठाकुर घणा, हिये विचारी जोय ।१।

यह दासी मोल बिकाती, फिर क्यों रोवे,
तू चल माता के पास, जिस दुःख होवे।
अरी सुन माता मोरी बात, फिकर क्या होवे ।
तेरे सुत को पकड़ा सिंह, वो बैठा रोवे ।
माता कहे जोगी, चिन्तातुर क्यों होवे ।
यह जन्म मरण संसार, फिर कुछ न होवे
यह झूठा है संजोग, जगत है फानी ॥जि०४॥

दोहा-ये माता [illegible] दिया, [illegible]
के पुत्र इनका नहीं, या [illegible]

सम्वत उन्नीसो चोबीस माहीं, शरनलई आपने गुरू की आई।
विद्या निधि गुण धारी ।तु० ४।
सम्वत् उन्नतालीस गाम लुहारी, दीक्षा जहांपुर गुरुने धारी।
भव्य जीवों के तारन हारे ।तु० ६।
पूज्य मंगल सैन गुरु आपके नामी, दीक्षा शिक्षा जिनसे पामी।
गुरु भवजल तारन हारे ।तु० ७।
बाल ब्रह्मचारी गुरुजी स्वामी, देश देश में आप हैं नामी।
महिमा अपरम पारी। तु० ८।
क्रोध मान के भाव निवारे, लोभ तज शरण भावचित धारे।
ज्ञान क्रिया के भंडारी। तु० ९।
ज्ञान चन्द्र गुरु जी स्वामी, सब जीवन के हित के कामी।
गुरु ज्ञान के भंडारी। तु० १०।
सम्वत् दोहजार तीन का आया, कुरड़ी नाँगल में आनन्द छाया।
हो रहा जय जय कार ।तु० ११।
गुरुदेवजी दया कुछ करना, लियाफूल ने आपका शरना।
दया दिल गुणधारी ।तु० १२।

६८ भजन-ज्ञान रूपी बाग का

ज्ञान का बाग लगाओ रे, तुम सुनों मन गुरु का बैन,
ज्ञान का बाग लगाओ रे ।।टेक।।
[illegible] गुरु [illegible], विनय का बीज बुवाओ रे।
[illegible], समता नीर छिड़काओ ।ज्ञा० १।

शील डोल चहुंतर्फ चिणाओ; सत्य की कलीय फिराओ रे।
दानादिन दरवाजा चहुं दिश, दया की रहुंस बन्धाओ ।ज्ञा० २।
संजम रूपी महल चिणाओ, श्रद्धा सीढी लगाओरे।
सुमत गुप्त का जाली झरोखा, जिहाँ बैठा सुख पाओ ।ज्ञा० ३।
छः काया का छपरा छवाओ, नो तत्व बेल चढाओ रे।
अनु भव मेवा उतरन लागी, हर्ष हर्ष कर खाओ ।।ज्ञा० ४।।
पंच महाव्रत बाड़ी फूली, भमरा करत उमाओ रे।
ऐसे ही श्रावक उमगीने आवे, जिनवाणी रस प्याओ ।ज्ञा० ५।
आम्बू नीम्बू जामन जमोया, केला कचनार लगाओ रे।
दाडिम दाख अंगूर नारंगी, यह दसविध यतिधर्म पाओ ।ज्ञा० ६।
चेतनमाली करे है रखवाली, भावना उज्वल भाओ रे।
पंच प्रमादी पंखिया बैठें, ताक ताक के उड़ाओ ।ज्ञा० ७।
ज्ञान गुलाब चारित्र चमेली, तप मरुवा महकाओ रे।
समकित चम्पा फूल रही है, अजर अमर पद पाओ ।ज्ञा० ८।
ज्ञान दर्शन चारित्र आरोधो, तप कर तन को तावो रे।
कहे धनीदास काँधला माहीं, गुरु चरन चितलाओ ।ज्ञा० ९।

६९ भजन-प्रार्थना श्री आदिनाथ जी से

आदि जिन अर्ज सुनो म्हारी, कुगुरु कुधर्म छोड़ कर,
शरन लई थारी ।। टेक ।।

लख चोरासी चौगान विषे में, रुल्यो जीव भारी।
चोदा राजु आँगन मोटा, फरस्या बहु वारी ।।आ० १।।

चरचा करवा घर से निकल्या, खिष्ट खरण रा कामी।
देखी त्रिगड़ो अचर्ज उपन्यो; मानगल्यो निठामी ॥प्र०२॥
तीन छत्र सिर उपर सोभें, चमर ढुले दोऊं कानी।
रतन मई सिंहा सण ऊपर, बैठे अन्तर जामी ॥ प्र० ३ ॥
सिर पर वृत्त अशोक विराजे, शहस्त्र धजा फरकाणी।
आगे चक्र चले अरि दारुण, मान खम्भ अगवाणी ॥प्र०४॥
पूंठे तो भा मंडल दीपे, योजन गमनी वाणी।
भव्य जीव सुणी नें हर्षे, मिथ्याति मुरझाणी ॥ प्र० ५ ॥
चोंसठइन्द्र करें ज्याँरी सेवा, चरण ग्रहें सिर नामी।
जयजय शब्द दुंदभी वाजे, मुक्त रमण रा कामी ॥ प्र० ६ ॥
तीन दवों का प्रश्न पूछ्यो, भाख्यो अन्तर्यामी।
दान दया और इन्द्रि दमनी, ये तीनों सुख दानी ॥प्र०७॥
इन्द्र शिष मुनी वीरजीरी वानी, यह तीन भवनरा स्वामी।
चार सहस्त्र चारसो ऊपर, एक दिन दीक्षा पामी ॥प्र० ८॥
सम्वत उन्नीसे उन्नीस ऊपर सांभल जो भव्य प्राणी।
कहे धर्मोदास मैनदी मांहीं, गुरुचरणा चित आणी ॥प्र०९॥

५९ भजन—मार्गी कर्मी श्रावक का तर्ज-होली

शील डोल चहुंतर्फ चिणाओ; सत्य की कलोंत्र (?) लिगाओ रे।
दानादिक दरवाजा चहुं दिश, दया की कुंड बन्धाओ।ज्ञा०२।
संजम रूपी महल चिणाओ, श्रद्धा सीढ़ी लगाओ रे।
सुमत गुप्त का जाली झरोखा, जिहाँ बैठा सुख पाओ।ज्ञा०३।
छः काया का छपरा छवाओ, नो तत्व बेल चढाओ रे।
अनु भव मेवा उतरन लागी, हर्ष हर्ष कर खाओ।।ज्ञा०४।।
पंच महाव्रत झाड़ी फूली, भमरा करत उमाओ रे।
ऐसे ही श्रावक उमगीने आवे, जिनवाणी रस प्याओ।ज्ञा०५।
आम्बू नीम्बू जामन जमोया, केला कचनार लगाओ रे।
दाडिम दाख अंगूर नारंगी, यह दसविध यतिधर्म पाओ।ज्ञा०६।
चेतनमाली करे है रखवाली, भावना उज्वल भाओ रे।
पंच प्रमादी पंखिया बैठे, ताक ताक के उड़ाओ।ज्ञा० ७।
ज्ञान गुलाब चारित्र चमेली, तप मरुवा महकाओ रे।
समकित चम्पा फूल रही है, अजर अमर पद पाओ।ज्ञा०८।
ज्ञान दर्शन चारित्र आरोधो, तप कर तन को तावो रे।
कहे धनीदास काँधला माहीं, गुरु चरन चितलाओ।ज्ञा०९।

६९ भजन-प्रार्थना श्री आदिनाथ जी से

आदि जिन अर्ज सुनो म्हारी, कुगुरु कुधर्म छोड़ कर,
शरन लई थारी ॥ टेक ॥
लख चोरासी चौगान विषे में, भ्रम्यो जीव भारी।
चोदा राजु आँगन मोटा, फरश्या बहु वारी।।आ०१।

भाग्य जोग थारो दर्शन पायो, यही नफो कमायो ॥चे० २॥
एक घडी को सम्वर करले, यह भी दाय नहीं आयो।
कहे देही चौसे नीन्द दबावे, मोहे प्रमाद सताये ॥चे० ३॥
कर वन्दना जब घर को आयो, मित्र आय बतलायो।
आज नगर में वेश्या नाचे, सुणकर मन लुभायो ॥चे० ४॥
आगे भीड़ जुड़ी अति भारी, बैठन कहीं नहीं पयो।
खड़े ही खड़े रुव रैन गमाई, तनमन ध्यान लगायो ॥चे० ५॥
मल मूत्र से पेट आफरे, निकलवा नहीं पायो
इह दुःख को जीव सुखकर माने, ऐसो श्रावक भायो ॥चे० ६॥
धृग धृग है इम तबला बोले, कुनकुन सारंगी शब्द सुनायो।
वेश्या हाथघुमाय कहत है, इनको २ यह भाव बतायो ॥चे० ७॥
पूज्य तुलसीराम तने प्रसादे, धनीदास इम गायो।
शहर कुचामण ढाल कहीये, गुरु चरणो शीश नमायो॥चे० ८॥

७३ भजन—सद्वोध—तर्ज होरी

तैने क्या करतूत करीरे करीरे। तैने नरभव पायो ॥ टेक ॥
बाल पना में खेल गमायो, जुवानी में नार वरी रे।
हंस्यो रम्यो तिन के संगराच्यो, पापकी नाव भरीरे भारीरे। तै० १।
तेल फूलेल अबीर अगरचा, देही सुगन्ध करी रे।
नहाय धोय शिंगार बनायो, वाकीसी पागधरीरे धरीरे। तै० २।
देख जवानी भया है दीवाना, डोलत गली ये गली रे।
काले केश नैन बीच सुरमा, ताके नार परीरे परी रे। तै० ३।

खावत जहर बतावत अमृत, कुमति ने बुद्धि हरी रे।
निजगुण छोड रच्यो पर गुण में ममता नहीं मरीरे २।तै०४।
जुवा खेल मद्य माँस में राच्यो, वेश्या संग करी रे।
चोरी जारी हिंसा में लाग्यो, नरक कीनींव धरीरे धरीरे।तै०५।
साधु सन्त के पास न आयो, कु गुरुओं से प्रति करी रे।
धर्म अधर्म को भेद न जान्यो, मिथ्या में दृष्टि धरीरे २।तै०६।
मेले खेले ख्याल तमासे, इन तेरी बुद्धि हरी रे।
इन्द्रि पाँचो हरें धन तेरा, तैने सुरती नाय करीरे २।तै०७।
वृद्ध भयो इन्द्रि हीनी, फलसा में खाट धरी रे।
मन की हँस रहीमन माहीं, रोवे नैन भरी रे भरी रे।तै०८।
काल आन जब हेलो पाड़्यो, विध विध रोग करी रे।
रुकगये कंठ शब्द नहीं निकसे, पहुँच्यो नरक पुरीरे २।तै०९।
पर उपदेश देवन को चतुरा, राखे बुद्धि खरीरे।
कहे धनीदास आप नही चेते, तासिर धूल पड़ीरे २।तै०१०।

७४ भजन-तर्ज रेखता की

कमर को मोड कर चलते, अतर यह देह से मलते।
जिन्हहों से शेर भी डरते, आखिरां वह भी मरते ॥
धनी को याद रख बन्दे साई को साच प्यारा है ॥टेक॥
बाल पन खेल में खोया, जवानी नीन्द भर सोया।
बुढ़ापा देखकर रोया धर्म का बीज नहीं बोया॥ध०१॥
जिन्हों की देह थी खूबा, अच्छे थे लाल महबूबा।

निरखकर चलते थे छायाँ, उन्हों को कालने खाया। ध० ३।

जिन्हो घर घूमते हाथी, हजारों संग में साथी।
फाढकर चलते थे छाती, तेल बिन बुझ गई बाती। ध० ४।

जिन्हों घर हींस ते ताजी, बैठ कर खेलते बाजी।
देखतन हो रहा राजी, सोच नहीं करत हैं पाजी। ध० ५।

पहरते रेशमी वस्ते, रूप को देख कर हंसते।
जिसमुख चावते बीड़े, उसीमुख पड़ गये कीड़े। ध० ६।

जिन्हों के बाल थे काले, मलाई दूध के पाले।
[illegible]तर बहुत ही घाले, कर्म ने खाक कर डाले। ध० ७।

[illegible]ोते जो मुल्क के हाली, चालते राजहंस सी चाली।
पहरते जाफते वाली; गये दरबार कर खाली। ध० ८।

हजारों बाग के रसते, बिछोने में रेशमी बिछते।
जिन्होंपर बैठकर हंसते, उन्हों पर चल गये रस्ते। ध० ९।

चलती है कालकी चाकी, कोई नहीं रहता है बाकी।
कहे धनीदास चेतलो भाई, मनुष्यदेह दोहलीपाई। ध० १०।

७५ भजन—तर्ज प्रभाती

कौन वक्त सोवन की बरियाँ, भज भगवन्त सवेरा रे ॥टेक॥
मनुष्या पुरी की पीठ लगी है, सौदा करो भलेरा रे।
यह अवसर मत चूक विवहारी, चलना आवे नेड़ारे। कौ० १।
[illegible]ोह नीन्द हसा प्राणी, आन विषय ने घेरा रे।
[illegible]ाँच चोर तेरे पीछे लाग्या, चोरहड़े धन तेरा रे। कौ० २।
[illegible]र्व कमाई तैं सब खाई, निमड़ गया धन तेरा रे।
[illegible]नजा तोकू खबर पड़ेगी, आन काल ने घेरा रे। कौ० ३।

निरखकर चलते थे छायाँ, उन्हीं को कालने खाया।ध० ३।

जिन्हों घर घूमते हाथी, हजारों संग में साथी।
फाढकर चलते थे छाती, तेल बिन बुझ गई बाती।ध०४।

जिन्हों घर हींस ते ताजी, बैठ कर खेलते बाजी।
देखतन हो रहा राजी, सोच नहीं करत हैं पाजी।ध०५।

पहरते रेशमी बसते, रूप को देख कर हंसते।
जिसमुख चाबते बीड़े, उसीमुख पड़ गये कीड़े।ध०६।

जिन्हों के बाल थे काले, मलाई दूध के पाले।
अंतर बहुत ही बाले, कर्म ने खाक कर डाले।ध०७।

होते जो मुल्क के हाली, चालते राजहंस सी चाली।
पहरते जाफ्ते बाली; गये दरबार कर खाली।ध० ८।

हजारों बाग के रसते, बिछोने में रेशमी बिछते।
जिन्होंपर बैठकर हंसते, उन्हों पर चल गये रस्ते।ध०९।

चलती है कालकी चाकी, कोई नहीं रहता है बाकी।
कहे धनीदास चेतलो भाई, मनुष्यदेह दोहलीपाई।ध०१०।

७५ भजन—तर्ज प्रभाती

कौन वक्त सोवन की बरियाँ, भज भगवन्त सवेरा रे।।टेक।।
मनुष्या पुरी की पीठ लगी है, सौदा करो भलेरा रे।
यह अवसर मत चूक बिवहारी, चलना आवे नेड़ारे।कौं०१।
मोह नीन्द सूता प्राणी, आन विषय ने घेरा रे।
पाँच चोर तेरे पीछे लाग्या, चोरहड़ें धन तेरा रे।कौं० २।
पूर्व कमाई तैं सब खाई, निमड़ गया धन तेरा रे।
जबजा तोकु खबर पड़ेगी, आन काल ने घेरा रे।कौं०

दोहा-समुद्र विजयजी का लाडला, नेम जिन्हों का नाम।
राजलदे को आये प्रणवा, उग्रसेन घर ठाम।
प्रसन्न भई नगरी सारी ॥ने० १॥
कसुम्बल बागा अति भारी, कोर गोटन की छबी न्यारी।
किलंगी तुररा सुखकारी, माला गल मोतीयन की डारी।
दोहा-काने कुंडल जगमगे, सीस शेहरा जान।
कोड़ भानु की करूं उपमा, जांकी शोभा इन्द्र समान।
बाज रहा बाजा ढक सारी ॥ने० २॥
छूट रही है हुका तुरराई, ब्याहने को आये बड़े भाई।
झरोखे राजलदे आई, जान को देखी सुख पाई।
दोहा-उग्रसेनजी देखकर, मन में करें विचार।
बहुत जीव करा एकठा, वाड़ा भरा तिनबार।
करी जब भोजन की त्यारी ॥ने० ३॥
निकट जब तोरन के आये, पशु जीव सब ही कुरलाये।
नेमजी वचन फरमाये, पशु तुम काहे को लाये।
दोहा-पाका भोजन होवसी जान वास्ते यह।
यह वचन सुन श्री नेमजी, थरहर कम्पी देह।
भाव से चढ़ गये गिरनारी ॥ने० ४॥
पीछे से राजलदे आई, हाथ जब पकड्यो है माई।
कहां तू जावे मेरी जाई, और वर है तुझे मुकताई।
दोहा-मेरे तो वर एक है, हो गये नेम कुंवार।
और वर कब हूँ न परनमु, क्रोड़ करो विचार।

स्वामी भलीजी अमृत बेलियाँ बेलियां ।
बाजा बजन्तर शंख पुरियों, अरिहन्त जय जय की जिये ।
बहन भानजी भुवाजी अनन्द, यह तो जी मंगल पहलड़ो ।
स्वामी यहतो जी मंगल पहलड़ो ॥ १ ॥
ऐसे दूजे जी मंगल, गहरासा चन्दवा ताणिये ।
भरदिये कटोरा, नेमनाथ अंग लगाइये ।
अणाय दही, गोपाल सेती, राच कचोला घोलिये ।
स्वामी राच कचोला घोलिये ।
एक नरम गरम कपोल कुमकुम, महेन्दी कपूर मिलाइये ।
सनान कर आरता धाऊं, अरिहन्त जय जय की जिये ।
बहन भाणजी भुवाजी आनन्द, यह तोजी मंगल दूसरो,
स्वामी यह तोजी मंगल दूसरो ॥ २ ॥
ऐसे तीजे जी मंगल, मात पितारे बुलाइये ।
मलयागिर चन्दन, नेमनाथ जोग अणाइये ।
हर्ष तो अंग लगाइये चन्दन, शोभाजी महिमा अतिघणी ।
स्वामी शोभाजी महिमा अतिघणी ।
चोवातो चन्दन और मरवा, घस कटोरा घोलिये।
स्वामी जी घस कटोरा घोलिये ।
मंगला श्रावक कोड़ सूरज, कोड़ सूरज अतुल है ।
बाजा बजंतर शंख पुरियो, अरिहन्त जय जय कीजिये ।
बहन भाणजी भुवाजी आनन्द, यहतोजी मंगल तीसरो ।
स्वामी यहतोजी मंगल तीसरो ॥ ३ ॥

ऐसे चोथे जी मंगल शरण शरण ढलनी ढले।
मन भावे सो पहरो, वस्त्र चीर पटम्बरे।
पाट पटम्बर पहरो नेमजी, काने कुंडल सिर शेहरो।
हाथ तो कंगन, बीच टोडर, पहरोजी नेम पियारड़ा।
स्वामी पहरोजी नेम-पियारडा। काने लंगूरी, सिर शेहरो,
पहरीने सब जग मोहिया। चावल सेती राजल विनवे,
हाथी चढा वर आवियो, स्वामी हाथी चढा वर आवियो।
बाजा वजंतर, शंख पुरियो, अरिहन्त जयजय कीजिये,
बहन भानजी भुवाजी आनन्द, यहतोजी मंगल चोथडो।
स्वामीजी यहतोजी मंगल चोथड़ो ॥ ४ ॥
ऐसे पाँच में जी मंगल, नेमनाथजी व्याहन छढे,
तोरन सुं चढतां, पशुओं की बन्ध छुडाविये।
वर्षी दान दियो नेमनाथजी, नेमनाथजी संजम लियो।
संजम लियो नेमनाथजी गिरवर चढ़े।
राजुल सुन वैराग्य उपन्यो, नेमनाथजी राजल सती।
दान शील तप भावना भावो, अरिहन्त जयजय कीजिये।
बहन भानजी भुवाजी आनंद, यहतोजी मंगल पांचमो।
स्वामी यहतोजी मंगल पाँचमो ।५।इति।

५५ भजन—महावीर स्वामी का

जो आनन्द मंगल चाहोरे, मनाओ महावीर।
मनाओ महावीर मनाओ महवीर।